द्वितीय अंक, दिसम्बर, 2019

त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका

कृषि शोध दर्पण









भाकृअनुप-कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान (अटारी), कानपुर
ICAR-AGRICULTURAL TECHNOLOGY APPLICATION RESEARCH INSTITUTE (ATARI), KANPUR

द्वितीय अंक, दिसम्बर, 2019 त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका

कृषि शोध दर्पण

डॉ० अतर सिंह, डॉ० शान्तनु कुमार दुबे,
डॉ० शंकर सिंह एवं श्री एस०एन०येमुल

भाकृअनुप-कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान (अटारी), कानपुर
ICAR-AGRICULTURAL TECHNOLOGY APPLICATION RESEARCH INSTITUTE (ATARI), KANPUR

संरक्षक
डॉ० ए०के० सिंह
उपमहानिदेशक (कृषि प्रसार)
भा०कृ०अनु०प०, नई दिल्ली

प्रधान सम्पादक
डॉ० अतर सिंह
निदेशक
भा०कृ०अनु०प०–अटारी, कानपुर

सम्पादक मण्डल
डॉ० शान्तनु कुमार दुबे
डॉ० साधना पाण्डेय
डॉ० शंकर सिंह
श्री एस०एन०येमुल

सहयोगी
श्रवण कुमार, राजीव सिंह, मनीष कुमार सिंह, विनय धर शुक्ला,
अमन कुमार पाण्डेय एवं गौरव तिवारी

तकनीकी सहयोगी
फरीद अहमद, अजय सिंह गौतम, कुंअर अखण्ड प्रताप सिंह,
स्वतंत्र प्रताप सिंह, निखिल विक्रम सिंह एवं मोहिल कुमार

द्वितीय अंक : दिसम्बर 2019

मुद्रक
सोलर प्रेस चुन्नीगंज, कानपुर

ISBN : 978-81-904444-4-6

अनुक्रम

क्र०सं०	विषय	पृष्ठ सं०
1.	संरक्षण कृषि से सिंचित एवं असिंचित क्षेत्रों में अधिक आय प्राप्त करें	1
2.	रबी फसलों हेतु अन्तरपूरक तकनीकी	10
3.	बदलते मौसम का कृषि पर प्रभाव	16
4.	ऊसर भूमि, सुधार एवं सहभागी प्रबन्धन	23
5.	समेकित कृषि प्रणाली अपनाकर आय दोगुनी करें	27
6.	बौछारी एवं टपक सिचांई : आज की आवश्यकता	34
7.	अच्छा बीज अधिक पैदावार	37
8.	दोगुनी आय हेतु क्या करें !	40
9.	मृदा क्षरण के कारण एवं रोकथाम के उपाय	49
10.	कृषोन्नति योजना के द्वारा किसानों की आय को दोगुना करना	52
11.	बायोचर: एक जैविक मृदा स्वास्थ्य वर्धक	54
12.	फसलों में न्यूनतम समर्थन मूल्य की उपयोगिता और महत्व	56
13.	2.5 एकड़ कृषि माडल – एक सार्थक प्रयास	61
14.	कृषि जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रसार शिक्षा की भूमिका	64
15.	जैविक विधि से बढ़ाएं मृदा की उर्वरता	66
16.	दलहनी फसलों में फसल सुरक्षा से संबंधित पारंपरिक तकनीकी ज्ञान	71
17.	आजमगढ़ जिले में प्रमुख दालों का उत्पादन एवं विपणन	75
18.	दलहन उत्पादन में पारंपरिक कृषि तकनीकी ज्ञान का महत्व	78
19.	दलहन उत्पादन तकनीक के नए आयाम	81
20.	ग्रीष्मकालीन मूँगफली की खेती: एक अभिनव प्रयोग	85
21.	सब्जियों के प्रमुख रोग एवं उनका समेकित प्रबन्धन	88
22.	अदरक उगायें : अधिक लाभ कमायें	94
23.	लोबिया की उन्नत खेती	100
24.	धनिया की वैज्ञानिक खेती एवं महत्व	102
25.	सूअर पालन सफलता की कहानी – किसान की जुबानी	105
26.	गर्भावस्था के दौरान पशु की देखभाल व प्रबंधन	107
27.	डेयरी पशुओं में दूध की उपज पर अजोला फीड पूरक का मूल्यांकन	110
28.	नेपियर लगाएँ और लम्बे समय तक हरा चारा पायें	112
29.	वर्मीवाश एक जैविक उत्पाद	115

सम्पादकीय

डॉ. अतर सिंह
निदेशक



भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि प्रोद्यौगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान
जोन - 3, जी. टी. रोड,
रावतपुर, कानपुर - 208002

भा0कृ0अनुप0–अटारी जोन–3, कानपुर द्वारा त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका 'कृषि शोध दर्पण' का द्वितीय अंक प्रकाशित करते हुए हर्ष हो रहा है। इस पत्रिका का प्रथम अंक का विमोचन उत्तर प्रदेश के यशस्वी मुख्यमंत्री माननीय योगी आदित्यनाथ जी के कर कमलों द्वारा जुलाई 2019 में किया गया था। वर्तमान अंक कृषकों के मार्गदर्शन तथा कृषि विज्ञान केन्द्रों के वैज्ञानिकों व प्रसार कार्यकर्ताओं को कृषि तकनीकी की अद्यतन जानकारी कराने तथा भारत सरकार द्वारा कृषक हित में चलाई जा रही योजनाओं की जानकारी को दृष्टिगत रखते हुए जलशक्ति अभियान, पानी की बचत, जैविक कृषि, एकीकृत फसल प्रणाली से आय में वृद्धि, बदलते जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के अनुरूप फसल उत्पादन को प्रभावित किए बिना कृषि को समृद्धशाली बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण जानकारी का समावेश किया गया है। दलहनी एवं तिलहनी फसलों की मांग दिनों दिन बढ़ रही है, इसकी पूर्ति हेतु वैज्ञानिक जानकारी कृषकों के मार्ग दर्शन में सहायक सिद्ध होगी।

वर्तमान में भारत सरकार द्वारा कृषि विकास में ऊसर बंजर भूमि को खेती योग्य बनाने, गौ संवर्धन, जल संचयन, जैविक खेती, महिला सशक्तिकरण, मूल्य सम्वर्धन, फसल अवशेष प्रबंधन, टपक सिंचाई, मोटे खाद्यान्न को बढ़ावा देने, मृदा स्वास्थ कार्ड द्वारा भूमि की उर्वराशक्ति को सशक्त बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण पहल की जा रही है।

कृषि शोध दर्पण के माध्यम से भा0कृ0अनुप0–कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान जोन–3, कानपुर के प्रयास से कृषकों तक उनकी सरल भाषा में उपयोगी जानकारी पहुँचाने का प्रयास है। पत्रिका के प्रकाशन में संस्थान के वैज्ञानिकों का सहयोग सराहनीय है। आशा है पत्रिका अपने अभीष्ट उद्देश्य में सफल होगी।

सम्पादक

1 संरक्षण कृषि से सिंचित एवं असिंचित क्षेत्रों में अधिक आय प्राप्त करें

राज सिंह, विनोद कुमार सिंह तथा मंजेश कुमार गौतम
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

कृषि का महत्व–

कृषि भारत देशकी अर्थवयवस्था का प्रमुख स्रोत है देश की लगभग 58प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप सेकृषि पर निर्भर है । कृषि द्वारा देश मे कुल कार्य करने वाले लोगो मे से 54.6 प्रतिशत को रोजगार प्रदान किया जाता है। देश की लगभग 135 करोड़ जनसंख्या के लिए खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, रोजगार प्रदान करने तथा गरीबी कम करने मे कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके अतिरिक्त कृषि के द्वारा देश के लगभग 512 लाख पशु तथा 7292 लाख पॉल्ट्री के लिए चारा एवं दाना प्राप्त होता है। कृषि का देश की अर्थवयवस्था को सुद्रढ़बनाने मे महत्वपूर्ण योगदान है। देश के कुल सकल घरेलू उत्पाद मे कृषि का योगदान लगभग 16 प्रतिशत है तथा देश मे कुल होने वाले निर्यात मे कृषि की भागीदारी लगभग 12.26 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त कृषि मे उपयोग किए जाने वाले उपकरणो,पेस्टीसाइड, बीज, खाद एवं उर्वरक, ऊर्जा, खाद्य प्रसंस्करण, एवं कृषि उपयोग मे होने वाली अन्य मशीनों की बिक्री से टैक्स के रूप मे सरकार को राजस्व द्वारा काफी आय प्राप्त होती है तथा अनेक प्रकार के कृषि से संबन्धित उद्योगो द्वारा रोजगार प्राप्त होता है। अतः देश के विकास मे कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है एवं भविष्य मे भी देश के विकास हेतु कृषि की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होगी। देश में खाद्यान्नों की आपूर्ति बनाए रखने में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं। देश में सन 1950–51 में जनसँख्या 360.1मिलियन थी जबकि खाद्यान्नों का कुल उत्पादन केवल 50.8 मिलियन टन था तथा देश खाद्यान्नों की आवश्यकता पूरी करने के लिए खाद्यान्नों के आयात पर निर्भर था। कृषि की उन्नत तकनीकियों जैसे खाद एवं उर्वरको तथा कीटनाशकों के प्रयोग, सिंचित क्षेत्र तथा मशीनीकरण में बढ़ोत्तरी,सुद्रढ़ नीति, वैज्ञानिको, नीति निर्धारको, प्रसार कार्यकर्ताओं तथा किसानो के अथक परिश्रम के कारण सन 2017–18 में खाद्यान्नोंका उत्पादन 284.8 मिलियन टन तक पहुच गया है (सारिणी 1)।

सारणी 1. जनसँख्या, सिंचित क्षेत्र उर्वरकों के प्रयोग तथा खाद्यान्नोंमें वृद्धि दर

वर्ष	जनसँख्या (मिलियन मे)	खाद्यान्नो का उत्पादन (मि .टन)	शुद्ध बोया गया क्षेत्र (मि. हे.)	सिंचित क्षेत्र (मि. हे.)
1950-51	361.1	50.82	118.75	20.85
1960-61	439.3	82.02	133.20	24.66
1970-71	548.2	108.42	140.27	31.10
1980-81	683.4	129.52	140.00	38.72
1990-91	846.5	176.32	143.00	48.02
2000-01	1028.8	196.81	141.34	55.20
2010-11	1210.8	244.49	141.56	63.66
2016-17	1310.00	275.68	140.01	66.10
2017-18	1330.00	284.83	140.4	68.40

ISBN : 978-81-904444-4-6

देश में विश्व की 17.6 प्रतिशत जनसंख्या एवं 15 प्रतिशत पशु संख्या 2.4 प्रतिशत भूमि पर निवास करती है तथा देश विश्व के केवल 4 प्रतिशत पानी पर निर्भर है। एक अनुमान के अनुसार सन 2050 तक देश की जनसंख्या बढ़कर लगभग 173 करोड़ हो जाएगी तथा सभी के लिए भोजन सुनश्चित करने हेतु लगभग 377 मिलियन टन खाद्यान्नों की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव,प्राकृतिक संसाधनो मे लगातार कमी, भूमि की गुणवत्ता मे गिरावट, पानी की कमी, कृषि उत्पादन के कारकों की क्षमता में कमी,वैश्विक कृषि मे प्रतिस्पर्धा इत्यादि के कारण भारतीय कृषि को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

कृषि की चुनौतियाँ–

देश की लगातार बढ़ रही जनसँख्या से दिन प्रतिदिन खाद्यानो की आवश्यकता बढ़ती जा रही है तथा भूमि का बंटवारा होने के कारण कृषि जोतों का आकार घटता जा रहा है। सन 1970–71 में कृषि जोतों का आकार 2.28 से घटकर सन 2015–16 में 1.08 हे० प्रति जोत ही रह गया है। तथा भविष्य मे भी कृषि जोतो का आकार और अधिक कम होगा। जिसके परिणामस्वरुप अधिक कृषि जोतो का आकार लघु एवं सीमान्त श्रेणी में आ जाएगा ।छोटी जोत होने के कारण उन्नत तकनीकियों के अंगीकरण की सम्भावनाए कम हो जायेगी, परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पडेगा। देश मे लगभग 86.2: कृषि जोत लघु एवं सीमांत श्रेणी मे आती है तथा कृषि जोतो की संख्या मे लगातार वृद्धि हो रही है (सारणी 2)। देश की लगभग 58 : जनसंख्या की आजीविका कृषि पर निर्भर है देश की अधिकतर जनसंख्या के लिए रोजगार प्रदान करना भी कठिन चुनौती है।

सारणी 2: देश में कृषि जोतो का आकार एवं कुल संख्या

वर्ष	सीमान्त	लघु	मध्यम	विशाल	जोतो की कुल संख्या	औसत जोतो का आकार (हे.)
1960-61	40.69	22.29	32.2	4.9	-	-
1970-71	50.6	19.1	26.5	3.9	71011	2.28
1980-81	56.4	18.1	23.1	2.4	88883	1.84
1990-91	59.4	18.8	22.2	1.6	106637	1.55
2000-01	63.0	16.80	17.1	1.02	119931	1.33
2010-11	67.1	17.91	14.29	0.70	138348	1.15
2015-16	68.52	17.69	13.22	0.57	145727	1.08

कृषि के लिए जल की मांग लगातार बढती जा रही है केंद्रीय जल आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार सन् 2025 तक सिंचाई के लिए 910 तथा 2050 में सिंचाई हेतु 1072 अरब घन मी० पानी की आवश्यकता होगी। सिंचाई जल का अनुचित प्रयोग करने के कारण भू–जल का स्तर गिरता जा रहा है। पानी की कृषि हेतु उपलब्धता मे लगातार कमी हो रही है। एक अनुमान के अनुसार सन 1951 मे पानी की उपलब्धता 5177 घन मी० प्रति व्यक्ति थी जपो घटकर सन 2011 में 1545 घन मी० रह गयी है। तथा अनुमान है की पानी की उपलब्धता देश मे सन 2050 तक घटकर 1140 घन मी० प्रति व्यक्ति रह जाएगी। इसके अतिरिक्त सिंचाई तथा विभिन्न अन्य क्षेत्रों के लिए पानी की आवश्यकता बढ़ेगी (सारणी 3)।

सारणी 3 : विभिन्न क्षेत्रों के लिए पानी की आवश्यकता

क्षेत्र	पानी की आवश्यकता (अरब घन मीटर)		
	2010	2025	2050
सिंचाई	557	611	307
पीने हेतु	43	62	111
उद्योग	37	67	81
उर्जा	19	30	70
अन्य	54	70	111
कुल	710	843	1180

ISBN : 978-81-904444-4-6

देश की बढ़ती जनसंख्या एवं विकास के कारण भूमि का उपयोग कृषि के अतिरिक्त दूसरे क्षेत्रों जैसे उद्योगो, सड़कों, आवासीय उद्देश्यों इत्यादि के लिए बढ़ता जा रहा है। कृषि हेतु भूमि के क्षेत्र मे वृद्धि होने की संभावनाएं नही के बराबर है तथा कृषि योग्य क्षेत्र मे कमी होती जा रही है ।भूमि मे लगातार एक ही प्रकार के उर्वरकों के प्रयोग तथा कार्बनिक खादों के कम उपयोग एवं कीटनाशकों के प्रयोग, भूमि के अत्यधिक दोहन, इत्यादि के कारण भूमि की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है तथा मुख्य पोषक तत्वों के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी कमी हो रही है। कृषि योग्य भूमियाँ अम्लीयता, क्षारीयता तथा लवणता की समस्या से ग्रसित हो रही है तथापोषक तत्वों की उपयोग क्षमता कम हो रही है। देश मे लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है जो अन्य देशों की अपेक्षा बहुत अधिक है। अमेरिका मे केवल 4 तथा जापान मे 5 प्रतिशत जनसंख्या ही कृषि पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त लगभग 52 प्रतिशत शुद्ध कृषि क्षेत्र मे वर्षा आधारित खेती होती है। तथा फसल उत्पादन पूर्णतयमानसून पर निर्भर करता है। परिणामस्वरूप वर्षा आधारित खेती की उपज बहुत ही कम है।

जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान मे वृद्धि हो रही है।आईपीसीसी के अनुसार 1901 से 2014 के बीच विश्व के सतही तापमान में 0.85° सें. ग्रे.–0.18 °सें. ग्रे. की बढ़ोतरी का रुझान पाया गया है। भारतीय मौसम विभाग के अनुसार भारत मे पिछले 100 वर्षों मे 0.66 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान मे वृद्धि पाई गई है। सन 1901–2010 की अवधि के लिए आईएमडी अवलोकन नेटवर्क से वर्षा के आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि देश के अधिकांश हिस्सों में सर्दियों, पूर्व–मानसून और दक्षिण–पश्चिम में शुष्क दिनों की आवृत्ति में वृद्धि हुई हैतथा वर्षा की मात्रा भी प्रभावित हुई है। इसका प्रभाव फसल उत्पादन पर पड़ रहा है।एक अनुमान के अनुसार देश मे सन 1970 से 2016 तक तापमान में 0.48 डिग्री सेंटीग्रेड की वृद्धि तथा वर्षा की मात्रा में 26 मिली मीटर की कमी हो गई है ।अनुमान है कि सन 2070 तक देश के औसत तापमान में खरीफ ऋतु में 1.4 से 2.0 डिग्री सेंटीग्रेड तथा रबी ऋतु में 1.1 से 4.5 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान की वृद्धि हो जाएगी । जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के कारण देश मे औसतन 15–18 तथा असिंचित क्षेत्रों में 20–25 प्रतिशत तक उपज में कमी हो जाएगी ।विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत मं जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के कारण सन2050 तक सकल घेरलु उत्पाद में 2.8 प्रतिशत की कमी हो जाएगी ।इसके अतिरिक्त वर्षा आधारित क्षेत्रों की औसत उपज एक टन प्रति हेक्टर से भी कम है जबकि इन क्षेत्रों पर देश की 40% से भी अधिक जनसंख्या निर्भर है तथा उनका सामाजिक एवं आर्थिक स्तर बहुत ही निम्न है। अन्ततः संसाधनों की क्षमता बढ़ाते हुवे वर्षा आधारित क्षेत्रों की औसत उपज बढ़ाना बहुत ही आवश्यक है ।हमारे देश मे अभी भी अधिकतर खेती परम्परागत विधियों द्वारा की जाती है जिसके कारण फसल उत्पादन बहुत ही कम होता है। अतः बढ़ती आबादी के लिए खाद्य सुरक्षा बनाए रखना और प्राकृतिक संसाधनों के अत्याधिक दोहन एवं उनमे आई कमी को देखते हुवे वर्तमान परिदृश्य के तहत कृषि की उत्पादकता एवं उसमे स्थिरता को बनाए रखते हुए किसानू की आय बढ़ाना, गरीबी को कम करना, जलवायु परिवर्तनशीलता के नकारात्मक प्रभाव को कम करना तथा खाद्यानो की बढ़ती लागत और अस्थिर भोजन की कीमतें अधिकांश एशियाई देशों के सामने प्रमुख चुनौतियां हैं।

इन सभी समस्याओं को ध्यान मे रखते हुएसंसाधनों के कम प्रयोग से विषम परिस्थियों में भी फसल उत्पादन बढ़ाने में संरक्षणकृषि एक महत्वपूर्ण वरदान साबित हो सकती है।

संरक्षण कृषि

संरक्षण कृषि खेती करने की एक प्रणाली है जिसके द्वारा अवशेषों तथा भूमि की न्यूनतम या शून्य जुताई को अपनाते हुये भूमि को कम से कम बाधित करना और पौधों की प्रजातियों के विविधीकरण को बढ़ावा मिलता है। यह जमीन की सतह के ऊपर और नीचे जैव विविधता और प्राकृतिक जैविक प्रक्रियाओं को बढ़ाता है, जो पानी और पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता बढ़ाने और फसल उत्पादन में सुधार और निरंतरता में योगदान देता है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार, संरक्षण कृषि (सीए) संसाधनो के उचित उपयोग और पर्यावरण को संरक्षित करते हुये बेहतर और निरंतर उत्पादकता, अधिक लाभ एवं खाध्य सुरक्षा के लिए कृषि–पारिस्थितिकी प्रणालियों के प्रबंधन का एक दृष्टिकोण है संरक्षण कृषि आधारित संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों से कम लागत पर अधिक उपज देने, पर्यावरण प्रदूषण को कम करने, कार्बनिक पदार्थो के उपयोग को प्रोत्साहित करने, मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करने और क्षेत्र में टर्मिनल गर्मी की समस्या से बचाव द्वारा जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव को कम करते हुवे स्थायीफसल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त संरक्षण कृषि के

ISBN : 978-81-904444-4-6

द्वारा प्राकृतिक संसाधन आधार में सुधार तथा जैव विविधता का संरक्षण करने के साथ साथ श्रम एवं ऊर्जा की कमी की समस्या को कम किया जा सकता हैं तथा किसानों की आजीविका सुरक्षा में सुधार के लिए संरक्षण कृषिकी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती हैं। अतः संरक्षण कृषि एक दृष्टिकोण है जो टिकाऊ फसल उत्पादन के लिए मिट्टी, जल एवं अन्य संसाधनों को संरक्षित करने के अतिरिक्त जलवायु परिवर्तन के प्रभावतथा औधोगिक उत्पादक सामग्री के उपयोग को कम करके वातावरण को स्वचछ बनाने में बहुत उपयोगी है।

संरक्षण कृषि का इतिहास

भूमि की जुताई करने का विचार 3000 वर्ष ईसा पूर्व के आसपास मेसोपोटामिया में शुरू हुआ तथा फसल उत्पादन में जुताई करना एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया मानी जाती थी ।उन्नीसवी शताब्दी में भूमि की जुताई करने हेतु अनेक प्रकार के औजारों का विकास होने से भूमि की जुताई करना आसान हो गया । लेकिन धीरे धीरे अधिक जुताई करने के दुस्प्रभावों का परिणाम भूमि की सरंचना एवं उर्वराशक्ति प्रभावित होने से महसूस होने लगा तथा फसल उत्पादन क्षमता एवं स्थायित्व मे कमी होने लगी ।मृदा प्रबंधन की अवधारणा के अनुसार 1930 के दशक में जब मध्य–पश्चिम संयुक्त राज्य के व्यापक क्षेत्रों को डस्टबॉल्स ने तबाह कर दिया तब पहली बार जुताई कम करने और भूमि को फसल अवशेषों से ढक कर रखने पर विचार किया गया।सन 1930 में ही एडवर्ड फॉल्कनर ने अपनी पुस्तक 'प्लौमेन फॉली'में जुताई के दुस्प्रभावों का विस्तार सेवर्णन किया ।उसके बाद भूमि कटाव को नियंत्रिन्त करने के उद्देश्य से संरक्षण जुताई शुरू की गई एवं कम जुताई, भूमि को फसल अवशेषों से ढक कररखना एवं उचित फसल चक्र तथा फसल विविधिकरण द्वारा भूमि की उत्पादकता बढ़ाने तथा संसाधनो की बचत को महत्व दिया जाने लगा । सन 1940 में बीज बोने के लिए बिना भूमि की जुताई किए सीधे बीज बोने केउद्देशय हेतु उचित मशीनरीके विकास की अनुमति दी गई। उसी समय सीए सिद्धांतों को एडवर्ड फॉल्कनर द्वारा उनकी पुस्तक ष्प्लॉम्मन्स फॉलीष्तथा मसानोबु फुकुओका की पुस्तक "एक स्ट्रॉ क्रांति" में विस्तृतरूप से वर्णित किया गया था। सन् 1970 के दशक की शुरुआत मेंबिना जुताई की खेती ब्राजील का प्रचलन प्रारंभ हुवा तथा किसानों एवं वैज्ञानिकों ने बिना जुताई की खेती तकनीक को प्रणाली में बदल दियाजिसे आज सीए कहा जाता है। 1990 के दशक के प्रारंभ में सीए ने दक्षिणी ब्राजील, अर्जेंटीना और पैराग्वेमें तेजी से प्रसार करना शुरू कर दिया जिसके द्वारा इन देशो की कृषि में नई क्रांतिआ गयी है ।1990 के दशक के दौरान इस तकनीक ने तेजी से दुनिया के अन्य हिस्सों में भी ध्यान आकर्षित कियाहै।इसी दशक के दौरानसंरक्षण कृषि यूरोप, एशिया, अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया में शोधकर्ताओं एवं किसानों का ध्यान आकर्षित किया तथा विश्व के अनेक अंतर्राष्ट्रीय संगठनों तथा अनुसंधान संस्थानो जैसे एफएओ, विश्व बैंक, आईएफएडी, जीआईजेड, एवं सी आई आर ए डी, ए सी आई आर और सी जी आई आर इतियादी नेसंरक्षण कृषि पर विश्व के अनेक देशों में कार्य किया, परिणाम स्वरूप दुनिया के विभिन्न भागों में संरक्षण कृषि अपनाने के स्तर में वृद्धि हुई तथा यूरोप, एशिया, अमेरिका, अफ्रीका एवं ऑस्ट्रेलिया महाद्वीपों में संरक्षण कृषि के अंतर्गत क्षेत्रों में लगातार वृद्धि हो रही है । भारत में भी संरक्षण कृषि पर विभिन्न अनुसन्धानों द्वारा कार्य किया जा रहा है तथा भारत में लगभग 1. 5 मिलियन हेक्टर क्षेत्र में सन 2015–16 तक संरक्षण कृषि की गई । विश्व में भी सन 2015–16 तक 180 मिलीयन हेक्टर क्षेत्र में संरक्षण कृषि की गई (सारणी 4)।

सारणी4 : विश्व में भी सन 2015–16 तक संरक्षण कृषि के अंतर्गत कुल क्षेत्र (कासम तथा अन्य, 2018)

क्र.	देश	संरक्षण कृषि के अंतर्गत कुल क्षेत्र (मि.हे. में)
1.	संयुक्त राज्य अमेरिका	43.20
2.	ब्राजील	32.00
3.	अर्जेंटीना	31.03
4.	कनाडा	19.94
5.	आस्ट्रेलिया	22.30
6.	परागुवे	3.00
7.	कजाकिस्तान	2.50
8.	चीन	9.00
9.	बोलीविया	2.00
10.	भारत	1.50
11.	उरेग्वे	1.26
12.	स्पेन	0.90
13.	दक्षिणी अफ्रीका	0.44
14.	रूस	5.00
15.	जर्मनी	0.15
16.	अन्य देश	6.22

ISBN : 978-81-904444-4-6

संरक्षण कृषि के सिद्धांत

1. न्यूनतम या शून्य जुताई रूमिट्टी की अधिक जुताई करने वाले अभ्यास इसकी संरचनात्मक अखंडता को नुकसान पहुंचाते हैं, जिससे यह क्षरण और पोषक तत्वों और पानी के नुकसान के लिए अतिसंवेदनशील हो जाती है। संरक्षण कृषि में बीजों की सीधे मशीन या अन्य साधनों द्वारा बुवाई करने के बाद ढक दिया जाता है। बीजों की सीधे बुवाई करने के अनेक लाभ है ।
   - जुताई न करने से समय और धन की बचत होती है।
   - जुताई न करने के कारण भूमि का अपरदन बहुत कम होता है।
   - इससे भूमि में नमी बनी रहती हैतथा जल भराव की समस्या बहुत ही कम होती है।
   - भूमि के अन्दर और बाहर जैव–विविधता को क्षति नहीं होती है।
2. फसल अवशेषों का अगली फसल मे स्थायी रूप से बिछावन बीजों की सीधे बुवाई करने के पश्चात पिछली फसल की कटाई के अवशेषों के रूप में कार्बनिक पदार्थों से मिट्टी को कम से कम 30% तक ढक कर रखना चाहिए । कार्बनिक पदार्थों से मिट्टी को ढक कर रखने के अनेक प्रकार के लाभ है।
   - यह मृदा क्षरण को रोकने मे सहायक होता है।
   - मृदा मे कार्बनिक तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों को बनाए रखता है।
   - मृदा मे नमी अधिक दिनों तक संचित रहती है ।
   - कीट व्याधि एवं खरपतवारों को काफी कम करने मे सहायक होता है।
   - केंचुओं को स्थानांतरित करने के लिए प्रोत्साहित करता है।
3. फसल चक्र तथा फसल विविधिकरण को बढ़ावा देनारूभूमि के एक ही भूखंड पर उगाई जाने वाली फसलों के प्रकार को वैकल्पिक करना या भूमि के एक ही क्षेत्र पर विभिन्न प्रकार की फसलों को उगाना (अंतः शस्य पद्धति) मिट्टी को पोषक तत्वों की कमी से बचाता है एवं कृषि–जैव विविधता को भी सक्षम बनाता है, जिससे सूक्ष्म–पारिस्थितिक तंत्र बनते हैं। इसके अतिरिक्त फसल चक्र, फसल विविधिकरणएवं अंतः शस्य पद्धति अपनाने के अनेक लाभ है।
   - बेहतर पोषक तत्वों का प्रबंधन होता है ।
   - भूमि और जल प्रदूषण को कम किया जा सकता है।
   - मृदा संरचना में सुधार किया जा सकता है ।
   - जल संरक्षण को बढ़ावा मिलता है ।
   - आसानी से कीट, खरपतवार औररोगों को नियंत्रित किया जा सकता है ।
   - जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम किया जा सकता है।
   - फसल की अधिक पैदावार एवं अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है ।
   - फसल उत्पादन में स्थायित्व तथा वातावरण को सुरक्षित बनाने में सहायक होता है।

पारंपरिक कृषि एवंसंरक्षण कृषि में अंतर रू संरक्षण कृषि पारंपरिक कृषि से भिन्न है तथा संरक्षण कृषि के प्रयोग से पारंपरिक कृषि की अपेक्षा अनेक प्रकार के अंतर पाये जाते है।

क्र.सं.	पारंपरिक कृषि	संरक्षण कृषि
1.	अत्यधिक यांत्रिक जुताई की जाती है जिसके कारण मिट्टी का क्षरण होता है तथा उर्वराशक्ति प्रभावित होती है।	कम या शून्य जूताई के कारण मिट्टी का क्षरण कम या नहीं होता है तथा उर्वराशक्ति बनी रहती है।
2.	तेज हवा एवं पानी के द्वारा मिट्टी के कटाव की आशंका बनी रहती है।	मिट्टी के हवा या पानी द्वारा कटाव की संभावना कम रहती है।
3.	अवशेष जलाने या निकालने से भूमि की ऊपरी सतहनग्न हो जाती है परिणाम स्वरूप मिट्टी के कटाव की आशंका बढ़ जाती है तथा नमी का संचयन प्रभावित होता है।	भूमि की ऊपरी सतह पर फसल प्रयोग करने से मिट्टी के कटाव की आशंका कम होती है, नमी का संचयन बढ़ता है, भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ती है, सूक्ष्म जीवों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है एवं खरपतवारों का नियंत्रण होता है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

4.	पानी का भूमि में रिसना कम होता है।	पानी का भूमि में रिसना बढ़ जाता है।
5.	खेत मशीनरी के लगातार उपयोग से मिट्टी के संघनन में वृद्धि होती है।	मिट्टी के संघनन की आशंका नहीं होती है।
6.	एक ही प्रकार की फसल उगाने से कम उपज, कम लाभ तथा भूमि की उर्वराशक्ति के ह्रास की संभावना अधिक रहती है।	फसल चक्र एवं विविधिकरण के द्वारा अधिक उत्पादन, अधिक लाभ तथा भूमि की उर्वराशक्ति बनी रहती है ।
7.	संसाधनो का अधिक दोहन होता है मानव श्रम पर भारी निर्भरता होती है तथा जलवायु परिवर्तन का अधिक प्रभाव होता है।	संसाधनो के सीमित उपयोग के कारण अधिक दोहन नहीं होता है ऊर्जा की कम आवश्यकता होती है तथा जलवायु परिवर्तन का फसल उत्पादन पर अधिक प्रभाव नहीं होता है।
8.	विपरीत परिस्थितीयों में कम फसल उत्पादन होता है तथा किसानों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति प्रभावित होती है।	विपरीत परिस्थितीयों में भी फसल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है तथा किसानों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति प्रभावित नहीं होती है तथा फसल उत्पादन में स्थायित्व बना रहता है।

संरक्षण कृषि के लाभ

संरक्षण कृषि को अपनाने से पारंपरिक कृषि की अपेक्षा अनेक प्रकार के लाभ होते है तथा संरक्षण कृषि पारंपरिक कृषि का एक व्यवहार्य विकल्प हैंइसके अनेक लाभों के कारण संरक्षण कृषि का दुनिया भर के किसानों में बहुत तेजी से विस्तार हो रहा है।

1. भूमि से टिकाऊ उत्पादन

संरक्षण कृषि में मिट्टी की कम या शून्य जुताई के कारण मिट्टी की संरचना में काफी सुधार होता है क्योंकि मिट्टी की कम जुताई करने या शून्य जुताई के कारण मिट्टी की संरचना प्रभावित नहीं होती है तथा मिट्टी का पानी एवं हवा के द्वारा होने वाला कटाव कम होता है ।मिट्टी की ऊपरी सतह पर फसल अवशेषों के आवरण को स्थायी बनाए रखने से भी होने वाला कटाव कम होता है नमी अधिक संरक्षित होती है एवं कार्बनिक पदार्थों के स्तर, सूक्ष्म जीवों और पोषक तत्वों की मात्रा मे बढ़ोत्तरी होती है एवं भूमि की उर्वरा शक्ति में सुधार होता है तथा इस प्रकार से भूमि से अधिक एवं स्थायी उत्पादन में बढ़ोत्तरी होती है।

2. ऊर्जा की आवश्यकता में कमी

संरक्षण कृषि के अंतर्गत मिट्टी की कम या शून्य जुताई के कारणऊर्जा की काफी बचत होती है तथा मिट्टी की ऊपरी सतह पर फसल अवशेषों के स्थायी आवरण से नमी का अधिक संरक्षित होना ,कार्बनिक पदार्थों के स्तर, सूक्ष्म जीवों और पोषक तत्वों की मात्रा मे बढ़ोत्तरी तथा खरपतवारों के प्रकोप में बहुत कमी होती है परिणाम स्वरूप फसल बोने से पहले भूमि मे जुताई न करने से, फसल मे खरपतवार तथा कीट नियंत्रण, सिंचाई आदि की कम आवश्यकता से फसल उत्पादन में ऊर्जा की कम आवश्यकता होती है।

3. जल उपयोग क्षमता में बढ़ोत्तरी

संरक्षण कृषि में फसलों के अवशेषों को प्रयोग करने से वाष्पीकरण कम होने से भूमि मे नमी को अधिक दिनो तक संरक्षित करके जल उपयोग क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।फसलों के अवशेषों का आवरण मिट्टी की सतह को अत्यधिक तापमान से बचाती है और सतह के वाष्पीकरण को बहुत कम कर देती है यह उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। शुष्क क्षेत्रों के में सूखे के वर्षों के दौरान संरक्षण कृषि के सबसे अधिक लाभ हैं, जबकि पानी के उपयोग की दक्षता में वृद्धि के कारण कुल फसल की विफलता का जोखिम काफी कम हो जाता है।

4. भूमि की उर्वराशक्ति में सुधार

मिट्टी की सतह पर संरक्षित फसल अवशेषों के जैव रासायनिक अपघटन द्वारा मृदा पोषक तत्वों की आपूर्ति को बढ़ाया जाता है जो मिट्टी मे पाये जाने वाले जीवाणुओं के लिए लाभदायक हैं। इसके अलावा फसल चक्र में दलहनी फसलों को सम्मिलित करके भूमि की उर्वराशक्ति को बढ़ाया जा सकता है तथा शून्य जुताई के कारण भूमि की उर्वराशक्ति के ह्रास को कम किया जा सकता है । विभिन्न फसलों के

ISBN : 978-81-904444-4-6

अवशेषों में पोषक तत्वों की मात्रा सारणी 3 में दर्शाई गई है ।

5. आर्थिक लाभ

संरक्षण कृषि से अधिक एवं टिकाऊ उत्पादन होने के साथ साथ फसल में लागत भी कम आती है जिसके कारण किसान आमतौर पर कम पानी, उर्वरक,ऊर्जा एवं श्रम के साथ अधिक पैदावार एवं अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

सारणी 5 : विभिन्न फसलों के अवशोण में पोषक तत्वों की मात्रा

फसल अवशेष	नाइट्रोजन%	फोस्फोरस%	पोटाश%
जौ का भूसा	0.57	0.26	1.2
गेहूँ का भूसा	0.53	0.1	1.1
गन्ने की पत्तियाँ	0.35	0.1	0.6
गन्ने की खोई	2.25	0.12	
धान का पुआल	0.36	0.08	0.7
राई–सरसों का तना	0.57	0.28	1.4
मक्का की कड़वी	0.47	0.57	1.65
बाजरे की कड़वी	0.65	0.75	2.25
धान की भूसी	0.4	0.25	0.4
मूंगफली का छिलका	0.7	0.48	1.4
आलू	0.52	0.09	0.85
मटर की सूखी पत्तियाँ	0.35	0.12	0.36
करंज की सूखी पत्तियाँ	2.65	0.41	2.42
व्रक्षों की सूखी पत्तियाँ	1.5	0.45	2.5

6. पर्यावरणीय लाभ

संरक्षण कृषि से पर्यावरण को प्रदूषण से बचाया जा सकता हैक्योंकि इसके अंतर्गत पारंपरिक कृषि की तुलना में संसाधनों का अधिक कुशलता से उपयोग किया जाता है।संरक्षण कृषिपर्यावरण की दृष्टि से एक वरदान है इसके द्वाराग्लोबल वार्मिंग से पर्यावरण में आ रहे निरंतर बदलावों को काफी कम किया जा सकता है।इसके अतिरिक्त संरक्षण कृषि में फसलों के अवशेषों को मिट्टी की सतह पर आवरण के रूप में प्रयोग कर फसलों के अवशेषों को खेत में जलाने से उत्पन्न जहरीली गैसे जैसे कार्बन डाई आक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्रस आक्साइड द्वारा पर्यावरण को होने वाली हानि से बचाया जा सकता है तथा विभिन्न प्रकार के उर्वरको एवं एग्रोकेमिकल्स के कम प्रयोग से हवा, मिट्टी और पानी में प्रदूषण के स्तर को काफी कम कर किया जा सकता हैं।

संरक्षण कृषिपर किये गये अध्यनन

संरक्षण कृषि देश के लघु तथा सीमांत किसानों के लिए अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हो सकती है क्योंकि इसके द्वारा सीमित भूमि मे सीमित संसाधनों का अधिक कुशलता से उपयोग कर अधिक पैदावार को प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के सस्य विज्ञान संभाग मे चल रहे संरक्षण कृषि पर प्रयोगो से ज्ञात होता है कि सिंचित क्षेत्रों में अरहर–गेहूं फसलीय पद्धति में संरक्षण कृषि के अंतर्गत शून्य जुताई के साथ फसल के अवशेषों की 3 टन प्रति हेक्टेयर का भूमि की ऊपरीपरत पर बिछावन के रुप मे प्रयोग करने पर अरहर दाने के समतुल्य उपज में पारंपरिक कृषि की तुलना में लगभग 17% अधिक उपज प्राप्त करने के साथ साथरुपये 24555/है. का अधिकशुद्ध लाभ प्राप्त हुआ । सबसे अधिक लाभ रू लागतअनुपात भी शून्य जुताई के साथ फसलअवशेषों को 3 टन प्रति हेक्टेयर द्वारा प्रयोगकरने पर प्राप्त हुआ (सारणी6)। संरक्षण कृषि का उपज एवम शुध लाभ के अतिरिक्त पोशक तत्वो एवम जल उपयोग क्षमता, स्थूल घनत्व तथा सूक्ष्मजीवोंकीसंख्या पर धनात्मक प्रभाव पाया गया (सारणी7)।संरक्षण कृषि के अंतर्गत शून्य जुताई तथा फसल अवशेषों का बिछावन के रुप में प्रयोग करने से खरपतवारो की संख्या पर प्रभाव पड़ता है परिणाम स्वरूप गेंहू की फसल में शून्य जुताई करने के साथ भूमि की ऊपरी सतह पर फसल अवशेषों को ३ टन/है की दर से प्रयोग करने पर खरपतवार नियंत्रण क्षमता पारम्परिक खेती की अपेक्षा 42.4% अधिक पायी गयी (सारणी 8) ।इसके अतिरिक्त शून्य जुताई के साथ फसल अवशेषों को प्रयोग करने पर अरहर फसल में 0–15सेंटीमीटर गहराई तक भूमि के तापमान में वायुमंडल के तापमान की अपेक्षा 2–2. 50सेंटीग्रेड तक की कमी पाई गयी जबकिगेंहू की फसल में 0–15सेंटीमीटर की गहराई तक भूमि के तापमान में शून्य जुताई के साथ फसल अवशेषों को प्रयोग करने पर वायुमंडल के तापमान की अपेक्षा 1.25 से 1.75डिग्री सेंटीग्रेड तापमान की वृद्धि पाई गई ।इसके अतिरिक्त शून्य जुताई के साथ फसल अवशेषों को बिछावन के रूप में प्रयोग करने पर नमी संरक्षण में पारम्परिक खेती की अपेक्षा 2 से 5 प्रतिशत की वृद्धि पायी गई ।

ISBN : 978-81-904444-4-6

वर्षा आधारित खेती मे रबी फसलो मे संरक्षण कृषि पर किये गये प्रयोगो के परिणामो से मालूम होता है कि शून्य जुताई में फसल अवशेषों का बिछावन के रुप मे प्रयोग करने से चना समतुल्य दाने की उपज पारंपरिक कृषि की तुलना में लगभग 23.5% अधिक तथा रुपये11642/है. शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ (सारणी9)। फसल अवशेषों की दर मे सबसे अधिक चना समतुल्य दाने की उपज 4 टन/है. की दर से फसल अवशेषों को प्रयोग करने प्राप्त हुई, लेकिन 3 टन/हे. की दर से फसल अवशेषों को प्रयोग करने पर भी संतोशजनक उपज प्राप्त हुई जबकि सबसे कम उपज तथा शुद्ध लाभ 2 टन/हे. की दर से फसल अवशेषों को प्रयोग करने पर प्राप्त हुवा । सभी फसलो मे चने की फसल द्वारा सबसे अधिकउपज तथा शुद्धलाभ प्राप्त हुवा। चने की फसल से मसूर एवम जौ की तुलना मे क्रमशरू 35 एव 21.77% अधिक चना समतुल्य दाने की उपज प्राप्त हुई तथा शुद्ध लाभ भी चना की फसल द्वारा प्राप्त किया गया।

सारणी 6 : संरक्षण कृषि का अरहर– गेंहू फसलीय पद्धति के अंतर्गत प्राप्त अरहर समतुल्य दाने की उपज तथा शुद्ध आर्थिक लाभ पर प्रभाव

उपचारक	अरहर समतुल्य दाने की उपज (कि.ग्रा/है.)	शुद्ध आर्थिक लाभ (रुपये/है.)	लाभ : लागत अनुपात
शून्य जुताई	2814	84199	1.11
शून्य जुताई फसल	3109	100933	1.33
पारंपरिक कृषि	2658	76378	1.02

सारणी 7 : संरक्षण कृषि का अरहर – गेंहू फसलीय पद्धति के अंतर्गत पोषक तत्वों एवं जल उपयोग क्षमता तथा सूक्ष्म जीवों की संख्या पर प्रभाव पर प्रभाव

उपचारक	पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता (कि.ग्रा. फसल उपज/कि.ग्रा. नाइट्रोजन/है.)			जल उपयोग क्षमता (कि.ग्रा. फसल उपज/मि. मी. जल/है.)	स्थूल घनत्व (ग्रा./घनसे. मी.)	एसएॅमबीसी (मि. ग्रा./कि.ग्रा. मिटटी)	डीएचऐ (µg टीपीऐॅफ/ग्रा. मिट्टी/ 24 घंटा)
	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटेशियम				
शून्य जुताई	21.65	23.45	35.18	3.08	1.48	336.2	52.8
शून्य जुताई फसल अवशेष 3 टन/हे.	23.92	25.91	38.86	3.58	1.44	411.00	61.0
पारंपरिक कृषि	20.22	21.90	32.85	2.66	1.51	378.00	43.0

सारणी 8 : संरक्षण कृषि का गेंहू की फसल मे खरपतवारों की संख्या एवं खरपतवार नियंत्रण क्षमता (%) पर प्रभाव

उपचारक	खरपतवारो की संख्या		खरपतवारों का शुष्क वजन (ग्राम/वर्ग मी.)	खरपतवार नियंत्रण क्षमता (%)
	नुकीली पत्ती वाले खरपतवार	चौडी पत्ती वाले खरपतवार		
शून्य जुताई	24	42	66.4	13.51
शून्य जुताई फसल अवशेष 3 टन/हे.	13	29	44.87	42.4
पारंपरिक कृषि	48	69	77.93	0

ISBN : 978-81-904444-4-6

सारणी 9 : संरक्षण कृषि का वर्षा आधारित खेती में रबी फसलों की उत्पादकता तथा शुद्ध आय पर प्रभाव

उपचारक	चना समतुल्य दाने की उपज (कि.ग्रा/है.)	शुद्ध आर्थिक लाभ (रुपये/है.)	लाभ : लागत अनुपात
शून्य जुताई में फसल अवशेष			
पारंपरिक कृषि	1126	20271	0.64
शून्य जुताई में खडी फसल अवशेषों का प्रयोग	1276	25701	0.77
शून्य जुताई में फसल अवशेषों का बिछावन के रुप में प्रयोग	1473	31923	0.88
फसल अवशेषों की दर (3 टन/हे.)			
2	1177	20627	0.611
3	1317	26095	0.75
4	1381	28302	0.80
फसलीय पद्धति			
चना	1594	40477	1.22
मसूर	1035	13699	0.40
जौ	1247	22895	0.66

संरक्षण कृषिउपरोक्त परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता हैकिकृषि जलवायु के इस बदलते परिपेक्ष्य मे संरक्षण कृषि की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है क्योंकि संरक्षणकृषि के तीनो सिद्धांत न्यूनतम या शून्य जुताई, फसल अवशेषों का स्थायी रूप से बिछावन के लिये प्रयोग तथा फसल चक्र तथा एवम विविधिकरण द्वारा न केवल संसांधनों जैसे पानी, पोषक तत्वों एवं ऊर्जा की बचत की जा सकती है बल्कि जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव जैसे अधिक तापमान तथा सूखे से भी फसलों को बचाया जा सकता है तथा किसान विशेषरूप से सीमांत एवं लघु किसान कम लागत लगा कर सिमित संसांधनों में सिंचित एवं असिंचित दोनों में टिकाऊ उपज प्राप्त कर सकते है तथा अधिक लाभ प्राप्त कर सकते है ।



अरहर की फसल में फसल अवशेषों की बिछावन का प्रभाव



जौ की फसल में खड़े अवशेषों का प्रभाव



मसूरकी फसल में फसल अवशेषों की बिछावन का प्रभाव



जौकी फसल में फसल अवशेषों की बिछावन का प्रभाव

ISBN : 978-81-904444-4-6

2 रबी फसलों हेतु अन्तरपूरक तकनीकी

[1]जितेन्द्र सिंह, [2]शान्तनु कुमार दुबे, [2]शंकर सिंह
[1]च.शे.आ.कृषि एवं पौ. वि.वि, कानपुर, [2]भा.कृ.अनुप., अटारी कानपुर

रबी फसलों का उत्पादन बहुत ही महत्वपूर्ण है इसलिये रबी फसलों के उत्पादन में वह नवाचार व कृषकों द्वारा अपनाई जा रही विधियां जिससे उत्पादन कम होने के साथ उत्पादन लागत बढ़ रही है साथ ही भूमि का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा है जो चिंताजनक है।

रबी फसलों हेतु अन्तरपूरक तकनीकी बुन्देलखण्ड, व बहुत से जनपदों में गाँव–गाँव भ्रमण के अवसर पर कृषकों से वार्ता करने पर अनुभव किया गया कि जो खेती में विधायें अपनाई जा रही हैं जो पूर्णतया अवैज्ञानिक है, जिससे उत्पादन में बाधा आ रही है।

अतः फसलवार कृषकों द्वारा कौन सी विधा अपनाई जा रही है उसमें तकनीकी सुधार की संभावना के अनुसार फसलवार किसान भाई ''क्या कर रहे हैं'' (कृषक पद्धति), ''क्या करना चाहिये'' (अन्तरपूरक तकनीकी) के साथ जानकारी दी जा रही है जिसकी जानकारी से उसके अनुसार तकनीकी प्रबन्धन कर यदि फसल उत्पादन करेंगे तो केवल प्रबन्धन सुधार से ही खेती की लागत कम करने, सिंचाई जल का समुचित उपयोग के साथ गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के साथ आय दुगनी करने में बल मिलेगा। प्राकृतिक संसाधन संरक्षण के साथ भूमि का उर्वरा शक्ति को अक्षणु बनाये रखने में मदद मिलेगी।

रबी फसलों में मुख्य तकनीकी अन्तर पूरक (क्या कर रहे है, क्या करना चाहिए)

क्र0 सं0	फसल	क्या कर रहे है	क्या करना चाहिए
1	**गेहूँ एवं जौ**	(i) फसल अवशेष विशेषतया धान के ठूठो को सड़ाते नही है तथा गोबर की पकी खाद का प्रयोग बहुत कम लोग करते है। घूरा की खाद बिना पकी डालते है।	धान की कटाई अधिक से अधिक ठूठे छोड़कर करे फिर खेत में सड़ाये। जिससे खेत में जीवांश बढ़े तथा खेत में उर्वरक व सिंचाई का कम प्रयोग करना पड़े। रवी फसल की बुवाई के पूर्व 20–25 दिन पहले खेत में पकी गोबर की खाद मिलाना चाहिए।
		(ii) अधिकतर घर का बीज प्रयोग करते है जो अनाज है। बीज का उपचार भी नही करते है तथा बीज जमाव प्रतिशत की जांच नही की जाती है।	संस्तुति प्रजाति के बीज या तो नया ले और बीज खरीदने में पैसा न लगे बीज खेत तकनीक से स्वयं बीज तैयार करें घर के बीज की सफाई करके बुवाई के 10 दिन पूर्व ट्राइकोडर्मा जैव फंफूदीनाशक से उपचारित जरूर करें।
		(iii) छिटकवां बुवाई करते है। जिससे बीज अधिक लगता है तथा उर्वरक व सिंचाई का समुचित उपयोग नही हो पाता है।	बुवाई हमेशा सीडड्रिल से व कूँड़ में ही बुवाई करना चाहिए जिससे कम बीज उपयोग, उर्वरक का समुचित प्रयोग एवं तेज हवा मे गिरने से बचाव तथा कृषि क्रियाएं जैसे निराई–गुड़ाई करने में आसानी के साथ अधिक एव गुणवत्तापूर्ण उत्पादन मिलता है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

क्र0 सं0	फसल	क्या कर रहे है	क्या करना चाहिए
		(iv) विलम्ब होने पर भी घर के बीज जो लम्बी अवधि की प्रजातियाँ है की बुवाई कर देते है।	(v) विलम्ब होने पर जीरो टिलेज से बुवाई करें। तथा विलम्ब अति विलम्ब की प्रजाति की बुवाई करें।
		(v) गेहूँ की बुवाई ऊसर एवं खादर क्षेत्र में सामान्य प्रजाति ही बो देते है। जौ की बुवाई बहुत कम क्षेत्र में की जाती है।	ऊसर क्षेत्र में आंशिक सुधरी हुयी ऊसर भूमि में ऊसर सहनशील प्रजातियाँ जैसे गेहूँ में के0आर0एल0–1–4 के0आर0एल0–19, के0आर0एल0–213, एन0डब्लू0 1067 की बुवाई करना चाहिए। खादर भूमि में गेहूँ की एच0डी0आर0–7 7, के–9351 की बुवाई करनी चाहिए। जौ सीमित सिंचाई साधन असिंचित दशा में गेहूँ से अधिक लाभप्रद है। समय से बुवाई हेतु ज्योति एन0डी0वी01445 तथा ऊसर भूमि में नरेन्द्र जौ की बुवाई करनी चाहिए।
		(vi) कटाई के बाद जुताई नही करते।	(vi) गेहूँ एवं जौ कटाई के बाद जुताई अवश्य करें (गर्मी की जुताई)
2	**तिलहन उत्पादन –**		
1.	तोरिया (लाही)	तोरिया की बुवाई कम क्षेत्र में करते है।	तोरिया खरीफ में खाली रह जाने व कटाई के बाद गेहूँ की फसल लेने हेतु बहुत लाभकारी फसल है। सितम्बर के प्रथम सप्ताह में बुवाई करनी चाहिए। प्रजाति तपेश्वरी, भवानी, पी0टी0–30 उपयुक्त है।
	राई, सरसों	(i) शीघ्र बुवाई भी सामान्य प्रजाति की बुवाई कर देते है। पीली सरसों की बुवाई कम करते है।	(i) शीघ्र बुवाई हेतु ताप सहनशील प्रजाति जैसे उर्वशी की बुवाई करे। पीली सरसों की पीताम्बरी, नरेन्द्र सरसों–2, के–88, बसंती को 10–15 सितम्बर में बोकर गेहूँ की बुवाई कर सकते है।
		(ii) बुवाई छिटकवां की जाती है।	(ii) बुवाई 45 सेमी की दूरी पर कूंड में बोना चाहिये।
		(iii) उर्वरक में सल्फर व पोटाश का प्रयोग नही के बराबर करते है।	(iii) उर्वरक मे सल्फर (40 किग्रा सल्फर या 200 किग्रा0 जिप्सम) का प्रयोग व पोटास का प्रयोग जरूर करें।
		(iv) विरलीकरण नही करते है।	(ii) सरसों का कम उत्पादन घने पौधो के कारण भी होता है अतः बुवाई के 15–20 दिन बाद घने पौधो को उखाड़कर 15 सेमी दूरी कर देना चाहियें साथ ही इसी समय निराई–गुड़ाई भी करना चाहिये जिससे खरपतवार नियंत्रण भी होता जाये।

ISBN : 978-81-904444-4-6

क्र0 सं0	फसल	क्या कर रहे है	क्या करना चाहिए
	अलसी	(i) अलसी की बुवाई एकल बहुत कम की जाती है।	(i) अलसी की एकल फसल की बुवाई करनी चाहिये। प्रजाति, शेखर, गौरव, शिखा, पार्वती, पदमिनी की बुवाई नवम्बर के प्रथम सप्ताह में करना चाहिए।
		(ii) संस्तुति उर्वरक व फसल सुरक्षा नही किया जाता है।	(ii) संस्तुति उर्वरक व फसल सुरक्षा प्रबन्धन जो आवश्यक है जरूर करना चाहिये। अलसी में गालमीज का नियंत्रण ससमय जरूर करना चाहिए।
	दलहन उत्पादन –		
	चना	(i) बीज दर अधिक व महगा होने के कारण इधर उधर से व्यवस्था कर व घर का बीज नही अनाज बोते है। अनाज का मतलब जिसको खाया जाता है बेचा जाता है जो बचता है उसी को बो दिया जाता है। बीज की व्यवस्था करने पर बिलम्ब होने पर खेत की नमी भी चली जाती है। काबुली चना की बुवाई कम करते है।	(i) चना की खेती खेत की मिटटी व संसाधन के अनरूप प्रजाति जैसे जे0जी–16, गुजरात चना–4 आधार, आलोक के0डब्लू0आर0–108 आदि का चयन किया जाय। खेत व संसधान के अनरूप बीज बोना चाहिए उसके लिये बीज का स्वावलम्बन आवश्यक है जिसके लिये एक बीज–खेत चिन्हित कर जनक आधारीय बीज 5–10 किलोग्राम प्राप्त कर पूर्ण प्रबन्धन के साथ बीज तैयार करना होगा। काबुली चना की प्रजाति पूसा–1003, चमत्कार, शुभा, बोकर लाभकारी उत्पादन ले कसते है।
		(ii) फली छेदक कीट के प्रकोप से कभी–कभी 50 प्रतिशत तक हानि हो जाती है परन्तु नियन्त्रण की जागरूकता बहुत कम है या गलत समय में दवा की अधिक मात्रा के साथ करते है। चना की फसल में सिंचाई फूल पर कर देते है।	(ii) फली छेदक कीट हो या अन्य कटुआ, दीमक व उकठा रोग सभी के नियन्त्रण हेतु सुरक्षा का उपाय अपनाना आवश्यक है। सही मात्रा में दवा, सही समय व सही विधि से दवा प्रयोग कर नियन्त्रण करना आवश्यक है। वर्षा आधारित खेती में भूमि मे लगने वाले कीट, व रोग के नियन्त्रण के लिये बुवाई के पूर्व प्रबन्धन करना पड़ता है। अन्तिम जुताई में जो भी रसायन या जैविक इसी समय मिलाना चाहिये फली छेदक कीट हेतु खेत में पंछी आश्रय हेतु जगह–जगह लकड़ी गाड़ देना चाहिये जिसमें पक्षी बैठेगें और सूड़ी को खायेगें जिसे हम जैविक नियंत्रण कहते है। चने की सिंचाई फूल के समय नही करना चाहिए।
	मटर	(i) बीज उपचार नही कर रहे है।	(i) बीज उपचार बोने से पहले आवश्यक है, बीज का उपचार ट्राइकोडर्मा से 6–8 ग्राम प्रति किग्रा0 बीज की दर से करना चाहिये।

ISBN : 978-81-904444-4-6

क्र0 सं0	फसल	क्या कर रहे है	क्या करना चाहिए
	अलसी	(i) अलसी की बुवाई एकल बहुत कम की जाती है।	(i) अलसी की एकल फसल की बुवाई करनी चाहिये। प्रजाति, शेखर, गौरव, शिखा, पार्वती, पदमिनी की बुवाई नवम्बर के प्रथम सप्ताह में करना चाहिए।
		(ii) संस्तुति उर्वरक व फसल सुरक्षा नही किया जाता है।	(ii) संस्तुति उर्वरक व फसल सुरक्षा प्रबन्धन जो आवश्यक है जरूर करना चाहिये। अलसी में गालमीज का नियंत्रण ससमय जरूर करना चाहिए।
	दलहन उत्पादन –		
	चना	(i) बीज दर अधिक व महगा होने के कारण इधर उधर से व्यवस्था कर व घर का बीज नही अनाज बोते है। अनाज का मतलब जिसको खाया जाता है बेचा जाता है जो बचता है उसी को बो दिया जाता है। बीज की व्यवस्था करने पर बिलम्ब होने पर खेत की नमी भी चली जाती है। काबुली चना की बुवाई कम करते है।	(i) चना की खेती खेत की मिटटी व संसाधन के अनरूप प्रजाति जैसे जे0जी–16, गुजरात चना–4 आधार, आलोक के0डब्लू0आर0–108 आदि का चयन किया जाय। खेत व संसधान के अनरूप बीज बोना चाहिए उसके लिये बीज का स्वावलम्बन आवश्यक है जिसके लिये एक बीज–खेत चिन्हित कर जनक आधारीय बीज 5–10 किलोग्राम प्राप्त कर पूर्ण प्रबन्धन के साथ बीज तैयार करना होगा। काबुली चना की प्रजाति पूसा–1003, चमत्कार, शुभा, बोकर लाभकारी उत्पादन ले कसते है।
		(ii) फली छेदक कीट के प्रकोप से कभी–कभी 50 प्रतिशत तक हानि हो जाती है परन्तु नियन्त्रण की जागरूकता बहुत कम है या गलत समय में दवा की अधिक मात्रा के साथ करते है। चना की फसल में सिंचाई फूल पर कर देते है।	(ii) फली छेदक कीट हो या अन्य कटुआ, दीमक व उकठा रोग सभी के नियन्त्रण हेतु सुरक्षा का उपाय अपनाना आवश्यक है। सही मात्रा में दवा, सही समय व सही विधि से दवा प्रयोग कर नियन्त्रण करना आवश्यक है। वर्षा आधारित खेती में भूमि मे लगने वाले कीट, व रोग के नियन्त्रण के लिये बुवाई के पूर्व प्रबन्धन करना पड़ता है। अन्तिम जुताई में जो भी रसायन या जैविक इसी समय मिलाना चाहिये फली छेदक कीट हेतु खेत में पंछी आश्रय हेतु जगह–जगह लकड़ी गाड़ देना चाहिये जिसमें पक्षी बैठेगें और सूड़ी को खायेगें जिसे हम जैविक नियंत्रण कहते है। चने की सिंचाई फूल के समय नही करना चाहिए।
	मटर	(i) बीज उपचार नही कर रहे है।	(i) बीज उपचार बोने से पहले आवश्यक है, बीज का उपचार ट्राइकोडर्मा से 6–8 ग्राम प्रति किग्रा0 बीज की दर से करना चाहिये।
		(ii) संस्तुति बीज व उर्वरक प्रबन्धन नही कर रहे है।	(ii) मुख्य प्रजाति आर्दश विकास, जय, इन्द्र व प्रकाश की 125 किग्रा0 बीज व 100 किग्रा डी0ए0पी0 एवं 200 किग्रा0 जिप्सम के प्रयोग के साथ बुवाई करना चाहिए।

ISBN : 978-81-904444-4-6

क्र0 सं0	फसल	क्या कर रहे है	क्या करना चाहिए
		(iii) मटर में सिंचाई फूल पर ज्यादातर नही कर रहे है।	(iii) मटर में 50 प्रतिशत फूल आने पर सिंचाई आवश्यक करनी चाहिये।
	मसूर	(i) सबसे अधिक माहूँ कीट से नुकसान होता है समय से नियन्त्रण न करने से कभी कभी 50 प्रतिशत से अधिक हानि हो जाती है।	(i) मसूर में, माहूँकीट का नियन्त्रण जैसे ही खेत में दिखना प्रारम्भ करे तुरन्त नियन्त्रण के उपाय करने चाहिये।
		मसूर की उत्तेरा बुवाई कम करते है	धान की खड़ी फसल में बुवाई की जाती है जिसमें बीज 40–50 किग्रा0/हे0 लगता है।
	राजमा	राजमा की खेती बहुत ही कम क्षेत्र में की जा रही है।	राजमा की प्रजाति उदय, मालवीय–137 बीएल–63, उत्कर्ष व अरूण की बुवाई अन्तिम अक्टूबर तक करके औसत 20–25 कुन्तल प्रति/है0 उत्पादन कर लाभ कमा सकते है।
	आलू	आलू में डी0ए0पी0 उर्वरक लगभग 6 कुन्तल प्रति/हे0 प्रयोग कर रहे है तथा पोटाश का प्रयोग बहुत कम मात्रा में कर रहे है। जिससे लागत बढ़ती और आलू की गुणवत्ता खराब होकर भण्डारण क्षमता घट रही है तथा मृदा स्वास्थ्य भी खराब हो रहा है।	आलू में उर्वरक मृदा नमूना के आधार पर करें वैसे डी0ए0पी0 150 किग्रा0 प्रति/है0 तथा पोटाश 130 किग्रा0/है0 प्रयोग करना चाहिए।
	सहफसली खेती	सहफसली खेती नहीं कर रहे है जबकि मुख्य फसल के साथ सहफसल करने से खेती की लागत कम होती है भूमि में उर्वरक उपयोग एवं सिंचाई क्षमता बढ़ती है। खेती के जोखिम को भी कम करता है।	मुख्य फसल के साथ सह फसल जो हो अलग–अलग भिन्न स्तर से उर्वरक लेने की क्षमता वाली हो जैसे हम आलू+राई आलू की तीन लाइन के बाद एक लाइन सरसों बोये। आलू+गेहूँ– (आलू की चौथी लाइन के जगह तीन लाइन गेहूँ बोये), गन्ना+तोरिया 90 सेमी0 लाइन के बीच 2 लाइने तोरिया। गन्ना+राई (5:1), रबी मक्का+ सब्जी मटर चना+अलसी, गेहूँ+राई
	जल शक्ति	खेत में व जलागम क्षेत्र मे वर्षा जल पानी रूके उसका प्रबन्धन सामूहिक रूप से नहीं किया जा रहा है खेत बड़े–बड़े पतली मेंड़ रहती है जिससे वर्षा जल के साथ उपजाऊ मिटटी बह जाती है। बौछारी (स्प्रिंकलर) सिंचाई मे अभी केवल पाइप ही ज्यादातर प्रयोग हो रहे है।	जल शक्ति बढ़ाने हेतु जल शक्ति मंत्रालय द्वारा 01 जुलाई 2019 से अभियान चलाया जा रहा है कार्य को 2006 से बुन्देलखण्ड, बीहड़ एवं वर्षा आधारित क्षेत्र पर कार्य कर पाया कि जल संरक्षण के प्रबन्धन पर जारूकता की कमी है। जिसके लिए तीन तकनीकी व प्रबन्धन विधा जल शक्ति के लिए है जिसे विस्तृत रूप से जे0एस0मॉडल की तकनीकी जो इस पुस्तिका में संलग्न की गई है उस प्रबन्धन को लागू कर जल शक्ति बढ़ाये। दलहनी फसलो में बौछारी एवं औद्योगिक फसलो के टपक सिंचाई लाभकारी है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

बीहड़ एवं ऊसर भूमि हेतु प्रभावी संस्तुतियां व तकनीकी अन्तरपूरक सुझाव
(क्या कर रहे है, क्या करना चाहिए)

क्र0 सं0	कार्य	क्या कर रहे है		क्या करना चाहिए	
		बीहड़ क्षेत्र में	ऊसर क्षेत्र में	बीहड़ क्षेत्र में	ऊसर क्षेत्र में
1.	**खेत प्रबन्धन**	खेत मे मोटी मेंड़ नहीं बनाते हैं मेड़ कटी रहती है।	खेत समतल नहीं करते पैच रहते है।	खेत मे मोटी मेड़ छोटे खेत बनाना चाहिए।	खेत समतल तथा छोटे–छोटे टुकड़े बनाने चाहिए।
2.	**कम्पोस्ट**	पकी गोबर की खाद नहीं डालते है तथा हरी खाद ढेचा की बुवाई नही करते है।	गोबर की खाद की जगह कच्चा घूरा तेज धूप में डालते हैं।	खेत में सड़ी कम्पोस्ट गोबर की खाद नाडेप कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट रबी के बुवाई के 25–30 दिन पर खेत में मिलाना चाहिए।	गेहूँ की कटाई के बाद ढेंचा की हरी खाद मई में बोकर 45–50 दिन पर पलटना चाहिए तथा पकी गोबर की खाद व धान का पुआल सड़ाना चाहिए।
3	**फसल चक्र**	कोई भी फसल बो देते हैं।	एक ही फसल लेते है।	हाईब्रिड बाजरा–मटर, तिल–चना, आदि फसल चक्र लाभकारी है।	धान–गेहूँ–ढेंचा, धान–बरसीम, धान–जौ, फसल चक्र लाभकारी है।
4.	**प्रजाति**	जो बीज उपलब्ध हो बो देते हैं।	घर का बीज यानी अनाज बोते है।	वो फसल व प्रजाति बोना चाहिए जो कम पानी नमी में तैयार हो जाये।	ऊसर भूमि की सहनशील प्रजातियां बोनी चाहिए।
5.	**उर्वरक**	ज्यादातर कोई उर्वरक प्रयोग नहीं करते हैं।	असंतुलित	मृदा नमूना के अनुसार उर्वरक प्रयोग करना चाहिए।	मृदा नमूना के अनुसार उर्वरक प्रयोग करना चाहिए। जिप्सम व जिंक का प्रयोग जरूर करना चाहिए।
6.	**सिंचाई**	नमी संरक्षण का कार्य नही करते हैं।	जल्दी सिंचाई कर देते हैं।	वर्षा जल संरक्षण के बाद निराई–गुड़ाई करके नमी संरक्षण करना चाहिए।	पहली सिंचाई 30 दिन पर गेहूँ में करनी चाहिए। इसके बाद खेत में नमी बनाये रखनी चाहिए।
7.	**फसल सुरक्षा**	बहुत ही कम करते है। कभी–कभी 50 प्रतिशत तक उपज की हानि पायी गई है।	अनियमित	वर्षा आधारित क्षेत्र में फसल सुरक्षा बुवाई के पूर्व खेत में करना चाहिए। तथा खड़ी फसल में विशेषतया माहूँ व फलीवेदक कीट का नियंत्रण ससमय करना चाहिए।	फसल निगरानी करते रहे तथा विशेषज्ञों की सलाह से तुरन्त फसल सुरक्षा करना चाहिए।

आप उपरोक्त अन्तरपूरक तकनीकी यदि अपनायेंगे तो अपने ही संसाधन व परिस्थितियों में खेती को लाभकारी बनाने में सफल रहेंगे। खेती स्वस्थ्य व टिकाऊ बनाये रखने एवं सामूहिक कार्य पद्धति का सृजन होगा।

ISBN : 978-81-904444-4-6

③ बदलते मौसम का कृषि पर प्रभाव

[1]नौशाद खान, प्रमोद कुमार, [1]सोमेन्द्र वर्मा एवं [1]अश्वनी कुमार वर्मा, [2]अविनाश पटेल
[1]चंद्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्राद्यौगिक वि० वि०, कानपुर
[2]काशी हिंदू वि० वि०, वाराणसी

कृषि की उत्पादकता पूरी तरह से मौसम, जलवायु और पानी की उपलब्धता पर निर्भर होती है; इनमें से किसी भी कारक के बदलने अथवा स्वरूप में परिवर्तन से कृषि उत्पादन प्रभावित होता है। कृषि का प्रकृति से सीधा संबंध है, जल–जंगल–जमीन ही प्रकृति का आधार हैं और यही कृषि का भी। आपदाओं से कृषि पहले भी खतरे में पड़ती रही है। बाढ़–सूखा–भूस्खलन जैसी घटनाओं ने कई बार किसानों को भुखमरी के कगार पर खड़ा किया है, लेकिन ये आपदाएं अनेक वर्षों में एक बार आती थीं इसलिए किसान संभल जाता था। आज ऐसी आपदाएं प्रतिवर्ष आ रही हैं और अपने भीषण स्वरूप में आ रही हैं। ऐसे में इनसे निपटने के उपाय ढूंढ़ना जरूरी होता जा रहा है।

आज पूरी दुनिया पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पड़ रहे हैं। जलवायु में होने वाले यह परिवर्तन ग्लेशियर व आर्कटिक क्षेत्रों से लेकर उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों तक को प्रभावित कर रहे हैं। यह प्रभाव अलग–अलग रूप में कहीं ज्यादा तो कहीं कम महसूस किए जा रहे हैं। हमारे देश का संपूर्ण क्षेत्रफल करीब 32.44 करोड़ हेक्टेयर है। इसमें से 14.26 करोड़ हेक्टेयर में खेती की जाती है। अर्थात देश के संपूर्ण क्षेत्र के 47 प्रतिशत हिस्से में खेती होती है। 2011 की जनगणना आकलन के अनुसार 65 प्रतिशत लोग रोजगार के लिए खेती पर निर्भर हैं। ऐसी स्थिति में कृषि एक महत्वपूर्ण घटक है, जिसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन या गिरावट देश की 72 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या को प्रभावित कर सकता है। जलवायु परिवर्तन एक ऐसा ही कारक है जिससे प्रभावित होकर कृषि अपना स्वरूप बदल सकती है तथा इस पर निर्भर लोगों की



ISBN : 978-81-904444-4-6

खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।

जलवायु परिवर्तन व बाढ़

भारत में मौसम बदलाव के एक प्रमुख प्रभाव के रूप में बाढ़ को देखा जा सकता है। देश का बहुत बड़ा क्षेत्र बाढ़ की विभीषिका को झेलता आ रहा है परन्तु विगत दो दशकों से बाढ़ के स्वरूप, प्रवृत्ति व आवृत्ति में व्यापक परिवर्तन देखा जा रहा है। ऐसे बदलाव के चलते कृषि, स्वास्थ्य, जीवनयापन आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और जान–माल,उत्पादकता आदि की क्षति का क्रम बढ़ा है। ऐसा नहीं है कि देश के लिए बाढ़ कोई नई बात है परन्तु मौसम में हो रहे बदलाव ने इस प्राकृतिक प्रक्रिया की तीव्रता व स्वरूप को बदल दिया है और बाढ़ की भयावह आपदा के रूप में दिखाई दे रही है। इसमें विशेषकर तेज व त्वरित बाढ़ का आना, पानी का अधिक दिनों तक रुके रहना तथा लंबे समय तक जल–जमाव की समस्या सामने आ रही है। प्रमुख परिवर्तन इस प्रकार रहे–

1. वर्षा के क्रम में परिवर्तन आए हैं। वर्षा के समय, कुल वर्षा, वर्षा की क्रमबद्धता में बदलाव स्पष्ट दिखता है।
2. बाढ़ त्वरित रूप में तेज गति से आने लगी है। बांधों के टूटने व अन्य कारणों से आकस्मिक बाढ़ भी आती रहती है।
3. छोटी नदियाँ भी बाढ़ को विकराल करने में सहयोगी बन रही हैं।
4. बड़ी झील, ताल, पोखरें आदि की निरंतर कम होती संख्या की वजह से पानी को ठहरने की जगह नहीं मिलती।
5. जल जमाव अधिक व लम्बे समय तक रह रहा है।





जलवायु परिवर्तन व सूखा

मौसम बदलाव का दूसरा प्रमुख प्रभाव सूखा के रूप में देखा जा सकता है। तापमान वृद्धि एवं वाष्पीकरण की दर तीव्र होने के परिणामस्वरूप सूखाग्रस्त क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। मौसम बदलाव के चलते वर्षा समयानुसार नहीं हो रही है और उसकी मात्रा में भी कमी आई है।

मिट्टी की जलग्रहण क्षमता का कम होना भी सूखा का एक प्रमुख कारण है। बहुत से क्षेत्र जो पहले उपजाऊ थे आज बंजर हो चले हैं वहां की उत्पादकता समाप्त हो गई है। भारत के संदर्भ में ग्रीनपीस इण्डिया की एक सर्वेक्षण रिपोर्ट इस बात को रेखांकित करती है कि भारत में सर्वाधिक आमदनी वाले वर्ग के एक फीसदी लोग सबसे कम आमदनी वाले 38 फीसदी लोगों के मुकाबले कार्बन डाइऑक्साइड का साढ़े चार गुना ज्यादा उत्सर्जन करते हैं।

भारत में ही 1955 से 2000 के बीच करीब 2–3 लाख हेक्टेयर खेती तथा वन भूमि आवासीय उपयोग में आ चुकी है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के अनुसार मात्र एक डिग्री सेंटीग्रेड तापमान में वृद्धि से भारत में 40 से 50 लाख टन गेहूं की कम उपज का अनुमान है। इससे प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता कम होगी और खाद्य असुरक्षा तथा कुपोषण बढ़ेगा। यदि जलवायु परिवर्तनों को समय रहते कम करने तथा खाद्यान्न उपलब्धता बढ़ाने हेतु प्रभावी कदम नही उठाए गए तो शहरी गरीबों पर इसका गंभीर असर पड़ेगा और कुपोषित बच्चों की संख्या और भी अधिक बढ़ जाएगी।



ISBN : 978-81-904444-4-6

जलवायु परिवर्तन का फसलों पर प्रभाव

कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के जो संभावित प्रभाव दिखने वाले हैं वह मुख्य रूप से दो प्रकार के दिखाई दे सकते हैं। एक तो क्षेत्र आधारित, दूसरे फसल आधारित अर्थात विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न फसलों पर अथवा एक ही क्षेत्र की प्रत्येक फसल पर अलग–अलग प्रभाव पड़ सकता है।

वर्ष	तापमान में वृद्धि (डिग्री से0)		वर्षा में परिवर्तन (प्रतिशत)	
	अधिकतम	न्यूनतम	अधिकतम	न्यूनतम
2015	1.23	0.95	2.32	1.52
2016	2.10	1.09	3.10	1.87
2017	2.30	1.12	9.23	7.10
2018	2.90	1.54	15.58	10.21

धान के उत्पादन पर प्रभाव

1 हमारे देश में कुल फसल उत्पादन में 42.5 प्रतिशत हिस्सा धान की खेती का है।

2 तापमान वृद्धि के साथ–साथ धान के उत्पादन में गिरावट आने लगेगी।

3 अनुमान है कि 2 से.ग्रे. तापमान वृद्धि से धान का उत्पादन 0.75 टन प्रति हेक्टेयर कम हो जाएगा।

4 देश का पूर्वी हिस्सा धान उत्पादन से ज्यादा प्रभावित होगा। अनाज की मात्रा में कमी आ जाएगी।

5 धान वर्षा आधारित फसल है इसलिए जलवायु परिवर्तन के साथ बाढ़ और सूखे की स्थितियां बढ़ने पर इस फसल का उत्पादन गेहूं की अपेक्षा ज्यादा प्रभावित होगा।

जलवायु परिवर्तन से केवल फसलों का उत्पादन ही नहीं प्रभावित होगा वरन् उनकी गुणवत्ता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। अनाज में आवश्यक पोषक तत्वों और प्रोटीन की कमी पाई जाएगी जिसके कारण संतुलित भोजन के अभाव में मनुष्यों का स्वास्थ्य प्रभावित होगा और ऐसी कमी की अन्य कृत्रिम विकल्पों से भरपाई करनी पड़ेगी। गंगा तटीय क्षेत्रों में तापमान वृद्धि के कारण अधिकांश फसलों का उत्पादन घटेगा।

जलवायु परिवर्तन का जल संसाधन पर प्रभाव

पृथ्वी पर इस समय 140 करोड़ घन मीटर जल है। इसका 97 प्रतिशत भाग खारा पानी है जो समुद्रों में स्थित है। मनुष्यों के हिस्सें में कुल 136 हजार घन मीटर जल ही बचता है। पानी तीन रूपों में पाया जाता है–तरल जो कि समुद्रों, नदियों, तालाबों और भूमिगत जल में पाया जाता है। ठोस–जो कि बर्फ के रूप में पाया जाता है।

गैस–वाष्पीकरण द्वारा जो पानी वातावरण में गैस के रूप में मौजूद होता है। पूरे विश्व में पानी की खपत प्रत्येक 20 साल में दुगुनी हो जाती है जबकि धरती पर उपलब्ध पानी की मात्रा सीमित है। जलवायु परिवर्तन के कारण कृषकों के लिए जल–आपूर्ति की भयंकर समस्या हो जाएगी तथा बाढ़ एवं सूखे की बारंबारता में वृद्धि होगी। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में लम्बे शुष्क मौसम तथा फसल उत्पादन की असफलता बढ़ती जाएगी। यही नहीं, बड़ी नदियों के मुहानों पर भी कम जल बहाव, लवणता, बाढ़ में वृद्धि तथा शहरी व औद्योगिक प्रदूषण की वजह से सिंचाई हेतु जल उपलब्धता पर भी खतरा महसूस किया जा सकता है।

हमारे जीवन में भूमिगत जल की महत्ता सबसे अधिक है। पीने के साथ–साथ कृषि व उद्योगों के लिए भी इसी जल का उपयोग किया जाता है। जनसंख्या बढ़ने के साथ ही पानी की मांग में बढ़ोतरी होने लगी है जो स्वाभाविक है। परन्तु बढ़ते जल प्रदूषण और उचित जल प्रबंधन न होने के कारण पानी आज एक समस्या बनने लगी है। सारी दुनिया में पीने योग्य पानी का अभाव होने लगा है।

गांवों में जल के पारंपरिक स्रोत लगभग समाप्त होते जा रहे हैं। गांव के तालाब, पोखरे एवं कुएँ जल का स्तर बनाए रखने में मददगार होते थे। किसान अपने खेतों में अधिक–से–अधिक वर्षा जल का संचय करता था ताकि जमीन की आर्द्रता व उपजाऊपन बना रहे। परन्तु अब बिजली से ट्यूबवेल चलाकर और कम दामों में बिजली की उपलब्धता से किसानों ने अपने खेतों में जल का संरक्षण करना छोड़ दिया।

जलवायु परिवर्तन का मिट्टी पर प्रभाव

कृषि के अन्य घटकों की तरह मिट्टी भी जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो रही है। रासायनिक खादों के प्रयोग से मिट्टी

ISBN : 978-81-904444-4-6

पहले ही जैविक कार्बनरहित हो रही थी, अब तापमान बढ़ने से मिट्टी की नमी और कार्यक्षमता प्रभावित होगी। मिट्टी में लवणता बढ़ेगी और जैव विविधता घटती जाएगी। भूमिगत जल के स्तर का गिरते जाना भी इसकी उर्वरता को प्रभावित करेगा।

बाढ़ जैसी आपदाओं के कारण मिट्टी का क्षरण अधिक होगा वहीं सूखे की वजह से इसमें बंजरता बढ़ती जाएगी। पेड़–पौधों के कम होते जाने तथा विविधता न अपनाए जाने के कारण ऊपजाऊ मिट्टी का क्षरण खेतों को बंजर बनाने में सहयोगी होगा।

जलवायु परिवर्तन का रोग व कीट पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन से कीट व रोगों की बढ़त पर जबरदस्त प्रभाव पड़ता है। तापमान, नमी तथा वातावरण की गैसों से पौधों, फफूंद तथा अन्य रोगाणुओं के प्रजनन में वृद्धि तथा कीटों और उनके प्राकृतिक शत्रुओं के अंतर्संबंध में बदलाव आदि दुष्परिणाम देखने को मिलेंगे। गर्म जलवायु कीट पंतगों की प्रजनन क्षमता में वृद्धि हेतु सहायक होती है। लम्बे समय तक चलने वाले बसंत, गर्मी व पतझड़ के मौसम में अनेक कीटों की प्रजनन संख्या अपना जीवन चक्र पूरा करती है। जाड़ों में कहीं छुपकर ये लार्वा को बचाए रखते हैं। हवा के रूख में बदलाव से हवा–जनित कीटों में वृद्धि के साथ–साथ बैक्टीरिया और फंगस में भी वृद्धि होती है। इनको नियंत्रित करने के लिए अधिक से अधिक मात्रा में कीटनाशक प्रयोग किए जाएंगे जो अन्य बीमारियों को बढ़ावा देंगे। जानवरों में बीमारियां भी समान रूप से बढ़ेंगी।

जलवायु परिवर्तन का जैव विविधता पर प्रभाव

सूखे, लवणता आदि से जमीन की उर्वरता समाप्त होने का असर पेड़–पौधों के स्वास्थ्य अथवा पुनः उगने की क्षमता पर पड़ता है। इनके नष्ट होने से उस क्षेत्र में रहने वाले मनुष्यों व जानवरों पर भारी संकट आ जाता है क्योंकि यह उनके लिए महत्वपूर्ण संसाधन हैं। इससे वहां रहने वालों की गरीबी व खाद्य–सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है।

कैसे कम हो सकता है ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन

कृषि क्षेत्र से होने वाले ग्रीनहाऊस गैसों का उत्सर्जन कम करने का सबसे प्रभावी माध्यम है जैविक खेती। अनेक अध्ययनों व क्षेत्र परीक्षणों से यह साबित हो चुका है कि जैविक कृषि अपनाकर इन नुकसानदायक गैसों के उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है।



1. जैविक खेती ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन को कम कर सकती है।
2. जैविक खेती मिट्टी में कार्बन को अवशोषित कर सकती है।

आधुनिक कृषि की तुलना में जैविक खेती से ग्रीनहाऊस गैसों का उत्सर्जन बहुत कम मात्रा में होता है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र हो या सूखाग्रस्त क्षेत्र, स्थाई या जैविक कृषि से प्रति हेक्टेयर ज्यादा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। विशेषकर यदि पारंपरिक बीजों का इस्तेमाल किया जाए तो और बेहतर परिणाम देखे जा सकते हैं। मिट्टी में कार्बन के एकत्रीकरण को जैविक खेती बहुत हद तक बढा देती है। इसमें अनेक अध्ययन किए गए जिसमें 80 प्रतिशत तक कमी पाई गई है।

नाइट्रस आक्साइड का उत्सर्जन

आधुनिक कृषि में सबसे ज्यादा नाइट्रस आक्साइड गैस का उत्सर्जन रासायनिक उर्वरकों द्वारा होता है। विश्व में रासायनिक फर्टिलाइजर की खपत 2005 में 90.86 करोड़ टन थी। जबकि इसको तैयार करने में 90 करोड़ टन फासिल फ्यूल (डीजल आदि) जलाया गया जो जलवायु परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार नाइट्रस ऑक्साइड जैसे खतरनाक गैस के उत्सर्जन को जैविक खेती ही कम कर सकती है क्योंकि इनके उत्सर्जन का मुख्य स्रोत रासायनिक फर्टिलाइजर हैं। विविधतापूर्ण खेती, जैविक खाद, फसल चक्र, हरी खाद और दलहनी फसलें भी नाइट्रस आक्साइड के उत्सर्जन को बहुत कम करने की क्षमता रखती है जोकि जैविक या स्थाई खेती के मूल स्तम्भ हैं।

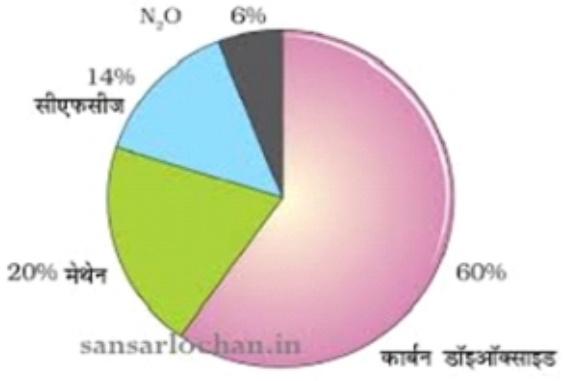
मीथेन का उत्सर्जन

कुल ग्रीनहाऊस गैसों में मिथेन का प्रतिशत 14 है जिसमें दो तिहाई हिस्सा कृषि द्वारा उत्सर्जित होता है। जैविक अथवा

ISBN : 978-81-904444-4-6

स्थाई कृषि अपनाकर इसके प्रभाव को भी कम किया जा सकता है। जानवरों की देशी प्रजातियां इसमें बहुत मददगार हैं। विशेषकर दुधारू गायों से व जानवरों के छोटे बच्चों से मिथेन का उत्सर्जन कम होता है। जानवरों के गोबर के समुचित उपयोग से भी मिथेन उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है। धान के खेतों से निकलने वाली मिथेन गैस के लिए नई उन्नत प्रजातियां, जिसमें खेत में पानी का जमाव कम करना पड़े, उचित होंगी। कम पानी वाले धान की खेती लाभदायक होगी।

कार्बन डाइआक्साइड का उत्सर्जन



जैविक खेती कार्बन को मिट्टी में अवशोषित करती है। मिट्टी के क्षरण से कार्बन का नुकसान होता है जो सीधे मिट्टी की उत्पादकता पर प्रभाव डालता है। जैविक खादों व खेती की विविधता से मिट्टी में कार्बन का उचित अनुपात बना रहता है। खाद्य सुरक्षा के दृष्टिकोण से लोगों को अपने खान–पान के तौर–तरीकों में भी बदलाव लाना होगा, जिससे रसायन आधारित खेती व विदेशी जानवरों की नस्लों में कमी आए और जलवायु परिवर्तन के दृष्टिकोण से कृषि को सुरक्षित किया जा सके।

फसल चक्र व खेत का तंत्र

1. फसलों की किस्मों को बढ़ावा;
2. फसल चक्र में बहुवर्षीय वृक्षों का सामंजस्य;
3. पौधों की क्यारियों के बीच जमीन पर फैलने वाली फसलें;
4. खेती का आत्मनिर्भर तंत्र विकसित करना।

फसल की अधिक उत्पादकता एकल खेती से प्राप्त हो सकती है और यह पूरी तरह बाजार पर निर्भर खेती है विशेषकर बीज, रसायनिक खाद व कीटनाशक के संदर्भ में। स्थाई कृषि में किसान अपने स्वयं की तैयार लागत सामग्री का उपयोग करके खेती में खर्च भी कम करता है और लाभ भी ज्यादा कमाता है। स्थाई कृषि में धरती को पोषक तत्वों की पूर्ति मिट्टी से ही हो जाती है क्योंकि जैविक खादों व दलहनी फसलों तथा साथ में वृक्षों के संयोजन से मिट्टी की सभी जरूरतें पूरी हो जाती हैं। उन्हें अतिरिक्त पोषक तत्वों की आवश्यकता नहीं रहती। स्थाई कृषि में उत्पादकता स्वयं ही बढ़ जाती है क्योंकि मिट्टी में स्वाभाविक रूप से सभी तत्व मौजूद होते हैं। जानवरों के गोबर द्वारा तैयार खाद, कृत्रिम खादों से कहीं बेहतर साबित होती है।

पोषक तत्व व खाद प्रबंधन

1. खेत में नाइट्रोजन को बढ़ाना;
2. फसल की आवश्यकता के अनुरूप ही खाद डालना;
3. नाइट्रोजन का इस्तेमाल फसल तैयार होने पर तथा मिट्टी की क्षमता के अनुरूप करना;
4. ज्यादा नाइट्रोजन का उपयोग न करना;
5. जुताई व फसल अवशेषों का प्रबन्धन;
6. कम जुताई या जुताई नहीं करना।

खेतों में देशी खाद व नाइट्रोजन–जनित पौधे लगाने से मिट्टी की गुणवत्ता बढ़ती है और नाइट्रोजन का पुनर्चक्रीयकरण होता रहता है। समय प्रबंधन इसमें बहुत महत्वपूर्ण होता है। आवश्यकता व मात्रा के अनुरूप ही नाइट्रोजन का प्रयोग करना चाहिए वरना यह गैस में तब्दील होकर उत्सर्जन करने लगता है। अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि आधुनिक खेती की तुलना में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन जैविक खेती में 36 प्रतिशत कम होता है। इसी प्रकार इन दोनों खेती की पद्धतियों में लागत व लाभ में भी स्पष्ट अंतर देखने को मिलता है। रसायन आधारित खेती में लागत अधिक है और जलवायु परिवर्तन के लिए नुकसान भी अधिक है जबकि जैविक खेती में लागत भी कम है और नुकसान भी कम है। सटीक व उपयुक्त प्रयासों से इस नुकसान को और भी कम किया जा सकता है।

पशु प्रबंधन, चरागाह व चारे की उपलब्धता

1. प्रजनन व उत्पादकता बढ़ाने हेतु;

ISBN : 978-81-904444-4-6

2. दुधारू पशुओं में प्रजनन द्वारा कार्यक्षमता बढ़ाना;
3. देशी नस्लों को बढ़ावा;
4. चरागाह में दलहनी फसलें लगाना;
7. गोबर का उचित प्रबंधन करना (बायोगैस या खाद बनाकर)।

सभी ग्रीनहाउस गैसों में 14 प्रतिशत उत्सर्जन मिथेन गैस का होता है। कहा जाता है कि इसमें जानवरों की प्रमुख भूमिका है। कृषि में स्थायित्व के लिए पशु उसका एक आवश्यक अंग है तथा जैविक खेती के लिए एक अनिवार्य तंत्र, इसलिए खेती को जानवरों से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। जानवरों में चबाने या जुगाली करने की प्रक्रिया से मिथेन उत्सर्जित होता है जबकि इसका उनके पाचन तंत्र से सीधा संबंध होता है। अतः इसमें रुकावट नहीं डाली जा सकती है। हां, कुछ तरल पोषक तत्वों को देकर इनकी अवधि में कमी लाई जा सकती है। इनके गोबर को समुचित प्रबंधन द्वारा अनेक प्रकार से उपयोग में लाया जा सकता है, जिससे इनके उत्सर्जन की प्रक्रिया कम हो जाए।

बायोगैस व अनेक प्रकार की जैविक खादें खेती के लिए उपयोगी होती हैं। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कम करने के लिए देशी नस्लों को बढ़ावा देना होगा। विदेशी नस्लों के जानवरों की कार्यक्षमता व गर्मी, सर्दी, पानी सहन करने की क्षमता कम होती है। इन सबके प्रभाव से इनकी प्रजनन क्षमता व उत्पादकता पर सीधा असर पड़ता है। रोग व बीमारियां भी इन्हें ज्यादा होती हैं जिनका प्रभाव इनके अल्प जीवन के रूप में परिणत होता है। देशी नस्लें विशेषकर दुधारू गायों से मिथेन का उत्सर्जन कम होता है, ऐसा कई अध्ययनों में पाया गया। जानवरों के भोजन व उसके प्रकार में जो अंतर होता है, वह मिथेन के उत्सर्जन हेतु उत्तरदायी है।

मिट्टी की उर्वरता बढ़ाना व बंजर भूमि का जीर्णोद्धार

1. पोषक तत्व द्वारा उर्वरता बढ़ाना;
2. देशी व जैविक खादों का प्रयोग;
3. मृदा संरक्षण तकनीक द्वारा मिट्टी के क्षरण व कार्बन व खनिज लवण को कम करना;
4. फसल अवशेषों से मल्चिंग करना;
5. पानी का संरक्षण;
6. मिट्टी के जैविक तत्व कार्बन का पृथक्करण।

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में कृषि दो तरीके से महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है–एक तो ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम करके, दूसरे वातावरण में से कार्बन डाइऑक्साइड को मिट्टी अवशोषित करके। जैविक कृषि, स्थाई कृषि, बिना जुताई के कृषि, कृषि वानिकी आदि ऐसी तकनीकें हैं जोकि मिट्टी के क्षरण को रोकती हैं और कार्बन के नुकसान को लाभ में परिवर्तित कर देती हैं। जैविक खेती इन दोनों ही माध्यमों से जलवायु परिवर्तन में कमी लाने के लिए सक्षम है। जैविक खेती में जो सबसे महत्वपूर्ण आयाम है वह यह कि इसमें किसानों के ज्ञान और कौशल को प्राथमिकता दी जाती है। उसके निरीक्षण, अनुभव व अनुमानों को खेती का आधार माना जाता है। इसीलिए बदलती परिस्थितियों में वह अपने ज्ञान व कौशल से सामंजस्य बैठा पाता है अथवा प्रयास कर पाता है, जबकि रसायन आधारित बाजार पर निर्भर खेती में किसान अपने ज्ञान का समावेश नहीं कर पाता और नुकसान उठाने को मजबूर होता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के कुछ उपाय

भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन से होने वाले प्रभावों को कम करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाने होंगे, जिनमें कुछ मुख्य इस प्रकार हैं–

फसल उत्पादन हेतु नई किस्मों का विकास

फसलों के सुरक्षित व समुचित उत्पादन हेतु ऐसी किस्मों की खेती को बढ़ावा देना होगा जो नई फसल प्रणाली व नए मौसम के अनुकूल हो। इसके लिए ऐसी किस्मों को विकसित करना होगा जो अधिक तापमान, सूखा और पानी अधिक होने पर भी सफलतापूर्वक उत्पादन कर सकें। आने वाले समय में ऐसी किस्मों की जरूरत होगी जो उर्वरक और सूर्य–विकिरण उपयोग के मामले में अधिक कुशल हों। लवणीयता और क्षारीयता को सहन करने वाली किस्मों को भी ईजाद करना होगा। अनेक पारम्परिक व प्राचीन प्रजातियों को ढूंढना होगा व उनका संरक्षण करना होगा।

सस्य विधियों में परिवर्तन

नई फसल और नए मौसम के अनुसार हमें बुआई के समय में भी बदलाव लाने होंगे ताकि तापमान का प्रभाव कम हो। फसलों के कैलेंडर में कुछ बदलाव लाकर गर्म मौसम के

ISBN : 978-81-904444-4-6

प्रकोप से बचना व नम मौसम का अधिक उपयोग करना होगा। मिश्रित खेती व एंटरक्रापिंग करके जलवायु परिवर्तन से निपटा जा सकता है। कृषि वानिकी अपनाना जलवायु परिवर्तन की अच्छी काट साबित होगा। यह केवल वातावरण में मौजूद कार्बन को सोखने का काम ही नहीं करेगी वरन् इससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ेगी व आर्थिक–सामाजिक लाभ भी प्राप्त होगा।

खेतों में जल का संरक्षण





तापमान वृद्धि के साथ–साथ धरती पर मौजूद नमी समाप्त होती जाएगी। ऐसे में खेती में नमी का संरक्षण करना और वर्षा जल को एकत्र कर सिंचाई हेतु उपयोग में लाना आवश्य क होगा। जीरो टिलेज या शून्य जुताई जैसी तकनीकों का इस्तेमाल कर पानी के अभाव से निपटा जा सकता है। शून्य जुताई के कारण धान और गेहूं की खेती में पानी की मांग की कमी देखी गई है जबकि उपज में बढ़ोतरी हुई है और उत्पादन लागत 10 प्रतिशत तक कम हो गया है। इससे मिट्टी में जैविक पदार्थों की बढ़ोतरी भी होती हैं इसी प्रकार ऊंची उठी क्यारियों में रोपाई करना भी एक बेहतरीन तकनीक है, जिसमें पानी के उपयोग की क्षमता बढ़ जाती है। जलभराव कम होता है, खरपतवार कम आते हैं, लागत कम लगती है व लाभ ज्यादा होता है।

समग्रित खेती

आज खेती की सबसे बड़ी मांग यही है। जलवायु परिवर्तन के दृष्टिकोण से खेतों में विविधता तथा फसलों के साथ वृक्षों व जानवरों का संयोजन बहुत मायने रखता है। अब तक अनुभवों तथा अध्ययनों में भी यह पाया गया कि जहां समग्रता थी वहां नुकसान का प्रतिशत कम रहा जबकि जहां एकल फसलें अथवा केवल पशुओं पर निर्भरता थी, वहां नुकसान ज्यादा हुआ। खेती में समग्रता किसान को आत्मनिर्भर बनाती है, बाजार पर उसकी निर्भरता कम होती है तथा कठिन समय में भी उसकी खाद्य सुरक्षा बनी रहती है क्योंकि एक अथवा दो गतिविधियों के नुकसान से पूरी प्रक्रिया नष्ट नहीं होती। खेती में समग्रता अर्थात घर–पशुशाला–खेत के बीच उचित सामंजस्य व इनकी एक–दूसरे पर निर्भरता। आज जलवायु परिवर्तन से होने वाले कृषि के नुकसान को कम करने के साथ ही कृषि द्वारा किए जाने वाले गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने में भी समग्र खेती मददगार साबित हो रही है। इस प्रकार जैविक अथवा स्थायी कृषि को अपनाकर कृषि द्वारा होने वाले ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम किया जा सकता है।





***

ISBN : 978-81-904444-4-6

4 ऊसर भूमि, सुधार एवं सहभागी प्रबन्धन

[1]जितेन्द्र सिंह, [2]अतर सिंह, [2]शंकर सिंह, [2]एस.एन. यमूल एवं [2]शांतनु कुमार दुबे
[1]च0 शे0 आ0 कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर, [2]भा0कृ0अनुप0 अटारी, कानपुर

ऊसर भूमि का देश में लगभग 71 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल है जिसमें सर्वाधिक उ0प्र0 में 12–13 लाख हेक्टेयर है उसके बाद गुजरात, बंगाल, राजस्थान, महाराष्ट्र, हरियाणा, कर्नाटक, उड़ीसा में है।

ऊसर भूमि सुधार की आवश्यकता – देश में तेजी से बढ़ती हुयी जनसंख्या के पोषण के लिये लगातार बढ़ती खाद्यानों की मांग भारतीय कृषि के लिये बहुत बड़ी चुनौती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कृषि उत्पादों के निर्यात में उत्तरोत्तर बढ़ती प्रतिस्पर्धा, भारतीय कृषि के लिये एक दूसरी बड़ी चुनौती है। एक तरफ कृषित भूमि में उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है दूसरी तरफ समस्याग्रस्त क्षारीय, लवणीय एवं जलमग्न भूमि को सुधार कर कृषि योग्य बनाना उतना ही महत्वपूर्ण है। ऊसर भूमि के सुधार न होने से अन्य उपजांऊ भूमि भी निरन्तर प्रभावित हो रही हैं।

लवणीय एवं क्षारीय भूमि के सुधार एवं प्रभावी सहभागी प्रबन्धन की तकनीकी जो विकसित की गयी हैं। उनको अपनाकर 2–3 वर्षों में ही कम लागत में ऊसर भूमि को सुधारा जा सकता है।

ऊसरीला नमक (घुलनशील सोडियम लवण) पानी में घुलकर अच्छे उपजाऊ खेतों को भी खराब कर देता है। ऊसर भूमि में पौधो को क्षति भूमि की भौतिक दशा खराब होने से तथा भूमि में सोडियम लवण की अधिकता के कारण होती है। अतः टिकाऊ ऊसर सुधार होना नितान्त आवश्यक है जो कि सहभागी प्रबन्धन से ही संभव है।

ऊसर भूमि बनने के कारण –

- मृदा प्रोफाइल में कड़ी परत का होना।
- लवणीय जल से लगातार सिंचाई करना।
- जल निकास तन्त्र ठीक न होना लगातार खेत में पानी भरा रहना।
- मृदा निर्माण के मूल पदार्थों की प्रकृति का ऊसर श्रोत होना।
- क्षारीय उर्वरकों का फसलों पर अधिक समय तक अधिक मात्रा में प्रयोग करना।
- उच्च जल स्तर का होना।
- शुष्क जलवायु
- हल या ऐसा कृषि यन्त्र जो समान गहराई पर कड़ी पर्त बनाये के निरन्तर प्रयोग से समान गहराई पर कड़ी पर्त का बनना

ऊसर भूमि में वायु एवं जल का संचार रूक जाता है। क्षारीय ऊसर भूमि की निचली सतह (60–90 से.मी. नीचे) कंकड़ (कैल्शियम कार्बोनेट) की परत होने के कारण पौधों की जड़े गहराई में नहीं जा पाती है –

लवणीय तक क्षारीय मृदाओं के निर्माण कैसे –

1. लवणीयकरण – (Salinization) अग्नेय चट्टानो के अपक्षय से मुक्त हुए लवण मिट्टी में पाए जाते हैं शुष्क क्षेत्रों में मिट्टी में शैले, बालू, पत्थर, ग्लेशियल, तथा हवा द्वारा लाए गये पदार्थों के द्वितीय निक्षेपो के कारण भी लवण पाये जाते है। जब ये लवण मृदा में एकत्रित होने लगते है। तो यह क्रिया लवणीयकरण कहलाती है और मृदा लवणीय हो जाती है।

2. क्षारीयकरण – क्षार के आदान–प्रदान (विनियम) के क्रिया को कैल्शियम, मैग्नीशियम, लवण पोटैशियम आदि धनायनों के साथ सोडियम भी मृदा में कोलाइडी कणों पर

ISBN : 978-81-904444-4-6

आधिशोषित हो जाती है। जैसे–2 विलयन में सान्द्रता बढ़ती जाती है यह कोलाइडी कणों पर अधिशोषित दूसरे आयनों को वहां से विस्थापित करता रहता है। इस प्रकार मृदा आधिकाधिक क्षारीय होती चली जाती हैं।

3. आधिक्य लवणों का न्यूनीकरण – इस क्रिया में आधिक्य लवणों का निक्षालन द्वारा नीचे की सतहों में चला जाता है परन्तु क्ले कणों पर अधिशोषित सोडियम वहीं पर बना रहता है। और मृदा पहले की तरह क्षारीय बनी रह जाती है।

4. निम्नीकरण – मृदा में आधिक्य लवणों के न्यूनीकरण की क्रिया जब होती है। तो उसके अन्दर कैलसियम कार्बोनेट या कैलसियम सल्फेट नहीं रह जाता है। विलेय लवणों के पूर्ण रूपेण लीचिंग द्वारा अलग हो जाने से एक ऐसी अवस्था आ जाती है जबकि मृदा कोलाइडी से विनिमेय सोडियम को विस्थापित करने के लिये भस्म नहीं बच पाती है। इस परिस्थिति में विनिमेय सोडियम जल विश्लेषित होकर सोडियम हाइड्राक्लाइड देता है। इस प्रकार उत्पन्न हुई हाइड्रोजन कुर्ले की सतह में आधिशोषित हो जाती है।

सोडियम हाइड्राक्साइड वायुमण्डलीय कार्बन डाई आक्साइड से अभिक्रिया करके सोडियम कार्बोनेट में बदल जाता है जो निक्षालन पर सोडियम के स्थान पर हाइड्रोजन लग जाता है।

ऊसर भूमि एवं इसकी पहचान –

जब भूमि में सोडियम कार्बोनेट (धोने वाला सोडा) एवं सोडियम बाई कार्बोनेट (खाने वाला सोडा) की अधिकता होती है तो ये लवण ऊपरी सतह पर आकर जमा हो जाते है जिससे भूमि का पी.एच. मान बढ़ जाता है। पी.एच. मान 8.5 से ऊपर हो जाने पर भूमि की भौतिक एवं रासायनिक दशा बिगड़ जाती है। जिससे ऐसी भूमि में किसी प्रकार का फसल उत्पादन कर पाना संभव नहीं होता है।

ऊसर भूमि में अधिक सिंचाई जल व वर्षा का पानी अधिक समय तक भरा रहता है। सूखने पर सतह के नीचे मिट्टी गीली रहती है परन्तु उसकी ऊपरी सतह शुष्क तथा कठोर दिखाई देती है सूखने पर ऐसी भूमि में दरारे पड़ जाती है। और गीला होने पर भर जाती है।

ऊसर भूमियों में पौधो की क्षति भूमि की खराब भौतिक गुण तथा भूमि में सोडियम लवण की अधिकता के कारण होती है –

भूमि की निचली सतह (80–90 सेमी0) नीचे कंकड़ (कैल्शियम कार्बोनेट) की परत होने के कारण जड़े गहराई में नहीं जाती है तथा भूमि में पानी सोखने में क्षमता कम हो जाती है। जिससे पानी काफी दिनों तक भरा रहता हैं।

अत्यधिक क्षारीयता के कारण पौधो की जड़े गलने लगती हैं भूमि का पी0एच0 मान अधिक होने के कारण पोषण तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है। ऐसी भूमियों को बिना सुधार के फसल उत्पादन करना असंभव है।

लवणीय और क्षारीय मृदाओं का सुधार –

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का सुधार रसायन विधि से करना ही शीघ्र सुधार का तरीका है परन्तु तीन प्रकार से कर सकते है।

1. भौतिक एंव जल तकनीक द्वारा ऊसर सुधार –

1. खाई खोदकर
2. मृदा की सतह को खुरचकर
3. निक्षालन करके
4. उचित जल विकास से
5. बिलेय लवणों को पानी में घोलकर पूरी तरह से बहाना...

2. रासायनिक तकनीक द्वारा ऊसर सुधार –

1. अम्ल तथा अम्ल उत्पादक पदार्थो का प्रयोग जैसे सल्फर गन्धक का अम्ल सल्फर डाईआक्साईड, फेरस, सल्फेट, पायराइट्स आदि द्वारा।
2. विलेय कैल्शियम लवणों का प्रयोग जैसे जिप्सम फास्फोजिरस, आदि।

   जिसमें विशेष प्रभावी व सुधार में प्रयोग किया जाने वाला मृदा सुधारक जिप्सम प्रयोग होता है।

3. जैविक तकनीक से ऊसर सुधार –

1. हरी खादो व फसल अवशेषों को खेत सड़ा गलाकर सुधार।
2. वनस्पतियों द्वारा
3. शीरा एवं प्रेसमड का प्रयोग करके ऊसर भूमि का सुधार किया जा सकता हैं।

ISBN : 978-81-904444-4-6

ऊसर भूमि सुधार के वर्षो में अपनाये जाने वाले फसल चक्र–

1. धान – गेहूँ – ढेचा
2. धान – सरसों
3. धान – पालक
4. धान – जौं–ज्वार जिसमें सबसे प्रभावी लाभकारी फसल चक्र धान – गेहूँ – ढेचा है।

ऊसर भूमि सुधार सहभागी कार्य प्रणाली –

ऊसर भूमि के टिकाऊ निरन्तर सुरक्षित सुधार करने हेतु पहली शर्त है कि इसे एक क्लस्टर में एक साथ मिलकर समूह बनाकर करने से व्यय कम आता है, जल निकास तन्त्र तैयार करने में बल मिलता है तथा पूरा क्षेत्र एक साथ सुधर जाने से टिकाऊ सुधार होता है तथा पानी की व्यवस्थता भी सामूहिक रूप से कम लागत में हो जाती है मतलब सहभागिता प्रबन्धन से सारे, प्रक्षेत्र विकास से लेकर फसल उत्पादन, ढेचा हरी खाद पलटने तक मिल जुलकर एक साथ किये जाने चाहिये।

ऊसर सुधार हेतु प्रक्षेत्र विकास –

1. मेड़ बन्दी – खेत के चारो ओर मजबूत, मेड एक–दो बरसात हो जाने के बाद बनाना प्रारम्भ करना चाहिए। मेड़ बरसात हो जाने के बाद बनाने पर नमीं होने से तथा नमक घुल जाने पर मजबूत मेड़ बनती है मेड़ के धरातल की चौड़ाई 90 सेमी0 ऊँचाईं 30 सेमी0 तथा मेड़ के ऊपर की सतह की चौड़ाई 30 सेमी0 होनी चाहिये। मेड़ इतनी मजबूत हो कि खेत में भरा पानी बाहर न जाये तथा बाहर का पानी अन्दर न आये।

2. समतलीकरण – मेड़ बन्दी के बाद खेत को एक सार करने हेतु खेत को समतल करते है जिससे जब निक्षालन हेतु पानी भरा जाय एक सार पानी भरे जिससे खेत का समान सुधार हो। जिप्सम व मृदा सुधारक मिलाने से पहले समतलीकरण ठीक से करना चाहिये। समतलीकरण ठीक न होने से धान–गेहूँ की फसल में ऊसर पैच दिखाई देते है खेत में निरन्तर पैच बहुत आते है। अतः जिप्सम मिलाने से पहले समतलीकरण ठीक से करें।

1. समतलीकरण के बाद खेत में सिंचाई नाली, खेत नाली यानी पानी निकास नाली मुख्य जल निकास नाली बनाते है जिससे खेत में निक्षालन के बाद नमक का पानी जल निकास तन्त्र से बाहर चला जाये। खेत नाली का मुह फाड़ 90 सेमी0 गहराई 30 सेमी0, तली 30 सेमी0 सेक्सन एरिया 0.18 वर्गमी0 रखते है।
2. खेत में पानी बराबर भरा जा सके खेत के छोटे टुकड़े कर लिये जाये।

3. मृदा नमूना – मृदा नमूना लेने का कार्य मई माह उपयुक्त है। नमूना बरसात व सिंचाई के तुरन्त बाद न लें। 6 इंच की गहराई से मृदा नमूना लेकर जिप्सम की गणना (मृदा सुधारक) हेतु प्रयोगशाला भेजने का आवश्यक कार्य है।

मृदा नमूना ऐसी जगह से लें कि पूरे खेत का प्रतिनिधित्व कर सकें। मृदा नमूना सिंचाई नाली, मेड़ के पास, गोबर खाद गढ्ढे के पास, वृक्षो के नीचे, सड़क व खलिहान के पास से न लें। क्योंकि मृदा नमूना के आधार पर ही जी.आर. वैल्यू तय होती है। जी0आर0 वैल्यू की 50 प्रतिशत जिप्सम की मात्रा सुधार में प्रयोग होती हैं। अतः मृदा नमूना बहुत ही सावधानी से ले एवं उसकी जांच ससमय करायें।

4. जिप्सम मिलाना – माह जून में जिप्सम मिलाने के पहले खेत की गहरी सिंचाई करें जिससे घुलनशील लवण कुछ नीचे चले जायें फिर निर्धारित जिप्सम की मात्रा जब हवा शांत हो तब 7–8 सेमी0 की गहराई में बराबर खेत में मिला दें। खेत मे बराबर पड़े पहले खेत में बोरी बराबर–बराबर खेत के टुकड़े में फैला दें।

5. निक्षालन क्रिया – धान लगाने के 10–15 दिन पहले खेत में 10 सेमी0 पानी 10 दिन तक भरकर रखें। जिससे निक्षालन क्रिया निरन्तर चलती रहे। और घुलनशील लवणों को नीचे पहुंचाया जा सके।

ऊसर सुधार की पहचान – यदि सभी खेत मालिक एक साथ मिलकर मेड़ बन्दी, समतलीकरण छोटे टुकड़े बनाने का कार्य कर जिप्सम मिलाकर 10 दिन तक लीचिंग ठीक से किया हो तो 11वें दिन खेत में खड़े होकर देख लें कि पानी बिलकुल साफ और तली में सब कुछ साफ दिखेगा। अन्यथा पानी गन्दला रहेगा।

ऊसर भूमि में फसलोत्पादन व प्रबन्धन –

1. धान की रोपाई – धान की उपयुक्त प्रजाति सी.एस. आर.–10, सी.एस.आर.–13, सी.एस.आर.–27, सी.एस.आर.

ISBN : 978-81-904444-4-6

–30, सरजू–52, नरेन्द्र–359, पन्तधान–10, पन्तधान–12, ऊसर धान–1 व 2, के 60 किलो ग्राम बीज प्रति हेक्टेयर के हिसाब से नर्सरी की तैयारी कर अच्छे खेत में बुआई करें। धान की रोपाई 30–35 दिन नर्सरी की करें। रोपाई लीचिंग के बाद नमक का पानी ग्यारहवें दिन निकालकर साफ पानी भरकर बिना पडलिंग के सीधे रोपाई करें।

एक जगह 3–4 पौधो का रोपण करें प्रति वर्गमीटर हिल की संख्या 65–70 होना चाहिये।

ऊसर भूमि में पौध रोपड़ हेतु जैसे–आवला, अमरूद, बेर, शीशम, बेल आदि करने हेतु गड्ढे की तैयारी गर्मी में करें यानी गड्ढे 1X1X1 मी0 की खुदाई कर पकाया जाये। ऊसर भूमि में गड्ढे की तैयारी ही पौध–चलने का एक मात्र तरीका है।

गेहूँ के खेत की तैयारी में विशेष ध्यान हो कि धान के ठूठे अधिक से अधिक छोड़कर खेत में सड़ाये।

गेहूँ की बुआई – गेहूँ की प्रजाति के0आर0एल0 1–4, के 0आर0एल0–19, के 0आर0एल0–213, के0आर0एल0–216, डब्ल्यू0एच0–157, लोक–1, राज–3077, की बुआई। 120 किग्रा0 बीज प्रति हे0 की दर से करें।

रबी में सरसों की सी0एस0–52, सी0एस0–54, सी0एस0–56 की बुवाई 9.2 से 9.8 पी.एच. की भूमि पर कर सकते है।

जौ की अम्बर ज्योति प्रजातियों की बुवाई भी कर सकते है।

ढेंचा हरी खाद – गेहूँ कटाई के बाद ढेंचा की 60 किलो ग्राम मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई करके 50 दिन पर खेत पर पलटाई कर हरी खाद सड़ायें, जिसमें भूमि की भैतिक, रासायनिक दशा सुधार के साथ–साथ 110 किग्रा0 नत्रजन (240 किग्रा0 जैविक यूरिया), 11 किग्रा0 फासफोरस/है0 जमा होता है समेकित पोषक तत्व प्रबन्धन भी होता है सुधरी ऊसर भूमि में फसल परिवर्तन तो कर लें परन्तु खेत कभी खाली न छोड़े।

टिकाऊ ऊसर सुधार हेतु सहभागी प्रबन्धकीय सुझाव –

1. ऊसर भूमि सुधार में श्रम, धैर्य, एवं सतर्कता की नितान्त आवश्यकता है।
2. ऊसर भूमि सुधार का निर्णय एक साथ मिलकर करें यानी समूह बनाकर करें।
3. ऊसर भूमि में खेत में समतलीकरण करने में कोई ढ़िलाई न करे।
4. जल निकास तंत्र सुविकसित करें।
5. सुधरी हुयी ऊसर भूमि में फसल विविधीकरण करें।
6. आंशिक सुधरी ऊसर भूमि में मूंगफली लहसुन, प्याज, पालक, मेथी सफलता पूर्वक उगा सकते है।
7. गेहूँ फसल में पहली सिंचाई 30 दिन में करें।
8. ऊसर भूमि में जिंक सल्फेट जरूर प्रयोग किया जाये।
9. ऊसर भूमि वाले खेत में जिप्सम मिलाने से पूर्व 8–10 सेमी0 पानी भरकर घुलनशील लवणों को खेत से बाहर जरूर निकलना चाहिये।
10. ऊसर भूमि में पहले 3 वर्ष तक खरीफ में धान, रबी में गेहूँ की फसल, ही बोना चाहिए।

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

5 समेकित कृषि प्रणाली अपनाकर आय दोगुनी करें

[1]अश्वनी कुमार वर्मा, [2]अतर सिंह, [2]शान्तनु कुमार दुबे, [2]शंकर सिंह, [3]मोहम्मद हसनैन
[1]चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रोधोगिकी विश्वविधालय, कानपुर, उत्तर प्रदेश।
[2]भा.कृ.अनुप.–अटारी, कानपुर
[3]भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

कृषि प्रधान देश भारत की 72.2 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है एक अनुमान के अनुसार देश की जनसंख्या 2060 तक करीब 1 अरब 70 करोड़ पहुँच जाएगी। औसत जोत अब घट करके 2011–12 में 1.11 हेक्टेयर ही रह गयी है कृषि उत्पाद की ज्यादातर प्रयोग सामग्री मँहगी होती जा रही है लेकिन इस अनुपात से कृषि उत्पाद का उचित मूल्य नहीं मिल पा रहा है जिससे एकल कृषि पर आश्रित किसानो की आर्थिक दशा खराब होती जा रही है किसानो की इसी अवस्था को बेहतर बनाने के लिए समेकित कृषि एक ऐसी प्रणाली है जिसमें ज़्यादातर वह किसान जिनके पास खेती हेतु सीमित भूमि है इस प्रणाली को अपनी भूमि में अपनाकर अधिक मुनाफ़ा कमा सकते है व अपना एवं अपने परिवार का पालन पोषण भी अच्छे से कर सकते है क्योंकि इस प्रणाली के अंतर्गत विभिन्न उद्यमो जैसे फ़सल उत्पादन, मछली उत्पादन, फल एवं सब्ज़ी उत्पादन, पशुपालन इत्यादि उधमो का इस प्रकार समायोजन किया जाता है जिससे कि वह एक दूसरे के पूरक बन सके व इस प्रणाली के द्वारा पर्यावरण को भी सुरक्षित किया जा सकता है यहाँ तक की इस प्रणाली में अगर किसी एक ऊद्यम पर कोई प्राकर्तिक आपदा का हमला भी हो जाए तो भी किसान के पास अपनी गुज़र बसर करने के लिए पर्याप्त संसाधन मौजूद रहेंगे ।

बढ़ती हुई आबादी के कारण आये दिन कृषि योग्य भूमि का अभाव होता जा रहा है जिसके कारण ज़्यादातर किसानो के पास भी कृषि योग्य भूमि की कमी होती जा रही है व इसका एक नकारात्मक प्रभाव यह भी पड़ रहा है कि कई किसान भाई सीमित भूमि से अपनी जीविका ना चला पाने के कारण काम की तलाश में शहरों की ओर जा रहे है व शहरों में महँगाई ज़्यादा होने के कारण किसान वहाँ भी ठीक प्रकार से अपनी जीविका नही चला पाता है ऐसे में किसानो को चाहिए की सीमित भूमि हो पाने की वजह से जीविका चलाने हेतु शहर की ओर ना जा कर उसी सीमित ज़मीन पर अधिक संसाधनो का एक साथ उपयोग करके अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमा सके व अपनी आय भी दो गुनी कर सकें ।

किसानो की सीमित ज़मीन व आय को दो गुना करने का एक मात्र बेहतर विकल्प है समेकित कृषि प्रणाली किसानो की आय दो गुनी करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने भी वर्ष 2022 तक लक्ष्य रखा है। सरकार ने कृषि, सहयोग एवं किसान कल्याण विभाग के द्वारा वर्षा सिंचित क्षेत्र प्राधिकरण के मुख्य कार्यकारी अधिकारी की अध्यक्षता में एक अंतर–मंत्रालय समिति का गठन किया है। इस समिति को किसानों की आय दोगुनी करने से जुड़े मुद्दों पर गौर करने और वर्ष 2022 तक सही अर्थों में किसानों की आय दोगुनी करने के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक रणनीति की सिफारिश करने का जिम्मा सौंपा गया है केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री श्री राधामोहन सिंह ने लखनऊ, उत्तर प्रदेश में आयोजित "कृषि कुम्भ 2018" के उद्घाटन समारोह में उपस्थित लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा कि कृषि क्षेत्र से प्राप्त आय किसानों की आजीविका का प्रमुख स्रोत है। इसलिए मोदी सरकार आय केंद्रित बिंदु को ध्यान में रखते हुए कृषि क्षेत्र का पुनरुत्थान कर रही है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

कृषि–2022 – किसानों की आय दोगुनी करना – विषय पर आयोजित राष्ट्रीय सम्मेलन के दौरान माननीय प्रधानमंत्री ने किसानों की आय बढ़ाने के लिए चार पहलुओं का उल्लेख किया था जिनमें कच्चे माल की लागत कम करना, उपज का उचित मूल्य सुनिश्चित करना, फसलों की बर्बादी रोकना और आमदनी के वैकल्पिक स्रोत सृजित करना शामिल हैं किसानो की सीमित ज़मीन व आय को दो गुना करने के लिए ऐसे में एक मात्र बेहतर विकल्प है समेकित कृषि प्रणाली जिसको अपनाकर वह अधिक मुनाफ़ा कमा सकते है व अपनी आय दो गुनी कर सकते है।

क्या है समेकित कृषि प्रणाली – यह तो आप सभी जानते है किप्रकृति में मौजूद हर चीज एक दूसरे पर निर्भर करती है चाहे पशु पक्षी हो पेड़ पौधे हो या फिर जीव जन्तु यँहा तक की सूर्य का प्रकाश व जल भी। इन सभी का समावेश जब कृषि में होता है तब यह कहलाता है समेकित कृषि प्रणाली। यह एक ऐसे कृषि प्रणाली है जिसमे खेत में फसल लगाने के साथ साथ किसान द्वारा दुग्ध उत्पादन, मुर्गी पालन, बत्तक पालन, मछली पालन, सब्जी एवं फल इत्यादि का उत्पादन समावेषित तरीके से एक साथ किया जाता है।

समेकित कृषि प्रणाली के मुख्य उद्देश्य – इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य यह है कि कम भूमि में कई सारे उद्यमों को अपनाकर किसान के परिवार की सभी जरूरतों को पूरा करना एवं बाजार पर किसान की निर्भरता को कम करना। इससे किसान की साल भर की खाद्यान्न की जरूरतें भी पूरी की जा सकती है तथा इसके साथ बाजार पर भी आश्रित होने की जरूरत भी नहीं पड़ती एवं इस प्रणाली के अंतर्गत अपनी आय भी दो गुनी कि जा सकती है

समेकित कृषि प्रणाली अपनाकर कमाए लाभ – किसान अपनी जोत के अनुसार एक अच्छा समेकित कृषि प्रणाली मॉडल अपनाकर विभिन्न उद्यमों को एक साथ शामिल करके तथा संसाधनों एवं समय का भरपूर उपयोग करके अधिक कृषि उत्पाद प्राप्त कर सकें और उसे बाजार में बेचकर अपनी आय को भी बढ़ा सकें तथा अन्य लाभ भी पा सकते है जैसे –

- आजीविका की सुरक्षा
- पोषाहार की सुरक्षा
- आय में वृद्धि व गरीबी मिटाने में सहायता
- भूमि एवं जल संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग
- सतत कृषि का विकास
- पर्यावरण में सुधार इत्यादि।

करें कृषि कि लागत को कम– समेकित कृषि प्रणाली को अपनाकर किसान अपनी लागत कम कर सकते है क्योकि इसमें उत्पादन में लगने वाले ज्यादातर उत्पादक सामग्री को बाजार से बहुत कम लेने की आवश्यकता पड़ती है जैसे फसलों के अवशेषों को पशुओं के चारे के रूप में प्रयोग करना एवं पशुओं के गोबर को ईंधन के रूप में प्रयोग करना, गोबर एवं फसल के अवशेष के द्वारा वर्मी कम्पोस्ट बनाकर उसे फसल में खाद से रूप में प्रयोग करना तथा इसके साथ ही साथ गोबर द्वारा बायोगैस प्लांट लगाकर बिजली उत्पादन कर उसे अपने घर एवं फार्म में प्रयोग कर बिजली की लागत को भी कम किया जा सकता है। इसके अलावा बत्तख एवं मुर्गी तथा बकरी के मलमूत्र को मछली के आहार के रूप में प्रयोग करके भी किसान अपनी लागत को कम कर सकता है।

उद्यमों का चुनाव कैसे करें ? इस प्रणाली में किसान इस बात का ध्यान अवश्य रखे कि उन्हें किन किन उद्यमों का चुनाव करना उचित रहेगा। किसानो को उद्यमों का चुनाव उपलब्ध साधनों जैसे– जल, जमीन, श्रम, ऊर्जा पूँजी एवं अपनी व अपने परिवार की जरूरत तथा अपने बाजार की माँग को ध्यान में रखकर ही करना चाहिये।

1 हेक्टेयर भूमि हेतु समेकित कृषि प्रणाली के लिए विभाजन

फसल	0.6 हेक्टेयर
कृषि वानिकी	मेड़ वृक्षारोपण
मत्स्य पालन	0.1 हेक्टेयर
मुर्गी पालन	50 पछी
बत्तख पालन	32 पक्षी
मधुमक्खी पालन	2 बॉक्स
दुग्ध उत्पादन	3 गाय/भैंस

ISBN : 978-81-904444-4-6

मत्सय पालन – मत्स्य पालन का एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि इससे ज्यादा आय में वृद्धि होती है एवं सरकार भी मछली पालन की लिए 70–80 प्रतिशत अनुदान भी प्रदान करती है मछली पालन हेतु तालाब का होना बहुत आवश्यक है क्योकि इसमें जल संचय होता है जिसका उपयोग मछली उत्पादन के अलावा पानी की कमी के दौरान फसल की सिंचाई में भी प्रयोग किया जा सकता है मछली की अच्छी पैदावार के लिए तालाब में कतला, मृगला, एवं रोहू मछली को पालना चाहिए मछली पालन का एक मुख्य कारण यह भी है कि इसमें मछली के आहार की जरूरत बत्तख, मुर्गी एवं बकरियों के मलमूत्र द्वारा पूरी की जा सकती है जिससे उनको बाहरी आहार देने की जरूरत नहीं पड़ती व यह किसान की लागत को भी कम करती है।तालाब में मछली उत्पादन के अलावा भी जैसे सिंगाड़ा की खेती, कमल की खेती भी कर सकते है।

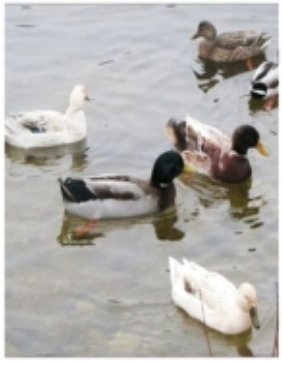
तालाब की निर्माण कैसे करें :– मछली की अच्छी पैदावार के लिए तालाब की मिट्टी व पानी का उपयुक्त होना अति आवश्यक है हो सके तो तालाब का निर्माण बरसात का मौसम आने से पूर्व करना चाहिए जिससे बरसात होने पर वारिस का पानी उसी तालाब में एकत्रित हो जाये एवं किसान अपनी पानी की लागत भी बचा सकता है तालाब निर्माण करने हेतू यदि आप के पास 1 हेक्टेयर जमीन है तो उसमे से 0.1 हेक्टेयर जमीन में तालाब का निर्माण करें। तालाब का निर्माण करते वक़्त इस बात का ध्यान रखे कि तालाब का निर्माण उस जगह करें जिसके बगल में आप मुर्गी पालन करना चाहते है जिससे कि मुर्गी का मलमूत्र सीधा तालाब में गिरे। मुर्गी पालन जमीन की सतह से कुछ ऊपर किया जाता है एवं तालाब की खुदाई में निकली मिट्टी जमीन की सतह को ऊपर करने में काम आ जायेगी एवं यह किसान के श्रम को भी बचाएगी। तालाब के निर्माण के बाद उसमें सफ़ेद चूने का छिड़काव अवश्य कर दें ऐसा करने से मछलियों को हानि पहुँचाने वाले कीट एवं अनावश्यक जीव मर जाते हैं।





कौन सा बीज उपयोग करें :– किसान बीज के लिए अपने निकटतम मत्स्य पालन विभाग अधिग्रहण से सम्पर्क कर प्राप्त कर सकते हैं पानी भर जाने के बाद उसमें मछली का बीज डाल देना चाहिये बीज डालते वक़्त ध्यान दे कि ऐसी मछलियों का बीज डाले जो कि एक वातावरण में रहकर एक दूसरे को नुकसान न पहुँचाये जैसे कत्ला, रोहू, नयन एवं मृगला तथा विदेशी कार्प में जैसे ग्रास कॉर्प , कॉमन कॉर्प फायदेमंद होता है यदि किसान देशी एवं विदेशी मिलाकर छः प्रकार की मछलियाँ पलना चाहता है तो कत्ला 20 प्रतिशत, सिल्वर कॉर्प 10 प्रतिशत, रोहू 30 प्रतिशत, नयन 15 प्रतिशत, कॉमन कॉर्प 15प्रतिशत, एवं ग्रॉस कॉर्प 10 प्रतिशत रखनी चाहिए यदि सिर्फ भारतीय मछलियों का ही पालन करना है तो कत्ला 40 प्रतिशत, रोहू 30 प्रतिशत, तथा नयन 30 प्रतिशत रखनी चाहिए।

मछली पालन के लिए आहार कैसे दें:– वैसे तो समेकित कृषि प्रणाली के अन्तर्गत मछलियों का आहार अलग से नहीं देना पड़ता क्योंकि आहार के लिए मुर्गियों का मलमूत्र ही काफी रहता है यदि फिर भी किसान अलग से आहार देना चाहते है तो वह आहार के रूप में चावल/गेंहू के आंटे की गोलियाँ एवं सरंसो/मूँगफली की खली का भी प्रयोग कर सकते है।





मछली को कब और कैसे निकालें:– बीज डालने के करीब एक वर्ष के अन्दर ही मछलियों का वजन 1–1.5 किलोग्राम हो जाए तब यह मछली बाजार में बेचने योग्य हो जाती है मछली पकड़ने हेतू ऐसे जाल का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए जिससे मछली जख्मी हो जाए क्योंकि जख्मी होने के बाद मछलियाँ सड़ने लगती हैं।

ISBN : 978-81-904444-4-6

कितना मुनाफा होगा :- यदि किसान तालाब में 5 हजार मछलियाँ पालता है और एक वर्ष के अन्दर जब प्रत्येक मछली 1–1.5 किलो की हो जाए तब उनको सौ रूपए प्रति किलो के हिसाब से बेचते है तो आपको 5 हजार मछलियाँ बेचने पर 5 लाख तक का मुनाफा होगा।

इन बातों का अवश्य यान रखें:- समेकित कृषि प्रणाली के अन्तर्गत हो सके तो मछली पालन वैज्ञानिक तरीके से करें जिसके लिए आप अपने निकटतम मत्स्य पालन विभाग अधिग्रहण या फिर कृषि विज्ञानं केन्द्र से प्रशिक्षण भी ले सकते है क्योंकि वहाँ पर कुशल वैज्ञानिको द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है

बत्तख पालन- मत्स्य पालन के साथ साथ बत्तख का भी पालन करें क्योंकि जब यह पानी में रहती है तब पानी में नाइट्रोजन एवं ऑक्सीजन की आपूर्ति होती है एवं बत्तख के मलमूत्र से फाइटोप्लेन्टस एवं ज्यूप्लेन्टस का निर्माण होता है जो की मछलियों के भोजन के रूप में काम आता है एवं यह मछली पालन की लागत को भी कम करता है।

कैसे करें बत्तख़ पालन:- बत्तख पालन हेतू समेकित कृषि प्रणाली के अन्तर्गत 1 हेक्टेयर जमीन में 25 बत्तख पालना उचित रहता है उन्नत नस्ल की बत्तख एक साल में लगभग 300 से अधिक अण्डे देती हैं एवं प्रत्येक अण्डे का वजन 65 से 70 ग्राम होता है बत्तख अधिक रेशेदार आहार पचा सकती हैं व साथ ही पानी में रहना पसंद होने से बहुत से जलचर जैसे घोंघा वगैरह खाकर भी आहार की पूर्ति करते हैं जिससे बत्तखों के खान–पान में ज़्यादा खर्च नही आता है तथा बत्तख दूसरे एवं तीसरे साल में भी काफी अण्ड़े देती हैं मुर्गियों की अपेक्षा बत्तखों की उत्पादक अवधि अधिक होती है एवं मुर्गियों की अपेक्षा बत्तखों में बीमारियाँ भी कम लगती हैं।

मुर्गी पालन- मुर्गी पालन एक उभरता हुआ व्यवसाय है जो किसानों को रोजगार पोषण और अच्छी आमदनी प्रदान करता है जिससे गरीबी उन्मूलन और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है एवं इसमें कम लागत लगाकर अच्छा मुनाफा भी कमाया जा सकता है इसके साथ ही इनके मलमूत्र को मछलियों के आहार के रूप में प्रयोग कर सकते है व अपनी लागत को कम कर सकते है मुर्गी पालन अधिकांश तालाब की सतह से ऊपर करना चाहिए जिससे उनका मलमूत्र सीधा तालाब में गिरे व मछली उसे खा सके। भारत का 80 से 85 प्रतिशत मुर्गीपालन छोटे किसानों द्वारा किया जाता हैं।

कैसे करें मुर्गी पालन:- मुर्ग़ी पालने के लिए समेकित कृषि प्रणाली के 1 हेक्टेयर मॉडल के अन्तर्गत लगभग 50 मुर्गी पालना उचित रहता है मुर्गी पालने के लिए सर्वप्रथम 50 मुर्गी के अनुसार तालाब के पास ही ज़मीन की कुछ ऊँचाई पर एक या दो कमरे बनाए ऐसा करने से मुर्ग़ी का जो भी मलमूत्र होगा वो सीधा तालाब में गिरेगा । कमरा बनाने के बाद उनमें मुर्गी के चूजों को रख दें।





सब्जी उत्पादन- इस प्रणाली के अन्तर्गत मौसमी सब्जियों का भी उत्पादन कर सकते है सब्जी उत्पादन कर वह अपने परिवार की भोजन की पूर्ति कर सकते है व इसको बाजार में बेचकर आय भी बढ़ा सकते है सब्जी जैसे– भिंडी, परवल, करेला, इत्यादि।

कैसे करें सब्जी का उत्पादन:- समेकित प्रणाली के अन्तर्गत सब्जी का उत्पादन आप दो प्रकार से कर सकते है पहला तो यह कि जैसे भिन्डी, बैंगन, सोया मेथी, धनिया इत्यादि का उत्पादन आप अपने फार्म के एक छोटे से हिस्से में जहाँ आप फसल उत्पादन करना चाहते है उसी जगह पर कुछ हिस्से में कर सकते है यह निर्भर करता है कि आप किस उद्देश्य से सब्जी उत्पादन करना चाहते है यदि आप अपने घर एवं परिवार के उद्देश्य से उत्पादन करना चाहते है तो उसे छोटी सी जगह में कर सकते है यदि आप बड़े पैमाने पर उत्पादन करना चाहते है और सब्जी से ही मुनाफा कामना चाहते है तो आप फसल उत्पादन की सम्पूर्ण जगह में सिर्फ सब्जी उत्पादन कर सकते है। दूसरा तरीका सब्जी उत्पादन का यह है जैसे आप तरोई, लौकी, करेला, परवल, इत्यादि का उत्पादन करना चाहते है तो इस सब्जियों का उत्पादन आप

ISBN : 978-81-904444-4-6




तालाब के किनारे जो जगह है उसमे ही मेड़ के दोनों तरफ डंडे लगाकर ज़मीन से कुछ ऊंचाई पर किसी चीज से मजबूत छत बनाकर उसके ऊपर कर सकते है ध्यान रहे कि छत की ऊंचाई इतनी रहे कि उसके नीचे से किसान आराम से निकल सके। इस तरह से उत्पादन करने में यह फायदा होता है कि आपको सब्जी के उत्पादन के लिए अलग से जमीन की आवश्यकता नहीं पड़ती है क्योकि इन सब्जियों की लताएँ आप छत के ऊपर चढ़ा सकते है जिससे आप कम जगह में अधिक उत्पादन कर सकते है सब्जियों का चुनाव आप अपने परिवार एवं बाजार की मांग के अनुसार करना चाहिए एवं खाद एवं उर्वरक के रूप में आप गोबर की खाद का प्रयोग कर सकते है।

सब्जी उत्पादन के लिए आपको किस किस्म का बीज प्रयोग है या आप की मिट्टी के लिए कौन सी प्रजाति का बीज प्रयोग करना ठीक रहेगा इसके लिए आप अपने निकटतम कृषि विज्ञान केन्द्र या किसी कृषि वैज्ञानिक से सम्पर्क कर सकते है।

फल उत्पादन– किसान तालाब के किनारे की खाली जमीन को फल उत्पादन करने के लिए में प्रयोग में ला सकते है तालाब के किनारे फलो के वृक्ष जैसे– पपीता, अमरुद, केला इत्यादि लगाकर उनका उत्पादन कर उनको बाजार में बेचकर अपनी आय भी बढ़ा सकते है।

फल का उत्पादन कैसे करें:– इस प्रणाली अन्तर्गत फल का उत्पादन करने के लिए तालाब के किनारे फल वाले वृक्ष जैसे अमरुद, केला, अनार, पपीता इत्यादि लगा सकते है किसान चाहे तो दो या तीन फलों के वृक्ष लगाकर एक साथ कई फलो का उत्पादन कर सकते है ऐसा करने से किसान अलग अलग मौसम में उनके उत्पादन के अनुसार बेचकर मुनाफा कमा सकते है एवं पूरे वर्षभर पैसा कमा सकते है तथा अपनी आय भी दुगनी कर सकते है।

दुग्ध उत्पादन– दुग्ध व्यवसाय किसी भी देश के कृषि अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण आधार स्तंभ हैं और सकल कृषि उत्पाद में इसका द्वितीय योगदान है। विगत वर्षों में ऑपरेशन फ्लड या श्वेत क्रांति के फलस्वरूप दूध उत्पादन में अद्वितीय वृद्धि हुई है दुग्ध व्यवसाय (फार्मिंग) ने ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक रोजगार उत्पन्न किया है और ग्रामीण समुदाय के कमजोर वर्गों को भी रोजगार के सुअवसर प्रदान किए हैं, इस व्यवसाय ने कृषकों के आय में अतिरिक्त रूप से वृद्धि भी की है दुग्ध उत्पादन के साथ ही पशुओं के गोबर को कई प्रकार से जैसे ईंधन के रूप में, वर्मी कम्पोस्ट के रूप में, बायोगैस के रूप में प्रयोग कर सकते है।

दुग्ध उत्पादन कैसे करें:– इस प्रणाली के अन्तर्गत 1 हेक्टयेर भूमि के अनुसार किसान अपने फार्म पर कम से कम 3 गाय या भैंस पाल सकते है दुग्ध उत्पादन करने के लिए गाय एवं भैंस की अच्छी दुधारू वाली नस्ल ही पालें जैसे गाय की अधिक दूध देने वाली नस्ल साहिवाल, गिरि, जर्सी तथा भैंस के अधिक दूध देने वाली नस्ल मुर्रा, भदावरी आदि। अच्छी नस्ल वाली गाय एवं भैंस काफी ज्यादा मात्रा में दूध देती है जिससे किसान ज्यादा मात्रा में दूध बेचकर अधिक मुनाफा कमा सकते है।

देख रेख एवं भोजन की व्यवस्था:– दुग्ध उत्पादन करने हेतु गाय एवं भैंस का स्वस्थ होना अति आवश्यक है किसान ध्यान दें कि जहाँ पशु रह रहे हैं वहाँ साफ़ सफाई रखें एवं समय समय पर पशुओं के स्वास्थ्य का निरीक्षण करें तथा यदि किसी पशु का स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो उसे जल्द से किसी अच्छे पशु चिकित्स्क को दिखाए एवं पशु का उपचार करें किसान चाहे तो अपने निकटतम पशुओं के अस्पताल से सम्पर्क कर अच्छा उपचार करवा सकते है। एवं पशुओ की भोजन की व्यवस्था करने के लिए किसान गेंहू का भूँसा व चारा भी दे सकता है चारा देने के लिए किसान चाहे तो 0.1 हेक्टेयर में बरसीम तथा ज्वार भी लगा सकते है।

मधुमक्खी पालन – इन उधमों के साथ साथ किसान मधुमक्खी का भी पालन कर अपनी आय को बढ़ा सकता है।

मधुमक्खी पालन कैसे करें:– मधुमक्खी से शहद एवं मोम के अतिरिक्त अन्य पदार्थ, जैसे गोंद (प्रोपोलिस, रायल जेली, डंक–विष) भी प्राप्त होते है एवं इस प्रणाली के अन्तर्गत 1 हेक्टेयर भूमि में 2 बॉक्स रखें तथा मधुमक्खी पालन हेतु

ISBN : 978-81-904444-4-6




विदेशी मधुमक्खी जैसे– ऐपिस मेलीफेरा, ऐपिस डोरसाला, ऐपिस इंडिका। ऐपिस मेलीफेरा सबसे ज्यादा शहद देने वाली एवं अण्डे देने वाली मधुमक्खी होती है किसान ध्यान दें बॉक्स को साफ़ सफाई वाली जगह रखें ताकि उनपर किसी बाह्य बीमारी का आक्रमण न हो।

कैसे तैयार होता है मधुः- एक बक्से में पांच से सात हजार मधुमक्खियां रहती हैं। इसमें एक रानी मधुमक्खी और कुछ ड्रोन (नर मधुमक्खी) व वर्कर मधुमक्खी रहती हैं। फूल के समय आम तौर पर जनवरी–फरवरी से अप्रैल–मई तक खेतों ओर बगीचों में बक्से रखे जाते हैं। तीन किमी की रेंज से मधुमक्खियां फूलों से रस लाकर बक्से के छत्ते में भरती हैं। एक दिन में रानी मधुमक्खी 1500 से 2000 अंडे देती है। वर्कर मधुमक्खियां अपने पंख से लाए रस को झेलते हुए पानी सुखाते हैं और मधु तैयार होता है। प्रोसेसिंग यूनिट में मशीनों से छत्ते से मधु निकाल कर पैक किया जाता है।

कितना मुनाफा होगाः- एक बॉक्स की कीमत लगभग 3500 होती है जिसमे 10 फ्रेम होती है एवं एक फ्रेम में 250 से 300 मधुमक्खियाँ होती है तथा एक फ्रेम से 200 ग्राम शहद प्राप्त होता है इस तरह एक बार में एक बॉक्स से 2 किलो शहद प्राप्त होता है, लगभग 10–15 दिन में एक बार शहद निकलने लायक तैयार हो जाता है इस तरह एक महीने में 4 किलो शहद प्राप्त कर सकते है तथा बाजार में बेचकर अच्छा मुनाफा कमा सकते है।




मधुमक्खी पालन के लाभः– मधुमक्खी उत्पाद जैसे मधु, रायलजेली व पराग के सेवन से मानव स्वस्थ एवं निरोगित होता है मधु का नियमित सेवन करने से तपेदिक, अस्थमा, कब्जियत, खून की कमी, रक्तचाप की बीमारी नहीं होती है रायल जेली का सेवन करने से ट्यूमर नहीं होता है और स्मरण शक्ति व आयु में वृद्वि होती है मधु मिश्रित पराग का सेवन करने से प्रास्ट्रेटाइटिस की बीमारी नहीं होती है मौनी विष से गाठिया, बताश व कैंसर की दवायें बनायी जाती हैं बी–थिरैपी से असाध्य रोगों का निदान किया जाता है।

फसल उत्पादनः– फसल उत्पादन से हमें दो प्रकार के फायदे होते है एक तो हमें अनाज की प्राप्ति होती है और दूसरा फायदा यह की हमें पशुओं के लिए चारा प्रबन्धन कहीं दूसरी जगह से नहीं करना पड़ता है।




फसल उत्पादन कैसे करेंः- समेकित कृषि प्रणाली के अन्तर्गत 1 हेक्टेयर जमीन में 0.6 हेक्टेयर में फसल उत्पादन कर सकते है जिसमे आप चावल, गेंहूँ, मक्का इत्यादि फसलों का उत्पादन कर सकते है इस प्रणाली के अन्तर्गत फसल उत्पादन में किसान की कम लागत लगती है क्योंकि ज्यादा से ज्यादा उत्पादक सामग्री जैसे खाद एवं उर्वरक किसान को वर्मी कम्पोस्ट से ही मिल जाती है किसान को फसल उत्पादन के लिए एक अच्छा फसल चक्र अपनाना चाहिए।

बकरी पालनः– गाय एवं भैंस की अपेक्षा बकरी पालन भी कर अन्य मुनाफा कमा सकते है जैसे किसान अपनी बकरियों के माँस का व्यापार कर अधिक आमदनी प्राप्त है एवं बकरियों के मलमूत्र को तालाब से डालकर मछलियो के आहार के रूप में भी दे प्रयोग कर सकता है।

ISBN : 978-81-904444-4-6





निष्कर्षः– समेकित कृषि प्रणाली द्वारा भारतीय ग्रामीण परिवार की वार्षिक खाद्यान्न चाहे दूध, ईंधन, एवं माँस की आपूर्ति तो सुनिश्चित तो है ही साथ ही साथ परिवार की अन्य मूलभूत आवश्यक्ताओं की भी पूर्ति हो रही है। इससे अब न तो सिमित भूमि और सिमित संसाधनों का रोना होगा एवं न तो बार बार मौसम को कोसना पड़ेगा, अगर समेकित कृषि प्रणाली को अपनाया जाये तो इसमें कोई शक नहीं कि किसानो के पास हर कठनाई से निकलने के लिये एक नहीं कई सारे रास्ते खुले होंगे।

पौराणिक सात कृषि वैज्ञानिक –

अत्रि

वशिष्ठ

भृगु

अंगिरस

भरद्वाज

विश्वामित्र

गौतम

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

6 बौछारी एवं टपक सिचांई : आज की आवश्यकता

अतर सिंह, शंकर सिंह एवं मोहिल कुमार
भा0कृ0अनुप0–अटारी, कानपुर

कृषि उत्पादन में सिंचाई एक प्रमुख घटक है प्रदेश में सिंचाई के प्रमुख साधन नहर, निजी नलकूप, सरकारी नलकूप हैं। पंपसेट द्वारा जलाशयों से पानी लिफ्ट कर सिंचाई की जाती है। फसलों में सिंचाई की परम्परागत विधियों से पानी की बर्बादी होती है, पानी प्रकृति का प्रदत्त संसाधन है। इसकी महत्ता एवं संरक्षण की जानकारी से पानी को बचाकर वैज्ञानिक एवं तकनीकी साधन अपनाकर कम पानी में अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। इजराइल इसका उदाहरण है जहां कम पानी में भी विभिन्न फसलों का उत्पादन लिया जा रहा है। देश के अनेक भागों में पानी की उपलब्धता अत्यन्त न्यून है फिर भी नई एवं वैज्ञानिक पद्धतियों से सिंचाई कर अधिकतम पैदावार ली जा रही है। महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र, तेलंगाना, म0प्र0, बुन्देलखण्ड में कुछ किसान इन्हीं तकनीकियों से सिंचाई का पूरा–पूरा लाभ उठाकर कम पानी की उपलब्धता के बावजूद अच्छा उत्पादन ले रहे हैं। देश में 3/4 भाग में जल उपलब्ध है जो समुद्र में खारे पानी के रूप में फसलों के किसी काम का नहीं। केवल 4% जल ही सिंचाई, पीने एवं कल कारखानों, के उपयोग हेतु उपलब्ध है। बढ़ती जरूरतें पूरी करने में पानी को बचाना आज की आवश्यकता है। फसलों में आधुनिक तरीके से सिंचाई द्वारा पानी की बचत के साथ अधिक उत्पादन लिये जाने के प्रयोग सफल हुए हैं।

सिंचाई

जरूरत पड़ने पर फसलों या पौधों को पानी देना सिंचाई कहलाता है। भूमि के खुश्क होने पर भी पानी की जरूरत का अंदाजा लगाया जाता है। सिंचाई के लिए हर क्षेत्र का अलग ही स्थान होता है जोकि निर्भर करता है कि भूमि के प्रकार पर। भूमि खुश्क भी होती है, नम भी होती है, पथरीली भी होती है। हर तरह के क्षेत्र के लिए सिंचाई के अलग–अलग साधन उपलब्ध होते हैं।

आधुनिक सिंचाई की विधि

परंपरागत सिंचाई विधि के बारे में तो सभी जानते ही हैं। आज के इस अत्याधुनिक युग में कृषि के क्षेत्र में बहुत से बदलाव हो चुके हैं और हो रहे हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण बदलाव सिंचाई के क्षेत्र में हुआ है। आधुनिक सिंचाई की विधि प्रमुख रूप से निम्नवत हैं–

1. फुवारों के द्वारा सिंचाई
2. टपक विधि

1. फुवारों के द्वारा सिंचाई– फुवारों के द्वारा सिंचाई के लिए पंप की मदद से दबाव बना कर पानी को हवा में छिड़का जाता है, हवा में छिड़का गया पानी उसकी निर्धारित सीमा के अंदर हर जगह पर सिंचाई करता है। इस विधि में पानी को फुवारों तक पहुँचाने के लिए पाइपों से गुजारा जाता है। इस विधि से हर प्रकार की मिट्टी की सिंचाई की जा सकती है। फुवारा विधि के लिए पानी के स्रोत पर वाटर पम्प को फिट किया जाता है। पंप के साथ निकासी पाइप्स को जोड़ दिया जाता है। सभी निकासी पाइप जरूरत के अनुसार उचित दूरी



ISBN : 978-81-904444-4-6

को घेरते हुए ऊपर की तरफ निकलते हुए पाइपों से जोड़ दिए जाते हैं जिनके ऊपर वर्षा करने वाल नोजेल लगी होती है। वाटर पंप से पानी का दबाव बनने के बाद नोजेल से पानी की निकासी बाहर की तरफ होती है, इसका पूरा दृश्य वर्षा की तरह ही होता है। बस ये कृत्रिम रूप से होती है।

मुख्य घटक

1. पम्पिंग स्टेशन
2. बाइपास वाल्व
3. उर्वरक टैंक
4. फिल्टर प्रणाली
5. दबाव मापक यंत्र
6. नियंत्रण वक
7. पाइप
8. पम्प कनेक्टर
9. फुवारा नोजल
10. काठी

लाभ

- मिट्टी का कटाव कम होता है।
- पानी सीधा फसल के ऊपरी सिरे पर यानी कोपलों में गिरता है।
- 30% से 50% तक पानी की बचत होती है।
- ऊँचाई पर भी आसानी से सिंचाई की जा सकती है।
- पैदावार में बढ़ोत्तरी होती है।
- सिंचाई को सुविधाजनक बनाता है।
- घुलनशील उर्वरकों को आसानी से फसल तक पहुँचाता है।
- जलवायु परिवर्तन में मददगार होता है।
- लागत को कम करता है।
- देखरेख और रखरखाव काफी आसान है।
- फसल को तनाव से मुक्त रखता है।

टपक विधि से सिंचाई

टपक विधि में प्लास्टिक के पाइप्स का इस्तेमाल किया जाता है। जोकि फुवारा विधि से बिल्कुल अलग काम करता है। इसमें पाइप को पौधे की जड़ में छोड़ा जाता है और पाइप से बहुत धीमी चाल से पानी पौधें की जड़ों को सींचता है। ये विधि फुवारा विधि से अलग है और बेहतर मानी जाती है।



टपक विधि में मिट्टी की पूरी सतह को गीला न करके सिर्फ पौधों की जड़ो को सींचा जाता है। इस विधि में नमी की मात्रा बहुत अधिक अनुकूल स्तर पर होती है।

मुख्य घटक

1. पंप स्टेशन
2. बाय पास असेंबली
3. कंट्रोल वाल्वस
4. फिल्ट्रेशन सिस्टम
5. फर्टिलाइजर टैंक
6. प्रेशर गेज
7. मेन्स/सब मेन्स
8. लेटरल
9. माइक्रो ट्यूब

टपक सिंचाई प्रणाली

पंप स्रोत से पानी लेकर सही दबाव पैदा करता है और पाइपों में संचार करता है।

कंट्रोल वाल्व पूरे सिस्टम के प्रवाह और दबाव को नियंत्रित करते हैं।

फिल्टरेशन सिस्टम पानी को साफ करता है। उर्वरक टैंक धीमी गति से सिंचाई के वक्त उर्वरक को भेजते हैं।

मेन्स लाइन, सबमेन्स लाइन और लेटरल कंट्रोल हेड से पानी को पूरा करके खेत की ओर रवाना करते हैं। ये प्लास्टिक या पोलीथिन्स से बनी नालियां होती हैं। जिन्हे भूमि के नीचे दबाना चाहिए ताकि ये खराब न हो।

एमिटर या ड्रीपर्स ऐसे उपकरण हैं जिनका उपयोग पानी के रिसाव के लिए किया जाता है। इनकी दूरी 1 मीटर या फिर कम ज्यादा हो सकती है। इनको खास

ISBN : 978-81-904444-4-6



तौर से तैयार किया होता है ताकि सही मात्रा में पानी का रिसाव करें और पौधों की जड़ों को सिंचाई करें।

ड्रिप सिंचाई प्रणाली के लिए कुछ उपयुक्त फसलें

बागों की फसल– अंगूर, केला, अनार, संतरा, आम, निम्बू, अमरूद, अनानास, नारियल, लीची, पपीता आदि।

सब्जियाँ– टमाटर, मिर्च, शिमला मिर्च, पत्तागोभी, बैंगन, बेल वाली सभी सब्जियां, प्याज, लहसुन

नकदी फसलें– गन्ना, कपास, स्ट्राबेरी

फूल– मैरीगोल्ड, जरबेरा, गुलाब, जैसमीन, कार्नेशन, डहेलिया आदि।

वृक्षों में– चाय, रबड़, काफी
मसाले– पुदीना, लांग, लायची, सौंफ, हल्दी
तेल वाली फसलें– सूरजमुखी, तील, अलसी, मूंगफली, सरसों आदि।
वन्य फसलें– बांस आदि।
फलों की फसल और सब्जी की फसलों के लिए ड्रिप सिस्टम सबसे उपयुक्त है।

लाभ

- उपज में बेहतरीन वृद्धि होती है।
- 70% तक पानी की बचत होती है।
- फसल वृद्धि में रुकावट नहीं आती।
- फसल स्वस्थ होती है।
- भूमि उपजाऊ शक्ति में वृद्धि हेती है।
- उर्वरकों की लागत में कमी आती है।
- अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती।
- हर तरह की भूमि क्षेत्रों के लिए उपयोगी है।
- पानी के माध्यम उर्वरकों को सीधा पौधों की जड़ों में पहुँचाया जाता है।
- कम पानी में अधिक सिंचाई की जाती है।

कृषि में नक्षत्र

1. अश्विनी
2. भरणी
3. कृत्तिका
4. रोहिणी
5. भृगशिया
6. आद्रा
7. पुनर्वसु
8. पुण्य
9. असलेषा
10. मघा
11. पूर्वा
12. फाल्गुनी
13. हस्त चित्रा
14. स्वाति
15. विशाखा
16. अनुराधा
17. ज्येष्ठा
18. मूल
19. पूर्वाषाढ़
20. उत्तराषाढ़ा
21. उत्तराषाढ़ा
21. उत्तभाद्र पदा
22. रेवती

पानी है अनमोल रतन ।
इसे बचाने का करो जतन।।

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

7 अच्छा बीज अधिक पैदावार

[1]मनीष कुमार सिंह, [1]मोहिल कुमार, [2]विकास रंजन चौधरी एवं [2]आकांक्षा चौधरी
[1]भा.कृ.अनुप. अटारी कानपुर, [2]कृषि विज्ञान केन्द्र, मैनपुरी

प्रदेश की कृषि में बीज गुणता का विशिष्ट महत्व है क्योंकि हमारे यहॉ फसलों की आवश्यकतानुसार सर्वोत्तम जलवायु होते हुए भी लगभग सभी फसलों का औसत उत्पादन बहुत ही कम है। जिसका प्रमुख कारण प्रदेश के कृषकों द्वारा कम गुणता वाले बीजों का लगातार प्रयोग है। जिससे फसलों में दी जाने वाली अन्य लागतों का भी हमें पूर्ण लाभ नहीं मिल पाता है। फसलों में लगने वाले अन्य लागत का अधिकतम लाभ अच्छी गुणता वाले बीजों का प्रयोग करके ही लिया जा सकता है। उच्च गुणवत्ता के प्रमाणित बीज के प्रयोग से ही लगभग 20 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

अतः किसान भाईयों को चाहिए कि वे अपनी फसलों के बीज जैस–धान, गेहूं, समस्त दलहनी फसलें एवं राई–सरसों तथा सूरजमुखी फसलों का बीज प्रत्येक तीन वर्ष में बदल कर बुवाई की जानी चाहिए। इसी प्रकार ज्वार, बाजरा, मक्का, सूरजमुखी, अरण्डी एवं राई/सरसों की फसलों में प्रत्येक तीन वर्षों पर बीज बदल कर बुवाई की जानी चाहिए।

उस बीज को उत्तम कोटि का माना जाता है जिसमें आनुवांशिक शुद्धता शत–प्रतिशत हो अन्य फसल एवं खरपतवार के बीजों से रहित हो, रोग व कीट के प्रभाव से मुक्त हो, जिसमें शक्ति और ओज भरपूर हो तथा उसकी अंकुरण क्षमता उच्च कोटि की हो, जिसमें खेत में जमाव और अन्ततः उपज अच्छी हो।

कृषि विभाग द्वारा खरीफ, रबी एवं जायद फसलों के विभिन्न प्रजाति के प्रमाणित बीजों का वितरण सभी जनपदों के विकास खण्ड स्थिति बीज भण्डार के माध्यम से उपलब्ध कराया जा रहा है।

अतः किसान भाईयों को चाहिए कि अपने विकास खण्ड से बीज प्राप्त कर अपने पुराने बीजों को बदलते हुए प्रमाणित बीजों से बुवाई करें, जिससे उनकी फसलों के उत्पादन में वृद्धि हो।

शोधित बीज बच जाने पर पुनः प्रयोग करें। बीज प्रयोगशाला से पुनः जमाव परीक्षण कराकर मानक के अनुरूप होने पर पुनः बोया जा सकता है।

देश एवं प्रदेश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या की जीविका कृषि पर आधारित है। जिसके आर्थिक एवं सामाजिक स्तर में वांछित सुधार केवल खेती के सुदृढ़ीकरण से ही संभव हैं। इन उन्नतिशील प्रजातियों के उच्च गुणवत्तायुक्त बीजों का टिकाऊ कृषि उत्पादन में उच्च स्थान है। कृषकों को मात्र नवीनतम प्रजातियों के प्रमाणित बीज ही उपलब्ध करा देने से उत्पादन में 15 से 20 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है।

प्रदेश में गेहूं, धान एवं अन्य फसलों की प्रतिस्थापना दर क्रमशः 30, 25, एवं 5–8 प्रतिशत के लगभग हैं जबकि संकर बीजों के प्रयोग से 15 से 20 प्रतिशत तक अधिक उपज प्राप्त होती है

बीज

पौधे का वह भाग जिसमें भ्रूण अवस्थित हो, जिसकी अंकुरण क्षमता, आनुवंशिक एवं भौतिक शुद्धता तथा नमी आदि मानकों के अनुरूप होने के साथ ही बीज जनित रोगों से मुक्त हो।

बीज के प्रकार

केन्द्रीय प्रजाति विमोचन समिति (सी०वी०आर०सी०) के विमोचन एवं भारत सरकार की अधिसूचना के उपरान्त ही बीज उत्पादति किया जा सकता है। अधिसूचित फसलों/प्रजातियों की निम्न श्रेणियॉ होती है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

1. प्रजनक बीज

यह बीज नाभकीय (न्यूक्लियस) बीज से बीज प्रजनक अथवा सम्बन्धित पादक प्रजनक की देखरेख में उत्पादित किया जाता है जिसकी आनुवंशिक एवं उच्च गुणवत्ता का पूरा ध्यान रखा जाता है। यह आधारीय बीज के उत्पादन का स्रोत है। इस बीज के थैलों पर सुनहरा पीला (गोल्डन) रंग का टैग लगता है जिसे सम्बन्धित अभिजनक द्वारा जारी किया जाता है।

2. आधारीय बीज

इस बीज का उत्पादन प्रजनक बीज से किया जाता है आवश्यकतानुसार आधारीय प्रथम से आधारीय द्वितीय बीज का उत्पादन किया है। इसकी उत्पादन, संसाधन, पैकिंग, रसायन उपचार एवं लेबलिंग आदि प्रक्रिया बीज प्रमाणीकरण संस्था की देखरेख में मानकों के अनुरूप होती है। इसके थैलों में लगने वाले टैग का रंग सफेद होता है।

3. प्रमाणित बीज

कृषकों को फसल उत्पादन हेतु बेचे जाने वाला बीज प्रमाणित बीज है जिसका उत्पादन आधारीय बीज से बीज प्रमाणीकरण संस्था की देख रेख में मानकों के अनुरूप किया जाता है। प्रमाणित बीज के टैग का रंग नीला होता है।

4. सत्यापित बीज (टी०एल०)

इसका उत्पादन, उत्पादन संस्था द्वारा आधारीय/प्रमाणित बीज से मानकों के अनुरूप किया जाता है। उत्पादन संस्था का लेविल लगा होता है या थैले पर उत्पादक संस्था द्वारा नियमानुसार जानकारी उपलब्ध कराई होती है।

बीज उत्पादन तकनीकी प्रक्रिया

इस विधि में एक योजना बनाकर बीज मानकों के अनुरूप वैज्ञानिक तरीकों से उत्पादित किया जाता है ताकि उत्पादन, संसाधन, भण्डारण एवं वितरण का कार्य प्रभावी ढंग से निष्पादित एवं बीज की गुणवत्ता बीज के बोने तक बनी रहे। इस प्रक्रिया की निम्न विशेषतायें हैं

- आनुवंशिक एवं भौतिक रूप से शुद्ध आधार बीज का उपयोग किया जाता है।
- उन्नत कृषि सस्य विधियों एवं फसल सुरक्षा को अपनाया जाता है।
- आनुवंशिक या भौतिक संदुषण के स्रोतों से निर्दिष्ट प्रथक्करण दूरी का ध्यान रखा जाता है।
- अनुपयुक्त पौधों की बीज फसल से समय पर निकाला जाता है।
- खरपतवार और अन्य फसलों के पौधों को भी समय से निष्कासित किया जाता है ताकि इन बीजों का फसल बीजों में मिश्रण न हो पायें।
- रोगग्रस्त पौधों को भी समय से रोग फैलाने के पूर्व निकाल दिया जाता है।
- बीज फसल की कटाई, गहाई, मड़ाई, सफाई आदि में विशेष सावधानी रखी जाती है ताकि यॉत्रिक क्षति एवं मिश्रण न हो।
- भण्डारण के समय कीट, रोग संक्रमण आदि की रोकथाम हेतु विशेष ध्यान दिया जाता है।
- आनुवंशिक एवं भौतिक शुद्धता की जॉच के लिए परीक्षण किये जाते हैं इसके अतिरिक्त अंकुरण परीक्षण, आद्रता परीक्षण आदि भी किये जाते हैं।
- बीजों का संसाधन विशेष सर्तकता के साथ किया जाता है ताकि बीजों की गुणवत्ता मानकों के अनुरूप बनी रहे।
- संसाधित बीज को उपयुक्त थैलों में भरकर प्रमाण पत्र संलग्न कर सील किया जाता है।
- न्यून तापमान एवं आद्रता पर बीजों का भण्डारण किया जाता है जिससे रोग एवं कीट से बीज सुरक्षित रहे एवं अंकुरण क्षमता प्रभावित न हो।

गुणवत्ता

बीजों की गुणवत्ता को वॉछित स्तर पर सुनिश्चित करने के लिए बीज प्रमाणीकरण का प्राविधान है। जनक बीजों का प्रमाणीकरण गठित समिति द्वारा किया जाता है जबकि आधारीय एवं प्रमाणिता बीजों का प्रमाणीकरण का उत्तरदायित्व प्रदेश की बीज प्रमाणीकरण संस्था का है। प्रमाणीकरण की प्रक्रिया निम्न चरण में पूर्ण की जाती है।

1. बीज का सत्यापन

आधारीय एवं प्रमाणित बीजों के उत्पादन हेतु क्रमशः प्रजनक

ISBN : 978-81-904444-4-6

एवं आधारीय बीजों का प्रयोग आवश्यक है। उसी श्रेणी के बीज से उसी श्रेणी के बीज उत्पादन की अनुमति विशेष परिस्थितियों में दी जाती है। बीज प्रमाणीकरण संस्था निरीक्षण के समय बिल, भण्डार रसीद तथा टैग से बीज स्रोत का सत्यापन करती है।

2. फसल निरीक्षण

पुष्पावस्था एवं फसल पकने के समय दो निरीक्षण आवश्यक हैं। निरीक्षण के समय बीज फसल में अवॉछित पौधे नहीं होने चाहिए। फसल भी खरपतवार रहित होनी चाहिए। निरीक्षण के समय खेत में जगह–जगह पर काउन्ट लिये जाते हैं। काउन्ट की संख्या खेत क्षेत्रफल तथा एक काउन्ट पौधों की संख्या पर निर्भर करती है। यदि काउन्ट में आवॉदित पौधों की संख्या निर्धारित मानक से अधिक है तो फसल निरस्त कर दी जाती है।

3. प्रयोगशाला परीक्षण

विधायन के उपरान्त प्रत्येक लाट से न्यायदर्श लेकर प्रयोगशाला में परीक्षण हेतु भेज दिया जाता है। जनक बीजों का परीक्षण विश्वविद्यालय की तथा आधारीय व प्रमाणित बीजों का परीक्षण बीज प्रमाणीकरण संस्था की प्रयोगशाला में किया जाता है। यदि कोई न्यायदर्श बीज मानक के अनुरूप नहीं पाया जाता है तो उसको निरस्त कर दिया जाता है। आधारीय व प्रमाणित बीजों का परीक्षण बीज प्रमाणीकर संस्था की प्रयोगशाला में किया जाता है। यदि कोई न्यायदर्श बीज मानक के अनुरूप नहीं पाया जाता है तो उसकों निरस्त कर दिया जाता है।

4. टैगिंग

विधायन के उपरान्त बीजों को ऐसे आकार के थैलों में भरा जाता है कि उसमें एक एकड़ बुवाई हेतु बीज आ जाय। जनक बीज पर सुनहरी पीले रंग का टैग सम्बन्धित प्रजनक तथा आधारीय व प्रमाणित बीजों पर क्रमशः सफेद व नीले रंग के टैग बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा उपलब्ध कराये जाते है।

ऋतुएं

षष्ठ ऋतु– बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर

ग्रह

नौ ग्रह– रवि, चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र, शनि, राहु, केतु

वैज्ञानिक

हमारे प्राचीन वैज्ञानिक– कणाद, गौतम, पतंजलि, आर्यभट्ट, वाराह मिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार, सुश्रत, चरक, नागार्जुन, गृहस्तभद

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

8 दोगुनी आय हेतु क्या करें !

स्वतंत्र प्रताप सिंह, राजीव सिंह, मोहिल कुमार, अमन कुमार पाण्डेय एवं निखिल विक्रम सिंह
भा.कृ.अनुप. अटारी, कानपुर

भारत आज भी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है. देश की लगभग 49 फीसदी आबादी कृषि पर निर्भर है. आजादी के बाद से ही किसानों की समस्याएं बनी हुई हैं. इनका हल नहीं निकाला जा सका है. सरकार ने 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखा है. इसे पूरा करने के लिए सरकार कम लागत में अधिक पैदावार पर जोर दे रही है. इस दिशा में आगे बढ़ते हुए सरकार ने 2 मई 2018 को हुई कैबिनेट बैठक में 'कृषोन्नति योजना' को जारी रखने की मंजूरी दी है. यह एक अंब्रैला स्कीम है. इसका मतलब यह है कि इस योजना के तहत कई स्कीम चलाई जाती हैं.

भारत में कृषि क्षेत्रक के विकास के लिये पूर्ववर्ती कार्यनीति ने मुख्यतया कृषि उत्पादन को बढ़ाने और खाद्य सुरक्षा को सुधारने पर जोर दिया। इस कार्यनीति में निम्नलिखित मुद्दों को शामिल किया गया था–

(अ) बेहतर प्रौद्योगिकी और किस्मों के माध्यम से उत्पादकता को बढ़ाना तथा गुणवत्तापूर्ण बीज, उर्वरक, सिंचाई और कृषि रसायनों के उपयोग को बढ़ावा देना।

(ब) कुछ फसलों के लिये लाभकारी कीमतों तथा कृषि संबंधी निवेश सामग्री पर सब्सिडियों के रूप में प्रोत्साहन ढाँचा तैयार करना।

(स) कृषि में और कृषि के लिये सार्वजनिक निवेश को बढ़ावा देना।

(द) इससे संबद्ध संस्थाओं को सुविधा प्रदान करना।

- इस कार्यनीति के कारण ही देश 1960 के दशक के मध्य में आए गंभीर खाद्य संकट से निपटने में समर्थ रहा। विगत पचास वर्षों (1965 से 2015) के दौरान हरित क्रांति को अपनाए जाने के बाद, भारत का खाद्य उत्पादन 3.7 गुना बढ़ा जबकि जनसंख्या में 2.55 गुना की वृद्धि हुई।
- इस कार्य नीति ने न तो किसानों की आय को बढ़ाने की जरूरत को स्पष्ट मान्यता दी और न ही किसानों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिये किसी प्रत्यक्ष उपाय का उल्लेख किया।
- किसानों की स्थिति की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत को समझते हुए केंद्र सरकार ने 2015 में कृषि मंत्रालय के नाम को बदलकर कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय कर दिया।
- यह स्पष्ट है कि किसान द्वारा कृषि से अर्जित आय, कृषि संबंधी संकट का समाधान करने और किसानों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस पृष्ठभूमि में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा 2022–23 तक किसानों की आय को दोगुना करने के लिये निर्धारित किया गया लक्ष्य, किसानों के कल्याण को बढ़ावा देने, कृषि संबंधी संकट को कम करने तथा किसानों और गैर–कृषि व्यवसायों में कार्यरत कामगारों की आय में समानता लाने में अहम भूमिका निभाएगा।

किसानों की आय में वृद्धि के स्रोत

किसानों की वास्तविक आय को 2015–16 के आधार वर्ष की तुलना में 2022–23 तक दोगुना करने के लिये किसानों की आय में 10.41 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर अपेक्षित है। इसका अर्थ यह है कि कृषि आय की वर्तमान और पूर्व में हासिल की गई वृद्धि दर को तेजी से बढ़ाना होगा। अतः कृषि क्षेत्र के अंदर और बाहर किसानों की आय को बढ़ाने के सभी संभावित स्रोतों का सदुपयोग करने के लिये सशक्त उपायों

ISBN : 978-81-904444-4-6

की जरूरत होगी कृषक क्षेत्र के अंतर्गत प्रचालनरत, वृद्धि के प्रमुख स्रोत निम्नानुसार हैं:

(क) कृषि क्षेत्र के अंतर्गत आय को बढ़ाने के स्रोत

कृषि उत्पादकता में वृद्धि

- कृषि उत्पादन को बढ़ाने के दो स्रोत हैं– अर्थात् क्षेत्र और उत्पादकता। गैर–कृषि उपयोगों के लिये भूमि की बढ़ती मांग तथा देश के सकल भौगोलिक क्षेत्र में कृषि–योग्य भूमि के पहले से ही उच्च हिस्से की वजह से कृषि क्षेत्र में आगे वृद्धि करना व्यवहार्य नहीं है।
- देश में अधिकांश फसलों की उत्पादकता कम है और इसे बढ़ाने की काफी गुंजाइश है। गेहूँ को छोड़कर देश में अन्य फसलों की उत्पादकता वैश्विक औसत से कम है और कृषि के क्षेत्र में अग्रणी देशों की तुलना में यह काफी कम है। देश के अंदर भी विभिन्न राज्यों की पैदावार में काफी अंतर है। विभिन्न राज्यों की पैदावार में एक बड़ा अंतर, सिंचाई सुविधा की उपलब्धता में अंतर की वजह से है परंतु एकसमान सिंचाई सुविधा वाले राज्यों में भी उत्पादकता में काफी अंतर दिखाई देता है।
- सिंचाई के समान स्तर पर उत्पादकता में भिन्नता और विश्व औसत की तुलना में भारत में कम पैदावार, बेहतर प्रौद्योगिकी के अपर्याप्त स्तर अथवा इसके कम उपयोग की वजह से है। देश में कृषि उत्पादकता और उत्पादन को बढ़ाने के लिये सिंचाई की उपलब्धता को बढ़ाना और प्रौद्योगिकीय उन्नति, सबसे शक्तिशाली साधन हैं।

सकल कारक उत्पादकता में सुधार

सकल कारक उत्पादकता (TFP) में सुधार, उत्पादन बढ़ाने का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है जो लागतों की बचत और इस प्रकार आय को बढ़ाने में प्रत्यक्ष योगदान देता है।

TFP, उत्पादन का वह भाग है जिसके बारे में उत्पादन में उपयोग की गई निवेश सामग्री की मात्रा से कोई स्पष्टीकरण नहीं मिलता है।

TFP, उत्पादन में किये गए कुल इनपुट्स में वृद्धि की तुलना में सकल उत्पादन वृद्धि संबंधी प्रावधानों के लिये उत्तरदायी है।

TFP की वृद्धि दर प्रौद्योगिकीय परिवर्तन, कौशल, अवसंरचना आदि जिनकी उत्पादन इनपुट्स के सैट में गणना नहीं की जाती है के प्रभाव को दर्शाती है। इसमें उत्पादन में उपयोग किये जाने वाले इनपुट्स की कुशलता में वृद्धि भी शामिल होती है।

उच्च मूल्य वाली फसलों में विविधीकरण

- उच्च मूल्य वाली फसलों (HVC) की ओर विविधीकरण, किसानों की आय में बढ़ोतरी करने की अत्यधिक गुंजाइश प्रदान करता है। मुख्य फसलों (अनाज, दालें, तिलहन) के तहत कुल अथवा सकल फसल क्षेत्र (GCA) का 77 प्रतिशत भाग है परंतु ये फसलें, फसल क्षेत्रक के कुल उत्पादन में केवल 41 प्रतिशत योगदान देती हैं।
- HVC और मुख्य फसलों के तहत क्षेत्र में बड़े अंतर की वजह से HVC के तहत क्षेत्र में 1 प्रतिशत की वृद्धि के फलस्वरूप मुख्य फसलों के तहत क्षेत्र में 0.25 प्रतिशत की कमी आती है। अतरू HVC के तहत क्षेत्र में 1 प्रतिशत की वृद्धि के फलस्वरूप फसल क्षेत्रक के उत्पादन में 0.319 प्रतिशत की वृद्धि होती है (मुख्य फसलों के तहत क्षेत्र को HVC के तहत अंतरित करने की वजह से उत्पादन में कमी को घटाने के बाद)।
- इन गणनाओं के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि यदि विविधीकरण की विगत प्रवृत्ति, भविष्य में भी जारी रहती है तो इसमें फसल क्षेत्रक के उत्पादन को प्रतिवर्ष लगभग 1 प्रतिशत बढ़ाने की क्षमता है। इसके फलस्वरूप 2022–23 तक किसानों की आय में 5 प्रतिशत वृद्धि हो सकती है।
- मुख्यतया फसलों की खेती पर गुजारा करने की बजाय वानिकी जैसे अन्य संबद्ध उद्यमों की दिशा में विविधीकरण के द्वारा भी किसानों की आय को बढ़ाने की गुंजाइश है।

फसल गहनता में वृद्धि

भारत में फसल उगाने के दो मुख्य मौसम हैं नामतः खरीफ और रबी जिसकी वजह से एक ही भूखंड पर एक वर्ष में दो फसलों की खेती करना संभव हो जाता है। सिंचाई और नई प्रौद्योगिकियों की उपलब्धता के फलस्वरूप खरीफ के मुख्य मौसम और रबी के मुख्य मौसम के बाद अल्पावधि फसलों को उगाना संभव हो गया है।

- भूमि उपयोग संबंधी आँकड़े यह दर्शाते हैं कि निवल

ISBN : 978-81-904444-4-6

बुआई क्षेत्र के केवल 38.9 प्रतिशत भाग पर ही दूसरी फसल की खेती की जाती है। इसका अर्थ यह है कि देश में 60 प्रतिशत से अधिक कृषि भूमि आधी उत्पादनकारी अवधि के दौरान अप्रयुक्त रहती है।

- एक ही भूखंड पर दूसरी फसल उगाना, देश में भूमि की कमी का समाधान करने और प्रति इकाई भूमि से आय को बढ़ाने का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के तहत हर खेत को पानी तथा अन्य घटकों पर जोर दिये जाने के फलस्वरूप सिंचाई का त्वरित विस्तार होने की आशा है जिसका फसल गहनता को बढ़ाने पर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।
- फसल गहनता में हाल ही के वर्षों में देखी गई दर से वृद्धि होने से 7 वर्षों में किसानों की आय में 3.4 प्रतिशत और दस वर्षों में 4.9 प्रतिशत की बढ़ोतरी हो सकती है

किसानों के लिये व्यापार की शर्तों को बेहतर बनाना

किसानों या कृषि क्षेत्र की वास्तविक आय का आकलन करने के लिये विभिन्न अस्फीति कारकों का उपयोग किया गया है। इनमें से कुछ है– किसानों द्वार प्रदत्त मूल्यों का सूचकांक, आगम मूल्यों का सूचकांक और गैर–कृषि वस्तुओं के थोक मूल्यों का सूचकांक आदि।

- इस कार्य हेतु (कृषि श्रमिकों के लिये उपभोक्ता मूल्य सूचकांक) का उपयोग अस्फीति कारक के रूप में किया गया है ताकि अनुमानित कृषि आय को वास्तविक कृषि आय में तबदील किया जा सके।
- ग्रामीण क्षेत्रों में वस्तुओं और सेवाओं की मुद्रास्फीति को दर्शाता है और यह कृषक परिवार के समक्ष मौजूद मुद्रास्फीति को किसी भी अन्य सूचकांक की तुलना में अधिक सटीकता से दर्शाता है।
- कृषि उत्पाद के एवज में किसानों को मिली आय अगरकी तुलना में अधिक तेजी से बढ़ती है तो इससे वास्तविक आय में वृद्धि होती है– चाहे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि न हुई हो तो भी।
- 2011–12 से 2015–16 के दौरान दो मामलों में किसानों की आय काफी कम रही। एक, स्थिर मूल्यों पर कृषि में मूल्य संवर्धित में वृद्धि बहुत कम रही। कृषि उत्पाद के कृषकों को प्राप्त मूल्यों में वृद्धि की तुलना में 50 प्रतिशत अधिक थी। भारत सरकार ने इस स्थिति को अनुकूल बनाने के लिये कई पहलें की हैं।
- किसानों को बेहतर मूल्य दिलाने के उद्देश्य से शुरू किया गया एक महत्त्वपूर्ण उपाय है:

जोतदारों को गैर–कृषि और सहायक कार्यों में लगाना

ग्रामीण क्षेत्रों में कुल कार्यबल का 64 प्रतिशत हिस्सा कृषि क्षेत्र में लगा हुआ है और कुल ग्रामीण निवल घरेलू उत्पाद में 39 प्रतिशत योगदान करता है। इससे पता चलता है कि कार्यबल कृषि पर एक सीमा से अधिक निर्भर है क्योंकि रोजगार के अन्य विकल्प नहीं हैं। इससे कृषि और गैर–कृषि क्षेत्र के बीच प्रति श्रमिक उत्पादकता में व्यापक अंतर का भी पता चलता है।

- कार्यबल को कृषि से इतर कार्यों में लगाकर किसानों की आय में काफी वृद्धि की जा सकती है।
- कृषि में कार्यबल में कमी के बावजूद रोजगार विविधीकरण निम्न कारणों से काफी धीमा है:
  - ♦ खासकर विनिर्माण क्षेत्रकों में कौशल और विनिर्दिष्ट शिक्षा स्तर की अपेक्षा
  - ♦ औद्योगिक इकाइयों का ग्रामीण बस्तियों से दूर होना
  - ♦ भावी श्रमिकों के लिये उत्पादक रोजगार सुनिश्चित करने के लिहाज से गैर–कृषि क्षेत्र की क्षमता का सीमित होना।
- कौशल विकास संबंधी सरकार की नई पहल की कृषक समुदाय के कौशल संवर्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका है जो उन्हें गैर–कृषि क्षेत्रों में बेहतर रोजगार के अवसर मुहैया करा सकता है।
- अगर जोतदारों की संख्या इसी तरह घटती रही जैसे 2004–05 से 2011–12 के बीच घटी, तो 2015–16 से 2022–23 के बीच यह संख्या 13.4 प्रतिशत घट जाएगी। इसका अर्थ यह हुआ की उपलब्ध कृषि आय 13.4 प्रतिशत कम किसानों में वितरित होगी।

किसानों की आय बढ़ाने की कार्यनीति

उत्पादन और आय में वृद्धि के स्रोतों को चार श्रेणियों में रखा जा सकता है:

ISBN : 978-81-904444-4-6

1. अवसंरचना सहित विकास पहलें

   प्रौद्योगिकी

   नीतियाँ

   सांस्थानिक तंत्र।

(1) विकास पहलें

उत्पादन बढ़ाने और लागत को कम करने के उद्देश्य से केंद्र सरकार द्वारा हाल ही में शुरू की गई कुछ विकास पहलों में शामिल हैं:

- प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना
- मृदा स्वास्थ्य कार्ड
- परंपरागत कृषि विकास योजना।

- एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहल है– प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना जिसके तहत फसल और आय में हुए नुकसान की भरपाई की जाती है।
- नदियों को परस्पर जोड़ाना भी एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहल है जिसमें उत्पादन और किसानों की आय बढ़ाने की काफी संभावनाएँ हैं।
- इन कार्यक्रमों को समयबद्ध रूप में कार्यान्वित करने की आवश्यकता है ताकि किसानों की आय पर अपेक्षित प्रभाव पड़ सके।

(2) प्रौद्योगिकी और नवप्रवर्तन

उत्पादकता और कृषक आय में संधारणीय वृद्धि के लिये हरित क्रांति के समय से ही भारतीय कृषि में प्रधान रही इनपुट बहुल प्रौद्योगिकियों की जगह नए विकल्प को अपनाने की आवश्यकता है।

- उत्पादन और किसानों की आय में लगातार वृद्धि के लिये एग्रोनिमिक प्रौद्योगिकियों, जैसे– प्रेसिजन फार्मिंग का दायरा बढ़ने के साक्ष्य लगातार बढ़ते जा रहे हैं। इसी प्रकार आधुनिक मशीनों, जैसे– भूमि समतल करने की लेजर मशीन, परिशुद्ध बुआई और रोपण मशीन और पद्धतियों जैसे (धान गहनता प्रणाली), प्रत्यक्ष बोया गया धान, शून्य जुताई, ऊपर उठी क्यारियों में रोपण और मेढ़ रोपण से तकनीकी रूप से उच्च कुशल कृषि होती है।
- किंतु इन प्रौद्योगिकियों का विकास सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा किया जाता है और बाजार में बेचने की उनकी क्षमता बेहद कमजोर है।
- इन प्रौद्योगिकियों से मिलने वाले अवसरों और ऋण लेना आसान बन जाने के बारे में किसानों को बताया जाना चाहिये तथा उनके अंगीकरण के लिये नीतिगत माहौल बनाया जाना चाहिये।

(3) नीतियाँ

भारत ने 1991 में नई आर्थिक नीति के तहत व्यापक आर्थिक सुधारों को अपनाया। इन सुधारों में उदारीकरण, विनियमन और निजी क्षेत्र से अत्यधिक नियंत्रण तथा प्रतिबंधों को समाप्त करना शामिल है जिनसे आर्थिक क्रियाकलापों में निजी क्षेत्र की सहभागिता के लिये बड़ी अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा हुईं। इनपरिवर्तनों के प्रत्युत्तर में संघ सरकार ने वर्ष 2002 से कृषि क्षेत्र में कई सुधार किये। इनमें शामिल हैं

- विनिर्दिष्ट आहार के लिये लाइसेंस लेने, भंडारण सीमा और आवाजाही प्रतिबंध की समाप्ति आदेश, 2002 और 2003। इस आदेश के अनुसार गेहूँ, धान/चावल, मोटे अनाज, चीनी, तिलहन, खाद्य तेलों, दालों, गुड़, गेहूँ उत्पादों और हाइड्रोजेनेटेड वनस्पति तेल अथवा वनस्पति को आवश्यक वस्तु अधिनियम (1955) की सूची से हटा दिया गया जिसके कारण इनके कारोबार, भंडारण और आवाजाही के लिये किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं रह गई।
- 1992 के MMPO को आशोधित कर 2002 में दुग्ध और दुग्ध उत्पाद आदेश लाया गया तथा दुग्ध प्रसंस्करण में नई क्षमता स्थापित करने संबंधी प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया गया और मिल्कशेड की अवधारणा खत्म कर दी गई।
- वर्ष 2003 में वादा कारोबार के निषेध की समाप्ति। इसके बाद कृषि विपणन में सुधार के कदम उठाए गए। संघ सरकार ने आदर्श APMC अधिनियमतैयार किया जिसे राज्य कृषि उत्पाद विपणन (विकास और विनियमन) अधिनियम, 2003 कहा गया तथा इसे कार्यान्वयन हेतु सभी राज्यों के साथ साझा किया।

किंतु कृषि संबंधी नीतिगत परिदृश्य में अधिक परिवर्तन परिलक्षित नहीं हुआ क्योंकि कृषि क्षेत्र में सुधार यत्र–तत्र,

ISBN : 978-81-904444-4-6

छिटपुट और आंशिक ही रहा।

कृषि क्षेत्र में अपेक्षित सुधारों की अनदेखी के कारण कृषि क्षेत्र और गैर–कृषि क्षेत्रों के बीच गंभीर असमानता उत्पन्न हुई है।

- 1990–91 तक दोनों क्षेत्रों की विकास दरें एक जैसी थीं और दोनों में काफी करीबी ताल्लुकात थे। जैसे–जैसे सुधार होते गए, वृद्धि–पथ में भिन्नता आती गई।
- पाँच वर्ष में औसत वार्षिक परिवर्तन दर से लगाए गए अनुमान के अनुसार अधिकतर समयावधि के दौरान गैर–कृषि क्षेत्र की वृद्धि दर 6.0 प्रतिशत से कम के स्तर से बढ़कर 8.0 प्रतिशत से अधिक हो गई। किंतु दीर्घकालिक रुझान की दृष्टि से कृषि क्षेत्र की वृद्धि दर 2.8 प्रतिशत रही।
- इस तुलना से पता चलता है कि बाजार सुधारों के अभाव में, कृषि दर कम रही और यह क्षेत्र गैर–कृषि क्षेत्रक की वृद्धि दर के मुकाबले पिछड़ गया।
- कृषि क्षेत्र को खोलने, विपणन, भूमि पट्टाकरण संबंधी विभिन्न प्रतिबंधों को हटाने और वन प्रजातियों की सामान्य भूमि पर खेती करने से किसानों का उत्पादन बढ़ेगा और उनकी आर्थिक गतिविधियाँ भी बढ़ेंगी और इन दोनों से किसानों की आय बढ़ेगी।

यह विडंबना ही है कि कई राज्यों में कटाई के बाद कई फसलों की कीमत न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम है। इससे पता चलता है कि किसानों का न्यूनतम समर्थन मूल्य से अधिक कीमत दिलाना सुनिश्चित करने के लिये प्रतिस्पर्द्धी बाजारों अथवा अन्य तंत्र की कितनी आवश्यकता है।

(4) सांस्थानिक तंत्र

- भारतीय कृषि में ज्यादातर किसान सीमांत और बहुत छोटे हैं जिन्हें कई तरह के गंभीर नुकसान झेलने पड़ते हैं। खेतों का आकार छोटा होने के कारण कई किसान अधिक प्रकार के फल और सब्जियाँ नहीं उगा पाते जिसका मुख्य कारण यह है कि मूल्य का जोखिम रहता है और विपणन काफी अलाभकारी होता है।
- छोटे आकार के खेतों के कारण आगम और निर्गम बाजारों में अलग–अलग तरह के लेन–देन के मामलों मे भी किसानों की सौदेकारिता शक्ति घटती है।
- इन समस्याओं का समाधान यह है कि किसानों को किसी सांस्थानिक तंत्र के तहत संगठित किया जाना चाहिये, जैसे– कृषि उत्पाद संगठन।

क्या किये जाने की आवश्यकता है?

- 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने के लिये फसल उत्पादकता को 4.1 प्रतिशत और संवर्द्धित पशुधन मूल्य को 6.0 प्रतिशत की दर से बढ़ाना होगा। TFP (जो मुख्यतरू कृषि अनुसंधान और विकास का परिणाम है), विस्तार सेवाओं, नए ज्ञान, दक्षता व्यवहार, जैसे– प्रेसिजन कृषि में सालाना 3.0 प्रतिशत की दर से वृद्धि करनी होगी।
- भारतीय किसानों को दो फसलों वाली भूमि के प्रतिशत को मौजूदा 40 प्रतिशत से बढ़ाकर 53 प्रतिशत करना होगा। उच्च मूल्य वाली फसलों वाली भूमि में प्रति वर्ष 4. 4 प्रतिशत की वृद्धि करनी होगी।
- बाजार सुधार भी इस प्रकार करने होंगे जिनसे किसानों को वास्तविक अर्थों में आधार स्तर से 17 प्रतिशत अधिक मूल्य मिल सके। इसके लिये किसानों को मिलने वाले मूल्यों में प्रति वर्ष 2.26 प्रतिशत की वृद्धि करनी होगी। कुल मिलाकर, जोतदारों की कुल संख्या में प्रति वर्ष 2.4 प्रतिशत की कमी करनी होगी।
- मधुमक्खी, पालन, जैसे संबद्ध क्रियाकलापों के अलावा कृषि भूमि पर वानिकी आदि से भी कृषि आय में वृद्धि हो सकती है।

विकास पहलें

- विकास पहलों में बेहतर प्रौद्योगिकी और वेरायटी के माध्यम से तथा स्तरीय बीजों, सिंचाई, उर्वरक और कृषि रसायनों का उपयोग बढ़ाकर उत्पादकता में वृद्धि करना शामिल है।
- फसल क्षेत्र के लिये इन परिवर्तियों के लक्षित स्तर को तालिका में दर्शाया गया है जो फसलों और पशुधन से किसानों की आय का लगभग 70 प्रतिशत है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

तालिका: किसानों की आय दुगुनी करने के लिये विकास पहलों के आधार स्तर और लक्ष्य

स्रोत	आधार स्तर	वर्ष लक्ष्य 2022–23
स्तरीय बीज (मिलियन टन)	3.03 (2014–15)	7.97
उर्वरक (मिलियन टन)	25.58 (2014–15)	36.24
सिंचाई (मिलियन हेक्टेयर)	92.58 (2012.13)	110.40
कृषि प्रयोजन के लिये बिजली (GWH)	147.48 (2012–13)	307.39
एक से अधिक फसल के अंतर्गत (प्रतिशत)	40.00 (2012–13)	53.00
फलों और सब्जियों के अंतर्गत क्षेत्रफल (मि.है.)	16.75 (2013–14)	26.38
उच्च उत्पादक किस्मों वाले क्षेत्रफल (है.)	69.3 (2014–15)	90.0

हरित क्रांति के 50 वर्ष के बाद भी अनाज की फसल वाले कुल क्षेत्रफल के केवल 69 प्रतिशत में उच्च उत्पादक किस्मों का उपयोग हो रहा है। चावल जैसी महत्त्वपूर्ण फसलों में देश के केवल 62 प्रतिशत क्षेत्रफल में उच्च उत्पादक किस्मों का उपयोग होता है– इसके बावजूद कि कुछ राज्य एचवाईवी के अंतर्गत 100 प्रतिशत आच्छादन दर्शा रहे हैं। कम आच्छादन वाले राज्यों में प्रमाणित बीज की बेहतर आपूर्ति के साथ पारंपरिक किस्मों वाले क्षेत्रो में उच्च उत्पादक किस्मों का उपयोग किया जा सकता है।

- किसानों को आधुनिक इनपुट की खरीदारी और कृषि परिसंपत्तियों में निवेश करने में सक्षम बनाने के लिये सांस्थानिक ऋण एक अन्य महत्त्वपूर्ण इनपुट है। सांस्थानिक ऋण में उचित दर से बढ़ोत्तरी हो रही है किंतु कई राज्यों में ऋण सुविधा खराब होने और कुल ऋण में मियादी ऋण की हिस्सेदारी घटने जैसे मुद्दे हैं। इसका समाधान करने की आवश्यकता है।

पशुधन उत्पादकता

देश में पशुधन की उत्पादकता बेहद कम है। पशुधन उत्पादकता बढ़ाने के लिये नस्ल संवर्द्धन, बेहतर चारा और पोषाहार, पशु स्वास्थ्य तथा बेहतर झुंड समूहबद्धता आवश्यक है। विकास पहलों के लिहाज से 2022–23 तक निम्नांकित लक्ष्यों के सुझाव दिये जाते हैं

- भारत में दुधारू पशुओं और भैंसों में कृत्रिम गर्भधान बमुश्किल 35 प्रतिशत है। कृत्रिम गर्भाधान कम रहने का एक मुख्य कारण है– सीमेन स्ट्रॉ। कृत्रिम गर्भाधान को उचित स्तर तक पहुँचाने के लिये हमें 160 मिलियन सीमेंट स्ट्रॉ की आवश्यकता है जबकि उपलब्धता केवल 81 मिलियन की है।
- फिलहाल गर्भाधान योग्य 4 मिलियन भैंसों, क्रॉसब्रीड वाले 1.3 मिलियन पशुओं और गर्भाधान योग्य 6 मिलियन स्वदेशी पशुओं का प्रजनन हुआ ही नहीं है। इनमें से कम–से–कम 2 मिलियन भैंसों, 0.8 मिलियन क्रॉसब्रीड और 3 मिलियन स्वदेशी पशुओं के मामले में प्रजनन के द्वारा इनकी संख्या 2020 तक और बढ़ जानी चाहिये।
- 2020 तक भैंसों के युवा होने की उम्र को 3–4 महीने कम करना होगा। फिलहाल मुर्रा भैंसे लगभग 33 माह की उम्र में युवावस्था को प्राप्त करती हैं।

संवर्द्धित प्रौद्योगिकियों का सृजन और प्रसार

- किसानों की आय को दोगुना करने के लिये बेहतर किस्मों, नस्लों, व्यवहारों, संवर्द्धित ज्ञान तथा नवप्रवर्तनों के माध्यम से इस क्षेत्र के लिये कुल कारक उत्पादकता में 3 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि करनी होगी जिसके लिये उत्पादकता में वृद्धि करना, इनपुट के प्रभावी उपभोग के माध्यम से उत्पादन की लागत को कम करना, अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिये बेहतर उत्पाद स्तर आवश्यक है।
- किस्मों, बीजों और कृषि रसायनों के अलावा अन्य प्रौद्योगिकियों– खासकर प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन संबंधी प्रौद्योगिकियों का अंगीकरण बहुत कम है। कृषि अनुसंधान में मुख्य बल उत्पादकता बढ़ाने, कृषि प्रचालनों के संरक्षण और दक्षता पर ही है।
- विभिन्न प्रकार की सामाजिक–आर्थिक और जैव–भौतिक व्यवस्थाओं के लिये कृषि प्रणाली के प्रकारों का विकास करना चाहिये जिसमें कृषि आय पर बल दिया गया हो और सभी प्रौद्योगिकियाँ एक ही पैकेज में हों। इसके लिये प्रत्येक उप–प्रणाली और फसल क्रम, मिश्रित फसल, पशुधन, बागवानी, वानिकी जैसी अन्य उप–प्रणालियों के लिये उत्पादन, संरक्षण और फसलकटाई के बाद मूल्य संवर्द्धन संबंधी प्रौद्योगिकी और सर्वोत्तम व्यवहारों को साथ लाने की आवश्यकता

ISBN : 978-81-904444-4-6

है।

नीतियाँ और सुधार

भारतीय कृषि की संभाव्यता का उपयोग करने और किसानों की आय बढ़ाने की राह में सबसे बड़ी बाधा है– संगठित निजी क्षेत्र की कृषि में कम भागीदारी होना।

- कृषि बाजार को उदार बनाने और प्रतिस्पर्द्धा बढ़ाने के लिये कई सुधारों की पहचान की गई है। इसमें राज्यों में अधिनियम में सुधार के लिये सांस्थानिक उपाय करना तथा विपणन में प्रौद्योगिकी का उपयोग बढ़ाना शामिल है।
- अल्पकालिक सुधारों के लिये चिह्नित अन्य दो क्षेत्र हैं– भूमि पट्टे का उदारीकरण और पेड़ों की कटाई/आवाजाही तथा लकड़ी आधारित उद्योग पर लगे प्रतिबंधों में ढील।
- कृषि और किसानों की आय को बढ़ाने के लिये विभिन्न प्रकार के अल्पकालिक सुधारों तथा परिवर्तनों की एक सूची तालिका में दी गई है।

क. कृषि विपणनः ई–नैम नामक एक नई पहल शुरू की गई है ताकि राज्य कृषि वस्तुओं के लिये ई–व्यापार मंचों को अपना सकें। इसमें इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफॉर्म का उपयोग कर देश भर की मंडियों का एकीकरण करना शामिल है।

कृषि क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के सुधारों की सूची

1. सांस्थानिक सुधार 1.1 से 1.7 तक के लिये प्रावधान करना
1.1 निजी मंडी
1.2 प्रत्यक्ष विपणन
1.3 अनुबंध कृषि
1.4 ई–ट्रेडिंग
1.5 एकल बिंदु लेवी
1.6 किसानों द्वारा उपभोक्ताओं को सीधी बिक्री
1.7 एकल व्यापारिक लाइसेंस
2. फलों और सब्जियों का विशेष प्रतिपादन अनधिसूचित करना
3. ई–NAM में भागीदारी

ख. भूमि पट्टारू नीति आयोग द्वारा प्रस्तावित मॉडल भूमि पट्टा कानून के आधार पर भूमि पट्टा कानून को अधिनियमित करना।

ग. निजी भूमि पर वानिकीरू वृक्षों की कटाई और ढुलाई पर लगे प्रतिबंधों को हटाना। पर्यावरण और वन मंत्रालय द्वारा जारी दिशा–निर्देशों के अनुसार इमारती लकड़ी और काष्ठ आधारित उद्योग को अनुमति देना।

■ नीति आयोग एवं कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार कृषि सुधारों को लागू और कार्यान्वित करने और विपणन की पद्धति, भूमि पट्टा कानून और कृषि भूमि पर वानिकी में परिवर्तन लाने के लिये राज्यों को सहमत करने के लिये कार्य कर रहे हैं।

उत्पादकों के लिये मूल्य प्रोत्साहन

पिछले पाँच दशकों का अनुभव दर्शाता है कि कृषि विकास पर मूल्यों का गंभीर प्रभाव पड़ता है और वे किसानों की आय के महत्त्वपूर्ण निर्धारक हैं।

- किसानों द्वारा प्राप्त किये जाने वाले मूल्यों पर सुधार का अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ने की स्थिति में फसल कटाई के मौसम में मूल्य MSP से नीचे नहीं गिरे, को सुनिश्चित करने के लिये सरकार को मूल्य हस्तक्षेप का विस्तार करना चाहिये।
- इसका कार्यान्वयन प्रापण के माध्यम से या भरपाई मूल्य भुगतान प्रणाली के माध्यम से प्रत्यक्ष मूल्य हस्तक्षेप के माध्यम से होना चाहिये। भरपाई कीमत भुगतान के तहत उत्पादकों को उनके द्वारा बाजार में बेची गई उपज की मात्रा के लिये प्रतिनिधि बाजार में कृषि फसल मूल्यों और न्यूनतम समर्थन मूल्यों के बीच अंतर का भुगतान किया जाता है।

भरोसेमंद कृषि निवेश को प्रोत्साहन

आधुनिक प्रणालियों और पद्धतियों के उपयोग की दृष्टि से हमारी कृषि में पूंजी और ज्ञान की कमी रही है। आधुनिक फर्मों के साथ संविदा कृषि के किसानों को इनपुट और उन्नत प्रौद्योगिकी, कौशल अंतरण, गारंटीकृत और लाभकारी मूल्यों और भरोसेमंद बाजार तक पहुँच का प्रावधान करने में मदद मिलती है।

- कृषि उत्पादन में आधुनिक ज्ञान और पूंजी के समावेशन में जोखिम को साझा करने, उपज के लिये आकर्षण बाजार उपलब्ध कराने तथा उच्च मूल्य उत्पादों में

ISBN : 978-81-904444-4-6

विविधीकरण के प्रोत्साहन के लिये निजी क्षेत्रक की भागीदारी की भूमिका को स्वीकार करते हुए वित्त मंत्री ने बजट 2017–18 के भाषण में उल्लेख किया कि संविदा कृषि पर एक आदर्श कानून तैयार किया जाएगा और अंगीकरण के लिये राज्यों में परिचालित किया जाएगा।

- बजट भाषण में APMC में से शीघ्र खराब होने वाली कृषि जिन्सों को अनधिसूचित करने के लिये बाजार सुधारों पर भी जोर दिया गया था।

मूल्य संवर्द्धन को प्रोत्साहन

अनौपचारिक या परंपरागत आपूर्ति शृंखलाएँ भारत में कृषि की विशेषताएँ हैं जो स्थानीय मध्यस्थ व्यक्तियों और उसके बाद लघु स्थानीय भंडारों को उत्पाद उपलब्ध कराती हैं। औपचारिक मूल्य संवर्द्धन उसी उत्पाद को सामान्यतरू बेहतर अथवा अधिक समान गुणवत्ता में, अधिक वाणिज्यिक फर्मों– थोक विक्रेताओं, सुपर बाजारों या निर्यातकों को उपलब्ध करवा सकते हैं। लघु उत्पादकों को घरेलू और निर्यातोन्मुखी दोनों प्रकार के अधिक आधुनिक मूल्य संवर्धन में समेकित करने के लिये मार्ग खोजने की आवश्यकता है।

- किसानों द्वारा उपज का अधिकांश भाग कच्चे माल के रूप में बेचा जाता है जो फसल कटाई के बाद खेतों से मंडी लाया जाता है। इससे बाजार में आधिक्य की स्थिति पैदा हो जाती है और कीमतें कम रह जाती हैं। किसान कमी के महीनों में बेचने के लिये उपज नहीं रखते हैं। अब भंडारगृह प्राप्ति और WDRA पंजीकृत भंडारगृहों में उपज को रखने के लिये प्रावधान है। इस सुविधा का लाभ कुछ किसान ही उठाते हैं।
- शीघ्र खराब होने वाली वस्तुओं के मामले में मूल्यों का एकदम नीचे आना आम बात है। कृषि भूमि पर स्थित भंडारण सुविधा की कमी, उत्पादों को अधिक समय तक सुरक्षित रखने के वैज्ञानिक तरीकों की कमी और देश में खराब प्रसंस्करण आधार, मूल्यों में एकदम कमी के कुछ कारकों में से है।
- यदि बाजार सुधारों को गंभीरता से कार्यान्वित किया जाता है, तो यह एक बड़े पैमाने पर मूल्य संवर्द्धनों सहित कृषि में निजी क्षेत्रक के प्रवेश के लिये मार्ग प्रशस्त करेगा।

उत्पादकों के संगठनों को प्रोत्साहन

- कृषि कार्य बहुत ही छोटे आकार की उत्पादन इकाइयों द्वारा किया जाता है जो छोटे आकार की कृषि जोतों पर कृषि करते हैं और उनके पास कुछ पशुधन होता है। ऐसी प्रचालनात्मक इकाइयाँ उनके छोटे आकार, खराब सौदेबाजी क्षमता और बाजार तक अपर्याप्त पहुँच के कारण अपने स्तर पर आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं होती हैं। ऐसे उत्पादकों को सामूहिक कार्य, संसाधनों के संग्रहण, समूह विपणन और फसल की कटाई उपरांत मूल्य वृद्धि कारण के लिये संस्थागत तंत्र की आवश्यकता है।
- केंद्र के स्तर पर एसएफएसी और नाबार्ड देश में किसान उत्पादक संगठन (एफपीओ) को प्रोत्साहित कर रहे हैं। तथापि देश के आकार को ध्यान में रखते हुए एफपीओ के सृजन, पोषण और स्थापना में राज्य स्तरीय एजेंसियों को शामिल करने की आवश्यकता है।
- अन्य व्यवसाय कंपनियों की तरह कृषि व्यवसाय संबंधी कार्यकलाप शुरू करने के लिये किसान उत्पादक कंपनियाँ (FPC) के गठन को सुसाध्य बनाने के लिये कानूनों में प्रावधान सृजित किये गए हैं।

उत्पादन को प्रसंस्करण से जोड़ना

- खाद्य प्रसंस्करण उद्योग अन्य उद्योगों की तुलना में अधिक श्रम गहनता वाला उद्योग है। ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य प्रसंस्करण को बढ़ावा देना रोजगार सृजन और कार्यबल का कृषि से उद्योग की ओर स्थानांतरण करने में सहायता प्रदान करेगा।
- किसानों की आय को दोगुना करने के लिये विभिन्न पहलों की आवश्यकता है जिनमें केंद्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और राज्यों की सक्रिय और समन्वित भागीदारी अपेक्षित है। कृषि सहकारिता और किसान कल्याण मंत्रालय को अग्रणी भूमिका निभानी चाहिये, इस लक्ष्य के लिये महत्त्वपूर्ण अन्य क्षेत्र जल संसाधन, खाद्य प्रसंस्करण, उर्वरक, उधार, अवसंरचना और ग्रामीण विकास से संबंधित हैं। किसानों की आय दोगुना करने संबंधी सफलता मुख्यताय राज्यों और संघ राज्य–क्षेत्रों की कार्रवाई और उनकी सहभागिता पर निर्भर करेगी।

ISBN : 978-81-904444-4-6

आगे की राह

- किसानों की आय का निम्न स्तर और इसमें प्रतिवर्ष उतार–चढ़ाव कृषि संबंधी संकट का एक प्रमुख कारण है। किसानों की आय का तरंतर निम्न स्तर देश में कृषि के भविष्य पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव का कारण भी बन सकता है।
- कृषि के भविष्य को सुरक्षित करने और भारत की जनसंख्या के आधे भाग की आजीविका सुधार केलिये किसानों के कल्याण में सुधार और कृषि आय में वृद्धि की ओर पर्याप्त ध्यान देने की आवश्यकता है।
- इस लक्ष्य की प्राप्ति से कृषि और गैर–कृषि आय के मध्य स्थायी असमानता कम होगी, कृषि संबंधी संकट घटेंगे, समावेशी विकास को प्रोत्साहन मिलेगा और कृषि क्षेत्रक में गतिशीलता का समावेश होगा।

निष्कर्ष

- 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करना निश्चय ही चुनौतिपूर्ण है लेकिन इसकी आवश्यकता है और यह प्राप्य है। किसानों की आय को दोगुना करने के लिये कृषि क्षेत्र में (1) विकास पहलें (2) प्रौद्योगिकी और (3) नीतिगत सुधारों पर केंद्रित तीन सूत्री कार्यनीतियों की आवश्यकता है।
- लक्ष्य को हासिल करने के लिये उत्पादन को बढ़ाने वाले संसाधनों की वृद्धि दरों में 33 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी करने की आवश्यकता है। देश में गुणवत्ता युक्त बीज, उर्वरक के उपयोग और कृषि क्षेत्र में बिजली की आपूर्ति में क्रमशरू 12.8, 4.4 और 7.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ोतरी करने की आवश्यकता है।
- सिंचित क्षेत्र में 1.78 मिलियन हेक्टेयर का विस्तार और दोहरी फसल वाले क्षेत्र में 1.85 मिलियन हेक्टेयर की बढ़ोतरी प्रति वर्ष की जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त, फलों और सब्जियों के उत्पादन वाले क्षेत्र में 5 प्रतिवर्ष वृद्धि की जाने की आवश्यकता है।
- पशुधन के संबंध में पशुओं की गुणवत्ता में सुधार, बेहतर चारा, कृत्रिम गर्भाधान में बढ़ोतरी, बच्चे देने के अंतराल में कमी, पहली बार बच्चा देने की आयु में कमी करना वृद्धि के संभावित स्रोत हैं।
- ICAR और प्रदेशों के कृषि विश्वविद्यालयों को कृषि आय पर ध्यान देते हुए एक पैकेज में उनकी सभी प्रौद्योगिकियों को शामिल कर विभिन्न प्रकार की समाजार्थिक और जैव भौतिक परिस्थितियों के लिये कृषि प्रणाली के प्रतिरूप विकसित करने चाहिये। इसमें अन्य उप–प्रणालियों जैसे फसल क्रम, फल मिश्रण, पशुधन, बागवानी, वानिकी के साथ सभी उप–प्रणालियों के लिये उत्पादन, संरक्षण और फसल कटाई उपरांत मूल्यवर्धन को कवर करते हुए प्रौद्योगिकी और उत्तम पद्धतियाँ शामिल होंगी।
- किसानों की आय में लगभग एक तिहाई वृद्धि बेहतर कीमत प्राप्ति, फसल कटाई उपरांत कुशल प्रबंधन, प्रतिस्पर्द्धात्मक मूल्य संवर्धन और संबद्ध कार्यकलापों को अपनाने के माध्यम से सरलता से प्राप्य है। इसके लिये बाजार में व्यापक सुधार, भूमि पट्टा और निजी भूमि पर वृक्षारोपण की आवश्यकता है।
- आधुनिक पूंजी और आधुनिक ज्ञान के अभाव में कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। उत्पादन और बाजार में उत्तरदायित्वपूर्ण निजी निवेश को आकर्षित करने के लिये कृषि को उदार बनाने की आवश्यकता है।
- प्रतिस्पर्द्धात्मक बाजार या सरकारी हस्तक्षेप के माध्यम से कृषि उत्पादन के लिये MSP सुनिश्चित करने मात्र से ही बहुत से राज्यों में किसानों की आय में काफी वृद्धि होगी।
- कृषि के लिये अधिकांश विकासात्मक पहलें और नीतियाँ राज्यों द्वारा कार्यान्वित की जाती हैं। राज्य सिंचाई जैसे बहुत से विकासात्मक कार्यकलापों पर केंद्र द्वारा परिव्यय की तुलना में बहुत अधिक निवेश करते हैं। बाजार और भूमि पट्टा से संबंधित विभिन्न सुधारों की प्रगति भी राज्यों का विषय है। इसलिये किसानों की आय को दोगुना करने के लक्ष्य को अपनाने और उसे हासिल करने के लिये राज्यों और संघ राज्य–क्षेत्रों को संघटित करना अनिवार्य है।
- यदि केंद्र और सभी राज्यों और संघ राज्य–क्षेत्रों द्वारा संगठित और अच्छी तरह से समन्वित प्रयास किये जाते हैं तो देश वर्ष 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने का लक्ष्य हासिल कर सकता है।

दिशाएं– ईशान, पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नेऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, आकाश, पाताल

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

⑨ मृदा क्षरण के कारण एवं रोकथाम के उपाय

[1]चन्दन सिंह एवं [2]मनीष कुमार सिंह
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, औरैया
[2]भा.कृ.अनुप. अटारी, कानपुर

किसानों के लिए मृदा का बहुत अधिक महत्व होता है क्योंकि किसान इसी मृदा से प्रत्येक वर्ष गुणवत्ता युक्त फसल पैदावार पर आश्रित होते हैं जल या वायु के प्रवाह द्वारा मृदा के पृथक्करण तथा एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानांतरण से लगभग 120.72 मिलीयन हेक्टेयर क्षेत्रफल मृदा क्षरण से प्रभावित है। मृदा क्षरण अथवा भूमि कटाव मृदा की एक गंभीर समस्या है। जिस के कारण मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ सतह का ह्रास होने लगता है। मृदा कणों का किसी भी कारणों से जैसे तेज हवा, वर्षा या भूस्खलन द्वारा मिट्टी का स्थानांतरण होना ही मृदा क्षरण कहलाता है।

मृदा क्षरण की प्रक्रिया

जब वर्षा जल की बूंदें मृदा सतह पर अत्यधिक ऊंचाई से गिरती हैं तो वे महीन मृदा कणों को मृदा पिंड से अलग कर देती हैं ये अलग हुए मृदा कण जल प्रवाह के साथ झरनों, नालों या नदियों तक चले जाते हैं। क्षरण प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण शामिल होते हैं–

–मृदा कणों का अलग होना

–मृदा कणों का विभिन्न साधनों द्वारा स्थानांतरण

–मृदा कणों का जमाव

मृदा क्षरण के कारण

मृदा क्षरण के कारणों को जाने बिना मृदा क्षरण से प्रभावित मृदा का बचाव मुश्किल है। मृदा अपरदन के कारणों को जैविक व अजैविक कारकों में बांटा जा सकता है। अजैविक कारणों में जल व वायु मुख्य घटक है जबकि बढ़ती मानवीय गतिविधियों को जैविक व अजैविक कारणों में बांटा जा सकता है। अजैविक कारणों में जल व वायु मुख्य घटक है जबकि बढ़ती मानवीय गतिविधियों को जैविक कारणों में माना गया है जो मृदा क्षरण को नियंत्रित करता है। मृदा क्षरण के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं–

–वानस्पतिक क्षेत्रों का घटना

–आग द्वारा वनों को हानि

–भूमि को खाली व बंजर छोड़ना

–वृक्षों का अत्याधिक कटाव

–सही फसल चक्र न अपनाना

–ढलान की दिशा में कृषि कार्य करना

–सिंचाई की त्रुटिपूर्ण विधियां अपनाना

मृदा क्षरण के प्रकार

मृदा क्षरण को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है–

1. प्राकृतिक क्षरणः– प्राकृतिक क्षरण मृदा अपरदन को इसकी प्राकृतिक अवस्था में अभिव्यक्त करता है। प्राकृतिक स्थिर परिस्थितियों में किसी स्थान की जलवायु एवं वानस्पतिक परत जो कि मृदा क्षरण या प्राकृतिक क्षरण वनस्पतिक परत में क्षरण को दर्शाता है। इस प्रकार होने वाला मृदा ह्रास मृदा निर्माण से कम या बराबर होता है।

2. त्वरित क्षरणः– जब मृदा निर्माण व मृदा ह्रास के बीच प्राकृतिक संतुलन, मानवीय गतिविधियों जैसे कि वनों की कटाई में अधिकता या वन भूमि को कृषि भूमि में रूपांतरित करके प्रभावित किया जाता है जिससे अपरदन तीव्रता कई गुना बढ़ जाती है ऐसी परिस्थितियों में प्राकृतिक साधनों से सतही मृदा ह्रास दर मृदा निर्माण दर से अधिक होती है।इस अपरदन से कृषि योग्य भूमि का उपजाऊ पन लगातार कम होता जाता है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

जल क्षरण के प्रकार

जल प्रवाह के द्वारा मृदा का ह्रास जल क्षरण कहलाता है। उच्च व मध्यम ढलान वाली भूमि में मृदा ह्रास का मुख्य कारण जल क्षरण होता है जल क्षरण के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. वर्षा जल क्षरणः– गिरती हुई वर्षा जल की बूंदों के प्रभाव से होने वाले मृदा कणों के पृथक्करण एवं स्थानांतरण को वर्षा जल अपरदन कहते हैं जिसे बौछार क्षरण के नाम से भी जाना जाता है। मृदा की एक बड़ी मात्रा बौछार कि इस सरल प्रक्रिया द्वारा नष्ट हो जाती है एवं इसे क्षरण प्रक्रिया में प्रथम क्षरण के रूप में जाना जाता है।

2. सतह क्षरणः– मृदा की लगभग एक समान पतली भूमि से जल बहाव के द्वारा कटाव को सतह क्षरण कहा जाता है इस प्रकार का क्षरण अत्यधिक हानिकारक होता है क्योंकि इसमें क्षरण की गति होने के कारण किसान को इसकी उपस्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता है।

3. रिल क्षरणः– यह सतह अपरदन का एक उन्नत रूप है जो कि बहते हुए जल के कारण होता है। जल प्रवाह से होने वाले मृदा कटाव से बनने वाली कम गहरी नालियों (उथली) को रिल अपरदन कहते हैं।

4. नाली क्षरणः– अत्यधिक जल प्रवाह से होने वाले मृदा कटाव से गहरी नालियों का निर्माण हो जाता है जिससे नाली क्षरण के रूप में जानते हैंझ नालियों के आकार (न्याट आकार) गहराई (कम मध्यम या अधिक) के आधार पर इसका वर्गीकरण किया जाता है।

5. भूस्खलन क्षरणः– भूस्खलन या मृदा पिंड क्षरण पहाड़ी सतह या पर्वतीय ढाल के नीचे गीली ढ़ालदार भूमि पर होता है। इसके मुख्य कारण जैसे ढ़ालों पर कटाई या खुदाई, कमजोर भूगर्भ या ढालों पर वानस्पतिक फैलाव की कमी से क्षरण में वृद्धि हो जाती है।

6. दर्रा निर्माणः– खड़ी सतहों के साथ गहरी एवं सकरी नालियां सामान्यतयः दर्रा कहलाती हैं। दर्रा गंभीर क्षरण संकट को दर्शाता है। जो की भूमि के लगातार अविवेकपूर्ण उपयोग के कारण रिल के फैलने से उत्पन्न होता है।

जल क्षरण को प्रभावित करने वाले कारक

इसके निम्नलिखित कारण होते हैं–

–जलवायु

–वनस्पति

–स्थलाकृति

–जैविक गतिविधियां

मृदा संरक्षण के उपायरू– मृदा एवं जल संरक्षण के लिए किए गए उपायों को मुख्यतयाः दो भागों में बांटा जा सकता है–

(क) जैविक उपाय

(ख) अभियांत्रिकी उपाय

(क) जैविक उपाय– फसलों या वनस्पतियों में सस्य क्रियाओं द्वारा भू–क्षरण को नियंत्रित करने के लिए उपयोग में लाई गई विधियां जैविक उपायों के नाम से जाने जाते हैं।

भू–क्षरण को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित जैविक उपायों का प्रयोग किया जाता है–

i. पाट्टीदार खेती

ii. भू–परिष्करण प्रक्रियाएं

iii. वायु अवरोधक व आश्रय आवरण

i. पाट्टीदार खेतीः– यह पद्धति भूमि की उर्वरता बढ़ाने तथा अप्रवाह एवं भू–क्षरण रोकने हेतु प्रयोग में लाई जाती है। इसके अंतर्गत खेत में पट्टियों पर भू–क्षरण अवरोधक फसल लगाई जाती है।

ii. भू–परिष्करण प्रक्रियाएंः– सामान्यतः सख्त मृदा सतह के कारण मिट्टी में जल प्रवेश कम हो जाता है। जिससे जल प्रवाह को प्रोत्साहन मिलता है। अतः हल द्वारा उचित प्रकार से की गई जुताई मिट्टी को ढ़ीली एवं पोली करके जल प्रवेश को बढ़ाती है।

iii. वायु अवरोधक व आश्रय आवरणः– यह वानस्पतिक उपायों के अंतर्गत आते हैं तथा मुख्यतयाः वायु क्षरण को कम करने में सहायक होते हैं। यह वानस्पतिक उपाय मृदा सतह के पास वायु की गति को धीमा कर के वायु अपरदन कम करते हैं।

(ख) अभियांत्रिकी उपायः– मृदा सतह पर जल संरक्षण करने योग्य अभियांत्रिकी संरचनाओं का निर्माण मृदा अपरदन को रोकने का एक प्रभावी विकल्प है इसके अतिरिक्त

ISBN : 978-81-904444-4-6

निम्नलिखित संरचनाएं सम्मिलित हैं–

1. समोच्च बंध
2. श्रेणीबद्ध बंध
3. वृहत आधार वाली वेदिकाएं
4. सीढ़ीनुमा वेदिकाएं

1. समोच्च बंधः– शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में जहां अधिक रिसाव एवं जल प्रवेश की संभावना होती है वहां इस पद्धति का प्रयोग अत्यंत प्रभावी हो जाता है। इन क्षेत्रों में 6ः ढाल होने तक समोच्च बंध प्रणाली को अपनाया जा सकता है।

2. श्रेणीबद्ध बंधः– इस पद्धति के प्रयोग ऐसे क्षेत्रों जहां मिट्टी की जल रिसाव एवं जल प्रवेश क्षमता कम हो, वहां किया जाता है क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में अप्रवाह जल की अधिक मात्रा होने से उसका सुरक्षित निकास आवश्यक हो जाता है।

3. वृहत आधार वाली वेदिकाएंः– अपेक्षाकृत कम ढाल वाले खेतों में नमी के संरक्षण के उद्देश्य से इन वृहत आधार वाली वेदिकाएं का निर्माण किया जाता है। जो नमी संरक्षण के उद्देश्य के लिए बनाई जाती हैं।

4. सीढ़ीनुमा वेदिकाएंः– पर्वतीय क्षेत्रों में यह अधिक ढाल वाले खेतों में सामान्यतयाः सीढ़ीनुमा वेदिकाएं बनाकर फसलें उगाई जाती हैं। यह मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती हैं–

(क) वाह्यमुखी सीडीनुमा वेदिकाएंः– यह वेदिकाएं मुख्यतयाः कम वर्षा वाले क्षेत्रों में जहां की मृदा अधिक पारगम्य हो वहां बनाई जाती है।

(ख) समतल सीढ़ीनुमा वेदिकाएंः– मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में जहां भूमि समतल तथा मृदा अधिक पारगम्य हो इसी क्षेत्रों में इन वेदिकाओं का निर्माण किया जाता है।

(ग) अंतर्मुखी सीढ़ीनुमा वेदिकाएंः– मुख्यतया अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में इन वेदिकाओं की उपयोगिता अधिक होती है। जहां अधिकांशतः वर्षा जल का खेत से सुरक्षित निकास आवश्यक होता है।

मृदा एवं जल संरक्षण के लिए उपयुक्त एवं प्रभावी उपायों जैसे जैविक तथा अभियांत्रिकी का संयुक्त प्रयोग अत्यधिक लाभदायक होता है। अतः इन दोनों का एक साथ (एकीकृत) प्रयोग करने की सिफारिश की जाती है।

खेती, पाती, बीनती
और घोड़े का तंग।
अपने हाथ संवारिये
लाख लोग होय संग।।

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

10 कृषोन्नति योजना के द्वारा किसानों की आय को दोगुना करना

स्वतंत्र प्रताप सिंह, अमन कुमार पाण्डेय, मोहिल कुमार, मनीष सिंह एवं गौरव तिवारी
भा.कृ.अनुप. – अटारी, कानपुर

हरित क्रांति कृषि उन्नति योजना को भारत सरकार द्वारा किसानों की आय को दो गुना करने के लिए शुरू किया गया हैं, यह योजना 2022 तक किसानों की आमदनी दोगुनी करने के लक्ष्य को हासिल करने के मकसद से हरितक्रांति–कृषोन्नति परियोजना को आगे बढाने के लिए भारत सरकार ने वित्त प्रावधान किया हैं। इस योजना में किसानों की आय को दोगुना करने के लक्ष्य को पूरा करने के लिए इसमें वर्ष 2017–18 को 11 योजनाओं को एक ही योजना के अंतर्गत समावेश किया गया जिससे सभी योजनाओं की जानकरी किसानों तक सही समय पर पहुँचती रही और उन योजनाओं के द्वारा किसानों की आय में वृद्धि हो सके, इसलिए इस योजना को अम्ब्रेला योजना भी कहते हैं

उद्देश्य

- इस योजना का उद्देश्य उत्पादन सरंचना सृजन, उत्पादन लागत में कमी और कृषि तथा संबध उत्पाद के विपणन पर हैं ।
- इस योजना का उद्देश्य समग्र और वैज्ञानिक तरीके से फसलों का उत्पादन एवं उत्पादकता को बढाया जाए और उत्पाद पर अधिकतम लाभ प्राप्त कर सके जिससे किसानों की आय में वृद्धि हो सके

महत्वपूर्ण तथ्य

- इस योजना के तहत तीन वित्तीय वर्षों (2017–18, 2018–19 एवं 2019–20) के व्यय हेतु लगभग 33,269. 976 करोड़ रुपये प्रावधान किया गया हैं
- इन सभी 11 योजनाओं को एक ही कार्यक्रम में रखने से इनके क्रियान्वयन और निगरानी में सुधार आएगा।
- इस योजना को 12वीं पंचवर्षीय योजना के बाद भी इस योजना को आगे जारी रखने के लिए कहा गया हैं, जिससे किसानों को लाभ मिलता रहे

छतरी योजनाओं में समावेश की या जोड़ी गयी 11 योजनायें निम्नलिखित हैं:–

i. बागबानी के एकीकृत विकास के लिए मिशनः – इस योजना में केंद्र की कुल हिस्सेदारी 7533.04 करोड़ रूपए के साथ, इस योजना का उद्देश्य बागबानी में उत्पादन बढाकर, आहार सुरक्षा में सुधार करकें तथा कृषि परिवारों को आय समर्थन देकर बागबानी क्षेत्र के समग्र विकास को प्रोत्साहित करना हैं ।

ii. तिलहन और तेल पाम पर राष्ट्रीय मिशनः– राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एनएफएसएम) में कुल केंद्रीय हिस्सा 6893.38 करोड़ रूपये का है। इसका उद्देश्य देश के चिन्हित जिलों में उचित तरीके से क्षेत्र विस्तार और उत्पादकता बढ़ाकर चावल, गेंहू, दालें, मोटे अनाज तथा वाणिज्यिक फसलों का उत्पादन बढ़ाना है। यह कार्य व्यक्तिगत कृषि स्तर पर मिट्टी की उर्वरता तथा उत्पादकता बहाल करके और कृषि स्तरीय अर्थव्यवस्था बढ़ाकर किया जाएगा। इसका एक और उद्देश्य खाद्य तेलों की उपलब्धता को सुदृढ़ बनाना और खाद्य तेलों के आयात को घटाना है।

iii. सतत कृषि के लिए राष्ट्रीय मिशनः– इस योजना में केंद्र की कुल हिस्सेदारी 3980.82 करोड़ रूपये की है सतत कृषि के लिए राष्ट्रीय मिशन का उद्देश्य विशेष कृषि परिस्थितिकी में एकीकृत कृषि, उचित मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन और संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकी के मेलजोल से सतत कृषि को प्रोत्साहित करना है।

iv. कृषि विस्तार पर उपमिशनः– इस योजना में केंद्र की कुल भागीदारी 2961.26 करोड़ रूपये के साथ कृषि विस्तार पर उप मिशन का उद्देश्य राज्य सरकारों, स्थानीय निकायों आदि की जारी विस्तार व्यवस्था को मजबूत बनाना, खाद्य और आहार सुरक्षा हासिल करना तथा किसानों का सामाजिक–आर्थिक सशक्तिकरण करना है ताकि कार्यक्रम नियोजन और क्रियान्वयन व्यवस्था संस्थागत बनाई जा सके,

ISBN : 978-81-904444-4-6

विभिन्न हितधारकों के बीच कारगर संपर्क कायम किया जा सके, मानव संसाधन विकास को समर्थन दिया जा सके तथा इलेक्ट्रॉनिक तथा प्रिंट मीडिया, अंतर व्यक्तिगत संचार और आईसीटी उपायों को नवाचारी बनाया जा सके।

v. बीज तथा पौध रोपण सामग्री पर उप मिशनः— इस उप योजना में केंद्र की भागीदारी 920.6 करोड़ रूपये की है। इसका उद्देश्य प्रमाणितध्गुणवत्ता संपन्न बीज का उत्पादन बढ़ाना, एसआरआर में वृद्धि करना, कृषि से बचे बीजों की गुणवत्ता को उन्नत करना, बीज प्रजनन श्रृंखला को मजबूत बनाना, बीज उत्पादन में नए टेक्नॉलोजी और तौर–तरीकों को प्रोत्साहित करना, प्रसंस्करण परीक्षण आदि को बढ़ावा देना है। इसका उद्देश्य बीज उत्पादन भंडारण, प्रमाणिकरण तथा गुणवत्ता के लिए संरचना को मजबूत और आधुनिक बनाना है।

vi. कृषि मशीनीकरण पर उपमिशनः— इस उप योजना में कुल केंद्रीय हिस्सेदारी 3250 करोड़ रूपये की है। कृषि मशीनीकरण पर उप योजना का उद्देश्य छोटे और मझले किसानों तक कृषि मशीनीकरण या मशीनों का समय पर उपलब्ध करवाना, उन क्षेत्रों में कृषि मशीनीकरण बढ़ाना जहां कृषि बिजली की उपलब्धता कम है, जमीन के छोटे पट्टे और व्यक्तिगत स्वामित्व की उच्च लागत के कारण होने वाले आर्थिक नुकसानों की भरपाई के लिए 'कस्टम हायरिंग सेंटरों'को प्रोत्साहित करना, उच्च तकनीकी और उच्च मूल्य के कृषि उपकरणों का केंद्र बनाना, प्रदर्शन और क्षमता सृजन गतिविधियों के माध्यम से हितधारकों में जागरूकता कायम करनाऔर देशभर में स्थापित निर्दिष्ट परीक्षण केंद्रों पर प्रमाणिकरण और प्रदर्शन, परीक्षण सुनिश्चित करना है।

1. पौध संरक्षण और पौधों के अलगाव पर उपमिशनः— इस उप योजना में कुल केंद्रीय हिस्सेदारी 1022.67 करोड़ रूपये की है। पौध संरक्षण और पौधों के अलगाव पर उपमिशन का उद्देश्य कीड़े–मकोड़ों, बीमारियों, अनचाहे पौधों, छोटे कीटाणुओं और अन्य कीटाणुओं आदि से कृषि फसलों तथा उनकी गुणवत्ता को होने वाले नुकसान को कम करना है। इसका उद्देश्य बाहरी प्रजाति के कीड़े–मकोड़ों के हमलों से कृषि जैव सुरक्षा करना और विश्व बाजार में भारतीय कृषि सामग्रियों के निर्यात में सहायता करना और संरक्षण रणनीतियों के साथ श्रेष्ठ कृषि व्यवहारों को प्रोत्साहित करना है।

2. कृषि गणना, अर्थव्यवस्थाएं तथा सांख्यिकी पर एकीकृत योजनाः— इस उप योजना में कुल केंद्रीय हिस्सेदारी 730.58 करोड़ रूपये की है। इसका उद्देश्य कृषि गणना करना, प्रमुख फसलों की उपजध्लागत का अध्ययन करना, देश की कृषि आर्थिक समस्याओं पर शोध अध्ययन करना, कृषि सांख्यिकी के तौर–तरीकों में सुधार करना और फसल रोपण से लेकर फसल के काटे जाने तक की स्थिति के बारे में अनुक्रमिक सूचना प्रणाली बनाना है।

vii. कृषि सहयोग पर एकीकृत योजनाः— इस योजना में केंद्र की कुल भागीदारी 1902.636 करोड़ रूपये की है। इसका उद्देश्य सहकारी समितियों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना, क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करनाऔर कृषि विपणन, प्रसंस्करण, भंडारण, कम्प्यूटरीकरण और कमजोर वर्गों के लिए कार्यक्रमों में सहकारी विकास में तेजी लाना है। इसका और उद्देश्य कपास उपादकों को उनके उत्पादों के लिए लाभकारी मूल्य दिलाना तथा विकेंद्रीकृत बुनकरों को उचित दरों पर गुणवत्ता संपन्न रूई की आपूर्ति सुनिश्चित करना है।

viii. कृषि विपणन पर एकीकृत योजनाः— इस योजना में केंद्र की कुल हिस्सेदारी 3863.93 करोड़ रूपये की है। इसका उद्देश्य कृषि विपणन संरचना विकसित करना, कृषि विपणन संरचना में नवाचार तथा नवीनतम प्रौद्योगिकी तथा स्पर्धी विकल्पों को प्रोत्साहित करना है। आईएसएएम का उद्देश्य कृषि उत्पादों के श्रेणीकरण, मानकीकरण और गुणवत्ता प्रमाणिकरण के लिए संरचना सुविधा उपलब्ध कराना, राष्ट्रीव्यापी विपणन सूचना नेटवर्क स्थापित करना तथा कृषि सामग्रियों के अखिल भारतीय व्यापार के लिए साझा ऑनलाइन बाजार प्लेटफॉर्म के जरिए बाजारों को एकीकृत करना है।

ix. राष्ट्रीय ई–गवर्नेंसः— इस योजना के अंतर्गत केंद्र की कुल हिस्सेदारी 211.06 करोड़ रूपये की है और इसका उद्देश्य विभिन्न कार्यक्रमों के अंतर्गत किसान और किसान केंद्रित सेवाओं को लाना है। इस योजना का उद्देश्य विस्तार सेवाओं की पहुंच और प्रभाव को बढ़ाना, पूरे फसल चक्र में सूचनाओं और सेवाओं तक किसानों की सेवाओं में सुधार करना, केंद्र और राज्य की वर्तमान आईसीटी पहलों को बढ़ाना और एकीकृत करना और किसानों उत्पादकता बढ़ाने के लिए किसानों को समय पर प्रासंगिक सूचना उपलब्ध कराकर कार्यक्रमों की क्षमता और प्रभाव में वृद्धि करना है।

जिसे अब तक ना समझे वो कहानी हूँ मैं,
मुझे बर्बाद मत करो पानी हूँ मैं।

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

11 बायोचरः एक जैविक मृदा स्वास्थ्य वर्धक

[1]प्रमोद कुमार, [1]नौशाद खान, [1]अश्वनी कुमारवर्मा एवं [2]प्रशांत देवसिंह
[1]चंद्र शेखर आजाद कृषि एवं प्राद्यौगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर
[2]सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्राद्यौगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

मृदा में उपस्थित कार्बन की मात्रा का सीधा सम्बंध मिटटी की अच्छी गुणवत्ता से होता है। भूमि में उपस्थित कार्बन की मात्रा मृदा स्वास्थ्य में सुधार करके कृषि पैदावर को बढ़ाने में मदद करता है। भूमि में पाये जानें वाले कार्बनिक पदार्थ, मृदा कार्बन का मुख्य स्रोत होता है। मृदा कार्बनिक पदार्थ, मृदा के कई महत्वपूर्ण पहलू जैसे भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को प्रभावित करते है जिसके कारण मृदा के कार्बनिक पदार्थ को मृदा स्वास्थ्य का कुंजी कहा जाता है। ये कार्बनिक पदार्थ मिटटी में पाए जाने वाले जीवो के वृद्धि एवं विकास में सहायक होते है। ये कार्बनिक पदार्थ मिटटी के कणों को आपस में जोड़कर मिटटी को स्थिर करते/बनाते है जिसके कारण मिटटी का कटाव कम होता है। मृदा में कार्बनिक पदार्थ मिलाने पर मिटटी के पोषक तत्व धारण क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है तथा मृदा में हवा एवं पानी का आवागमन सुचारु रूप से होता है जिसके फलस्वरूप मृदा स्वास्थ्य मे सुधार होताहै।

बायोचर क्या है ?

बायोचर एक ठोस, सूक्ष्म–दानेदार एवं उच्च कार्बन युक्त पदार्थ है जो जैविक पदार्थ या जैविक बायोमास के कार्बनीकरण के फलस्वरूप प्राप्त होता है। बायोचर का उत्पादन उच्च तापमान एवं आक्सीजन की अनुपस्थिति में या आक्सीजन की बहुत कम मात्रा के उपस्थिति में जैविक पदार्थ के तापीय–रासायनिक रूपान्तरण के कारण होता है। बायोचर एक मृदा अनुकूलक की तरह काम करता है जो मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को सुधारने या बढ़ाने में मदद करता है। जिसके कारण मृदा के जल एवं पोषक तत्वधारण क्षमतामें वृद्धि होती है जिसके परिणाम स्वरुप पौधे की वृद्धि एवं विकास अच्छा होता है।

बायोचर प्रयोग का प्रयोग कैसे करें ?

बायोचर का प्रयोग निम्नलिखित विधियों द्वारा किया जा सकता है–

(1) छिटकवाँ विधि : बायोचर देने की यह विधि सबसे अधिक प्रचलित है। इस विधि में बायोचर को फसल बोने से पूर्व ही खेत में एक समान हाथ द्वारा बिखेर दिया जाता है तथा बायोचर को देशी हल या डिस्कहैरो के द्वारा खेत में अच्छी तरह से मिला दिया जाता है।

(2) बायोचर को ठोस खाद एवं उर्वरक के साथ मिला कर देना : बायोचर को अन्य मृदा सुधारको जैसे–विभिन्न प्रकार के खाद या चूने के साथ अच्छी तरह से मिलाकर खेत में एक सामान रूप से बिखेर दिया जाता है। बायोचर पोषक तत्व को सोखकर एवं लीचिंग के द्वारा होने वाले पोषक तत्वों की हानि को रोकता है। इसलिए बायोचर को खाद या मृदा सुधारको के साथ मिलाकर प्रयोग करने से इसकी (खाद या मृदा सुधारक) दक्षता को बढ़ाया जा सकता है।

(3) बायोचर को तरल खाद एवं उर्वरक के साथ मिलाकर देना : बायोचर को तरल खाद या उर्वरक के साथ अच्छी तरह से मिला कर घोल के रूप में खेत में प्रयोग किया जा सकता है। इसप्रकार के लिए महीन एवं भुरभुरा बायोचर सबसे उपयुक्त होता है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

बायोचर के प्रयोग का समय एवं उसकी मात्रा ?

किसी भी मृदा सुधारक की संस्तुति / अनुमोदित दर मृदा परिक्षण, मिटटी के प्रकार एवं फसलों पर आधारित होती है। इसके अलावा बायोचर की विशेषतायें अलग–अलग हो सकती है जो बायोचर की प्रयोग की जाने वाली मात्रा को प्रभावित करती है। सामान्यतः 10–50 टन प्रति हैक्टेयर की दर से बुआई के 30–40 दिन पूर्व ही खेत में मिला दिया जाता है।

बायोचर के लाभ :

1. मृदा उर्वरता को बढ़ानें या सुधार करने में मदद करता है।
2. फसल की उपज एवं उसकी गुणवत्ता को बढ़ानें में उपयोगी होता है।
3. उर्वरकों के उपयोग क्षमता को बढ़ाता है।
4. मिटटी की जलधारण क्षमता तथा मृदा में वायु के आवागमन को बढ़ता है।
5. .मिटटी से नाइट्रस ऑक्साइड और मेथेन गैस के उत्सर्जन को काम करता है।
6. मिटटी की अम्लता को कम करने के लिए चूने की तरह कार्य करताहै।
7. मिटटी से पोषक तत्वों के स्थिरीकरण हानि को रोकने में मदद करता है।
8. मृदा के धन विनिमय क्षमता को बढ़ाने में मदद करता है।
9. यह वायुमण्डलीय कार्बन डाई–ऑक्साइड को फिक्स करके जलवायु परिवर्तन को कम करताहै।



निष्कर्ष:

बायोचर एक ठोस पदार्थ है जो जैविक पदार्थ के तापीय–रासायनिक रूपान्तरण के कारण बनता है। इस प्रकिया में कार्बन बहुत ही टिकाऊ रूप में एकत्रित होता है। जब बायोचर का प्रयोग मृदा में करते है तो यह वायुमण्डलीय कार्बन डाई–ऑक्साइड को अवशोषित करताहै जिस के कारण मृदा के कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरुप मृदा के गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होती है। मृदा में कार्बनिक पदार्थ मिलाने पर मिटटी के जल एवं पोषक तत्वधारण क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है तथा मृदा में हवा एवं पानी का आवागमन सुचारु रूप से होता है। जिसके फलस्वरूप मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है।

तालिका संख्या–1: मृदा के विभिन्न गुणों पर बायोचर का प्रभाव

क्र.सं.	मृदा के गुण	प्रभाव
1	धनविनिमय क्षमता (सी० ई० सी०)	50 प्रतिशतकी वृद्धि
2	स्थूल घनत्व (बी०डी०)	13 प्रतिशत की कमी
3	विशिष्टसतह क्षेत्र	15 प्रतिशत की वृद्धि
4	उर्वरकउपयोग क्षमता	10–30 प्रतिशत की वृद्धि
5	माइक्रोराहीजलफंजाई	40 प्रतिशत की वृद्धि
6	जैविकनाइट्रोजनस्थिरीकरण	50–72 प्रतिशत की वृद्धि

रोहिणी बरसे मृग तपै कुछ कुछ आद्रा जाए
कहै घाघ सुने घाघिनी स्वान मात नहीं खाय।

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

12 फसलों में न्यूनतम समर्थन मूल्य की उपयोगिता और महत्व

[1]अमन कुमार पाण्डेय, [1]मोहिल कुमार, [2]प्रदीप कुमार वर्मा
[1]भा.कृ.अनुप.–अटारी कानपुर, [2]चन्द्र शेखर आजाद, कृषि एवं प्रौ0 विश्वविद्यालय, कानपुर

समर्थन मूल्य

यह कृषि मूल्य में किसी भी तेज गिरावट के खिलाफ कृषि उत्पादकों को सुरक्षा प्रदान करने हेतु भारत सरकार द्वारा किया जाने वाला बाजार हस्तक्षेप का एक रूप है। कृषि लागत और मूल्य आयोग (सीएसीपी) की सिफारिशों के आधार पर कुछ फसलों के लिये बुवाई के मौसम की शुरुआत में भारत सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्यों की घोषणा की जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य किसानों को बिक्री की चिंताओं से राहत प्रदान करना और सार्वजनिक वितरण के लिये अनाजों की खरीद करना है।

किसी कृषि उपज (जैसे गेहूँ, धान आदि) का न्यूनतम समर्थन मूल्य वह मूल्य है जिससे कम मूल्य देकर किसान से सीधे वह उपज नहीं खरीदी जा सकती। न्यूनतम समर्थन मूल्य, भारत सरकार तय करती है। उदाहरण के लिए, यदि धान का न्यूनतम समर्थन मूल्य २००० रूपए प्रति कुन्तल निर्धारित किया गया है तो कोई व्यापारी किसी किसान से २१०० रूपए प्रति कुन्तल की दर से धान खरीद सकता है किन्तु १९७५ रूपए प्रति कुन्तल की दर से नहीं खरीद सकता।

नीति आयोग की एक रिपोर्ट बताती है कि देश के 25 फीसदी से कम किसानों को ही न्यूनतम समर्थन मूल्य के बारे में जानकारी होती है। इसी साल मई महीने में तमिलनाडु के किसानों के नई दिल्ली के जंतर–मंतर पर विरोध प्रदर्शन के समय सुप्रीम कोर्ट ने सरकारों पर कड़ी टिप्पणी करते हुए कहा था कि फसलों के न्यूनत समर्थन मूल्य के बारे में सरकार किसानों को जागरूक करें। यहां पर बताया गया था कि देश में केवल 35 प्रतिशत किसान ही न्यूनतम समर्थन मूल्य का लाभ उठा पाते हैं।

सरकार 22 अनिवार्य फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) और गन्ने के लिए उचित और पारिश्रमिक मूल्य (एफआरपी) की घोषणा करती है । मंडित फसलें खरीफ सीजन की 14 फसलें, 6 रबी फसलें और दो अन्य वाणिज्यिक फसलें हैं । वर्तमान में एमएसपी के तहत कुल 26 कृषि उत्पादों 7 अनाज– धान, गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा, मक्का और रागीय 5 दालें– चना, अरहर/तुअर, मूंग, उड़द और मसूर 8 तिलहन– मूंगफली, रैपसीड/सरसों, तोरिया, सोयाबीन, सूरजमुखी, तिल, कुसुम के बीज, रामतिल एवं अन्य फसलें कोपरा, नारियल, कच्चा कपास, कच्चा जूट, गन्ना (उचित और लाभकारी मूल्य) तथा वीएफसी तंबाकू, को शामिल किया गया है।

एमएसपी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

सरकार की मूल्य समर्थन नीति कृषि उत्पादकों को खेत की कीमतों में किसी भी तीव्र गिरावट के खिलाफ बीमा प्रदान करने के लिए निर्देशित है। न्यूनतम गारंटीकृत कीमतें नीचे एक मंजिल तय करने के लिए तय की जाती हैं, जिसमें बाजार की कीमतें नहीं गिर सकती हैं। 1970 के दशक के मध्य तक, सरकार ने दो प्रकार के प्रशासित मूल्य की घोषणा की:

ISBN : 978-81-904444-4-6

न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP)

खरीद मूल्य

एमएसपी सरकार की कीमतों के रूप में कार्य करते हैं और सरकार द्वारा उत्पादकों के निवेश निर्णयों के लिए दीर्घकालिक गारंटी की प्रकृति में तय किए जाते थे, इस आश्वासन के साथ कि उनके जिंसों की कीमतें सरकार द्वारा तय स्तर से नीचे नहीं आने दी जाएंगी, यहां तक कि एक बम्पर फसल के मामले में भी। अधिप्राप्ति कीमतें खरीफ और रबी अनाज की कीमतें थीं, जिस पर पीडीएस के माध्यम से जारी करने के लिए सार्वजनिक एजेंसियों (जैसे एफसीआई) द्वारा अनाज की खरीद की जानी थी। फसल की शुरुआत के तुरंत बाद ही इसकी घोषणा की गई थी। सामान्य रूप से खरीद मूल्य खुले बाजार मूल्य से कम और एमएसपी से अधिक था। धान के मामले में 1973–74 तक कुछ भिन्नताओं के साथ घोषित की जाने वाली दो आधिकारिक कीमतों की यह नीति जारी रही। गेहूं के मामले में इसे 1969 में बंद कर दिया गया और फिर 1974–75 में केवल एक साल के लिए पुनर्जीवित किया गया। चूंकि 1975–76 में एमएसपी को बढ़ाने की बहुत अधिक मांगें थीं, इसलिए वर्तमान प्रणाली को विकसित किया गया था जिसमें धान (और अन्य खरीफ फसलों) के लिए कीमतों का केवल एक सेट घोषित किया गया था और बफर स्टॉक संचालन के लिए खरीदे जा रहे गेहूं।

सरकार मूल्य तय कैसे करती है:

किसानों की आमदनी को बड़ा प्रोत्साहन देते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता वाली आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति ने 2019–20 सत्र के लिए सभी खरीफ फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में बढ़ोतरी को मंजूरी दी है।इस कदम से निवेश में वृद्धि होगी और किसानों को निश्चित लाभ प्राप्त होने के माध्यम से उत्पादन में बढ़ोतरी होगी।

भारत सरकार कृषि लागत और मूल्य आयोग (CACP) की सिफारिश पर कुछ फसलों के बुवाई सत्र से पहले ही न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा करती है. इससे किसानों को यह सुनिश्चित किया जाता है कि बाजार में उनकी फसल की कीमतें गिरने के बावजूद भी सरकार उन्हें तय न्यूनतम समर्थन मूल्य देगी.

न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण

विभिन्न वस्तुओं की मूल्य नीति की सिफारिश करते समय कृषि लागत और मूल्य आयोग 2009 में निर्धारित की गई विभिन्न शर्तों (टीओआर) को ध्यान में रखता है। तदनुसार, यह विश्लेषण करता है–

- मांग और आपूर्ति
- उत्पादन की लागत
- घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय दोनों बाजारों में मूल्य प्रवृत्तियाँ
- अंतर–फसल मूल्य समता
- कृषि और गैर–कृषि के बीच व्यापार की शर्तें और उस उत्पाद के उपभोक्ताओं पर एमएसपी का संभावित प्रभाव।

विवरण:

2019–20 के खरीफ मौसम में सभी फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य इस प्रकार बढ़ाया गया है:–

- सरकार ने 2019–20 के लिए खरीफ फसल के तौर पर सोयाबीन के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 311 रुपये प्रति क्विंटल, सूरजमुखी में 262 रुपये प्रति क्विंटल और तिल में 236 रुपये प्रति क्विंटल की बढ़ोतरी कर दी है। किसानों की आमदनी बढ़ाने की दिशा में यह एक बड़ा कदम है।
- सरकार ने अरहर दाल के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 125 रुपये और उड़द दाल के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 100 रुपये प्रति क्विंटल वृद्धि की है। इससे दालों की आवश्यकता के तहत देश की आबादी के एक बड़े हिस्से की पोषण सुरक्षा और प्रोटीन की जरूरतों को पूरा करने में मदद मिलेगी।

ISBN : 978-81-904444-4-6

- सरकार ने ज्वार के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 120 रुपये प्रति क्विंटल और रागी के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 253 रुपये प्रति क्विंटल की वृद्धि की है। यह कदम देश में पोषणयुक्त अनाज के उत्पादन और उपभोग की जरूरतों के तहत उठाया गया है। अंतर्राष्ट्रीय खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा 2023 को अंतर्राष्ट्रीय मोटा अनाज दिवस के रूप में मनाए जाने के भारत के प्रस्ताव को स्वीकार करने तथा भारत द्वारा 2018 को राष्ट्रीय ज्वार दिवस के रूप में मनाए जाने के परिप्रेक्ष्य में इसे काफी अहम माना जा रहा है।
- मध्यम और लम्बे रेशे वाले कपास के न्यूनतम समर्थन मूल्य में क्रमशः 105 रुपये प्रति क्विंटल और 100प्रति क्विंटल की वृद्धि की गई है।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ने से किसानों को बाजरा, उड़द और तूर के उत्पादन लागत की तुलना में क्रमशः 85 प्रतिशत, 64 प्रतिशत और 60 प्रतिशत का रिटर्न मिलेगा।

2019–20 सीजन की सभी खरीफ फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य निम्नानुसार हैं:

फसल	एमएसपी 2018–19	एमएसपी 2019–20	उत्पादन लागत' 2019–20 (रुपये प्रति क्विंटल)	एमएसपी में वृद्धि	लागत पर रिटर्न (प्रतिशत में)
धान (सामान्या)	1750	1815	1208	65	50
धान (किस्म् ए)	1770	1835	-	65	-
ज्वार (संकर)	2430	2550	1698	120	50
ज्वार (मलडांडी)	2450	2570	-	120	-
बाजरा	1950	2000	1083	50	85
रागी	2897	3150	2100	253	50
मक्कान	1700	1760	1171	60	50
तूर (अरहर)	5675	5800	3636	125	60
मूंग	6975	7050	4699	75	50
उड़द	5600	5700	3477	100	64
मूंगफली	4890	5090	3394	200	50
सूरजमुखी बीज	5388	5650	3767	262	50
सोयाबीन (पीला)	3399	3710	2473	311	50
तिल	6249	6485	4322	236	50
नाइजर बीज	5877	5940	3960	63	50
कपास (मध्यपम रेशा)	5150	5255	3501	105	50
कपास (लंबा रेशा)	5450	5550	-	100	

2019–20 के रबी मौसम में सभी फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य –

रबी विपणन सत्र2020–21 के लिए चिह्नित रबी फसलों के एमएसपी को मंजूरी देकर सरकार उत्पादन की औसत लागत केकरीब डेढ़ गुने तक लाने का प्रयास किया जिसकी घोषणा सरकार ने केन्द्रीय बजट 2018–19 में ही किया था।

इस एमएसपी नीति के माध्यम से सरकार ने किसानों को न्यूनतम 50 प्रतिशत लाभ प्रदान करने के उद्देश्य एवं 2022 तक इनकी आय को दोगुना कर जीवन शैली में सुधार लाने हेतु किया गया प्रमुख एवं प्रगतिशील कदम है।

रबी विपणन सत्र 2020–21 के लिए, सबसे ज्यादा एमएसपी मसूर (325 रूपए प्रति क्विंटल) की, उसके बाद कुसुम (270 रूपए प्रति क्विंटल) और चना (255 रूपए प्रति क्विंटल) बढ़ाने की अनुशंसा की जो किसानों की आय बढ़ाने की दिशा में लिया गया एक महत्वपूर्ण कदम है।

सफेद सरसों और राई का एमएसपी 225 रूपए प्रति क्विंटल बढ़ाया गया है। गेहूं और जौ दोनों का एमएसपी 85 रूपए प्रति क्विंटल बढ़ाया गया है।इससे गेहूं किसानों को लागत पर करीब 109 प्रतिशत वापस प्राप्त होगा।

ISBN : 978-81-904444-4-6

2019–20 सीजन की सभी खरीफ फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य निम्नानुसार हैं:

फसल	एमएसपी 2019–20	एमएसपी 2020–21	उत्पादन लागत' 2020–21 (रुपये प्रति क्विंटल)	एमएसपी में वृद्धि (प्रतिशत में)	लागत पर रिटर्न (प्रतिशत में)
गेहूं	1840	1925	923	85	109
जौ	1440	1525	919	85	66
चना	4620	4875	2801	255	74
मसूर	4475	4800	2727	325	76
सरसों	4200	4425	2323	225	90
कुसुम	4945	5215	3470	270	50

उद्देश्य:

न्यूनतम समर्थन मूल्य की व्यवस्था इसलिए लाई गई है ताकि बाजार में फसल की कीमतें कम होने के बाद किसानों को मजबूरीवश अपनी फसल कम कीमत पर न बेचनी पड़े. न्यूनतम समर्थन मूल्य तब काम आता है, जब बंपर उत्पादन समेत अन्य वजहों से बाजार में फसल की कीमत काफी गिर जाती है. तो ऐसे मौके पर सरकार किसानों से न्यूनतम मूल्य पर फसल खरीद लेती है.

न्यूनतम समर्थन मूल्य लाभः–

- न्यूनतम समर्थन मूल्य में वृद्धि से भारत को अपना आयात बिल घटाने में भी मदद मिलेगी।
- पोषक अनाजों के न्यूयनतम मूल्य वृद्धि से पोषण सुरक्षा और किसानों की आय में सुधार होगा।
- किसानों की आय बढ़ाने में फसलों की विविधता, पशुधन और बागवानी क्षेत्र सर्वाधिक लाभप्रद साबित हो सकते हैं।
- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, राष्ट्रीय कृषि बाजार तथा राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन सहित अन्य पहलों के माध्यम से सरकार किसानों की आय को दोगुना करने के लक्ष्य की ओर अग्रसर है।

पृष्ठभूमि

2019–20 सीजन के लिए खरीफ फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में वृद्धि उत्पादन के अखिल भारतीय भार औसत लागत (सीओपी) से कम से कम 1.5 गुना स्तर पर न्यूनतम समर्थन मूल्य को निर्धारित करने के सिद्धांत के अनुरूप है। सीओपी की घोषणा 2018–19 के बजट में की गई थी। किसानों को लाभ का कम से कम 50 प्रतिशत लाभ देने वाली न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने तथा किसानों के कल्याण में ठोस सुधार करने की दिशा में उठाए गए महत्वपूर्ण और प्रगतिशील कदमों में एक है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य व्यवस्था किसानों को उनके उत्पाद के लिए मूल्य गारंटी का प्रावधान करती है। इसे पूरे देश में लागू किया गया है, क्योंकि लगभग 85 प्रतिशत किसान छोटे और मझौले श्रेणी (कृषि गणना 2015–16) के हैं। यह प्रणाली समानता सुनिश्चित करती है। यह बाजार में मूल्य को स्थिर रखने में मदद करती है और इस तरह से उपभोक्ताओं की सेवा भी करती हैं।

कार्यान्वायन

पोषण युक्त अनाज सहित अनाजों के मामले में भारतीय खाद्य निगम (एफसीआई) और राज्य की अन्ये निर्दिष्टस एजेंसियां किसानों को समर्थन मूल्य प्रदान करना जारी रखेंगी। नाफेड, एसएफएसी और अन्य निर्दिष्ट केन्द्रीय एजेंसियां दालों और तिलहनों की खरीद का कार्य जारी रखेंगी। सीसीआई कपास के लिए समर्थन मूल्य, का कार्य हाथ में लेने के लिए प्रमुख केन्द्रीय एजेंसी होगी। कपास की खरीद के लिए सीसीआई के प्रयासों में नाफेड अतिरिक्ति प्रयास करेगा। यदि किसी तरह का नुकसान होता है तो शीर्ष एजेंसियों द्वारा किये गये खर्च की सरकार द्वारा क्षतिपूर्ति की जाएगी।

किसान भाई अपने फसल को कटाई व मड़ाई के उपरांत सहकारी समिति जो की सरकार द्वारा चलाई जाती है पर

ISBN : 978-81-904444-4-6

अपनी फसल बेच कर पैसा अपने खाते में प्राप्त कर सकते है कई सरकारी एजेंसी फसल खरीदने के लिए अपना स्टाल आपके गाँव या ब्लाक में लगा के रखती है जिससे किसानो को फसल बेचने में दिक्कत न हो.

- किसान की आय दुगनी करने के लिए कृषि नीति निर्धारकों को किसान तक पहुंच रखने वाले कृषि पर्यवेक्षक को टेक्नोलॉजी, ट्रेनिंग और एक्सपोजर देकर मजबूत करना होगा।
- हर राज्यों के कृषि विभाग को एक ऐसे टेक्नोलॉजिकल सॉफ्टवेयर पर शोध कर जारी करना होगा जिस पर ग्राम पंचायत क्षेत्र पर कार्यरत कृषि पर्यवेक्षक अपने क्षेत्र के अनुरूप कृषि कार्यो की अनुसंशा कर सकेगी यह सॉफ्टवेयर कई कार्यो को करने में सक्ष्म होगा।
- अंततः मेरा यह मानना है की किसानों की आय दुगनी करने से पहले वे नीतिगण विषयषज्ञ, कृषि वैज्ञानिक, अधिकारी आदि स्वयंसेवक के तोर पर परिवार सहित किसान के खेत पर एक उपज जरूर ले।

भादों की छट चांदनी।
जो अनुराधा होय।।
उबड़ खाबड़ वोय दे।
अन्न घनेरा होय।।

''घाघ''



***

ISBN : 978-81-904444-4-6

13 2.5 एकड़ कृषि माडल – एक सार्थक प्रयास

[1]चन्द्रमणि त्रिपाठी, [1]विजय कुमार गौतम
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, चित्रकूट

अनन्तकाल से अपने देश में अन्नमयप्राण की कहावत प्रचलित है। जिस अन्न पर मानव मात्र का जीवन निर्भर है और उसका एक मात्र स्रोत है कृषि भूमि। कृषि भूमि की उपलब्धता एवं उपजाऊ शक्ति की दृष्टि से भारत विश्व में सबसे अधिक भाग्यशाली है। किन्तु प्रति एकड़ उत्पादन में भारत बहुत पीछे है।

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि होने के बावजूद अलाभकर जोतों के कारण ग्रामीण युवकों का शहर की ओर पलायन लगातार बढ़ रहा है जिससे शहरों में बोझ बढ़ रहा है एवं ग्रामीण कृषि प्रभावित हो रही है।

बुन्देलखण्ड व पूरे भारत में सीमान्त तथा लघु सीमान्त कृषकों की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या है जिनके पास 2.5 एकड़ या उससे भी कम भूमि है। वर्तमान परिस्थितियों में कृषि लागतों के बोझ से ये जोतें अलाभकर हो गई हैं साथ ही कृषकों की आर्थिक स्थिति भी बिगड़ चुकी है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए दीनदयाल शोध संस्थान के संस्थापक मा० नानाजी देशमुख ने अपने चिंतन व अनुभव के माध्यम से इन जोतों को लाभकारी बनाने हेतु सुझाव प्रस्तुत किये हैं जिनको कृषि विज्ञान केन्द्र, चित्रकूट ने अपने प्रक्षेत्र पर कई वर्षो तक परीक्षण पश्चात् 2.5 एकड़ कृषि माडल के रूप में कृषकों के प्रयोग हेतु संस्तुत किये हैं।

2.5 एकड़ या 2.5 एकड़ से कम आकार वाली कृषि भूमि अलाभकर जोत मानी जाती है। 2.5 एकड़ में किसान के परिवार का सालभर का खर्च आसानी से पूरा हो सके, परिवार के सभी सदस्यों को उसी भूमि में वष भर कार्य मिल सके एवं किसान प्रतिवर्ष रु० 10000 या इससे अधिक बचत कर सके ऐसे माडल को कृषि विज्ञान केन्द्र, चित्रकूट ने विकसित कर सर्वप्रथम अपने केन्द्र पर लागू किया जो अपने अनुभव एवं उत्साहजनक परिणाम को प्राप्त करने के पश्चात वर्ष 2001.02 से किसानों के यहाँ प्रदर्शित किया गया है। जिनके परिणाम को देखकर अन्य कृषक अब स्वयं इस नये माडल को अपनाकर खेती कर रहे हैं जिससे उत्पादन के साथ–साथ कार्य दिवस की संख्या में वृद्धि हुई है।

एक परिवार हेतु खाद्य की आवश्यकता

राष्ट्रीय पोषण संस्थान हैदराबाद के अनुसार एक परिवार के लिए जिसमें 06 सदस्य हैं एक वर्ष में निम्न खाद्य सामग्री की आवश्यकता होती है।

क्र०	विवरण	मात्रा/दिन/व्यक्ति (ग्राम)	मात्रा/वर्ष (किग्रा०)
1	गेहूँ	225	492.75
2	चावल	200	438.00
3	दाल	70	153.3
4	खाद्य तेल	35	76.65
5	दूध	214	468.66
6	सब्जी	285	624.15
7	मसाला	11	24.09
8	फल	140	306.6
9	कपड़ा व अन्य	आवश्यकतानुसार	

उपरोक्त की पूर्ति 2.5 एकड़ क्षेत्रफल को निम्न प्रकार विभाजित कर नवीनतम तकनीक द्वारा पूरा करने के सफल प्रयोग हुए हैं।

तकनीक

नये माडल में मुख्यतया कृषकों के पास उपलब्ध संसाधनो को ध्यान में रखते हुए नवीनतम प्रजातियों, जेविक लागतों, फसल चक्र, भूमि का उचित प्रयोग, एकीकृत कीट नियंत्रण व एकीकृत उर्वरक प्रबन्धन के साथ–साथ बाजार को ध्यान में

ISBN : 978-81-904444-4-6

रखते हुए सब्जी/मसाला फसलों का समावेश किया गया जिससे सकल आय में वृद्धि हो सके।

क्षेत्रफल (एकड़)	मात्रा/दिन/व्यक्ति (ग्राम)	मात्रा/वर्ष (किग्रा०)
01	अनाज	रबी, खरीफ
0.5	दलहन	रबी, खरीफ, जायद
0.4	तिलहन	रबी, खरीफ
0.1	मसाला	रबी, खरीफ, जायद
	फल	खेत के मेंडों पर

उपरोक्त क्षेत्रफल में सिंचाई की सुविधा, मिट्टी का प्रकार एवं भौगोलिक स्थिति के अनुसार फसलों का चयन अलग–अलग कृषकों के यहाँ अलग तरह से किया गया।

केन्द्र पर 2.5 एकड़ माडल का परिणाम

फसल/प्रजाति	क्षेत्रफल (एकड़)	उत्पादन (कु.)	आय (रु०)	व्यय (रु०)	शुद्ध आय (रु०)
गेहूँ–यू.पी. 2338	0.8	15.54	9324	3318	6006
चना–उदय	0.4	3.45	5175	1256	3919
मसूर–के. 75	0.2	1.68	2520	543	1977
अलसी–शुभ्रा	0.2	1.19	2380	483	1897
गेहूँ–भूसा	-	16.00	1600	-	1600
भूसा–चना, मसूर	-	6.00	240	-	240
सब्जियाँ (टमाटर, मूली, प्याज, मिर्च, लहसुन)	0.5	11.00	1626	992	634
सब्जी मटर–अर्किल	0.4	2.88 2.07	6318	1667	4651
योग	**2.5**		**29183**	**8259**	**20924**

कृषक प्रक्षेत्र पर 2.5 एकड़ माडल में आय–व्यय का विवरण

क्र०	कृषक का नाम	पिता का नाम	जाति	ग्राम	व्यय (रु०)		आय (रु०)		अन्तर (रु०)		आय में वृद्धि
					पूर्व	बाद	पूर्व	बाद	पूर्व	बाद	
1	श्री गया प्रसाद	श्री शिवराम	कुशवाहा	बैहार	8100	18850	16900	49225	10750	32325	21575
2	श्री मातादीन	श्री गुल्लू	यादव	बैहार	11337	14599	18550	40670	3262	22120	18858
3	श्री बब्बू	श्री बृजमोहन	यादव	बैहार	7710	13767	19700	39785	6057	20085	14028
4	श्री हरिश्चन्द्र	श्री सत्यनारायण	पटेल	इटरौर	9510	11716	18600	40412	2206	21812	19609
5	श्री आत्मप्रकाश	श्री इन्द्रजीत	ब्राह्मण	लोढवारा	5825	7166	11960	22125	1341	10165	8824
6	श्री रेवती रमण	श्री अनुसूईया प्रसाद	ब्राह्मण	लोढवारा	11275	13605	27580	43910	2330	16330	14000
7	श्री रामऔतार	श्री सुखनन्दन	प्रजापति	रमपुरिया अब्बल	11510	15663	24550	43555	6803	19005	12202
				औसत	**9324**	**13624**	**19691**	**39955**	**4300**	**20263**	**15963**

ISBN : 978-81-904444-4-6

सभी व्यय काटने के बाद 2.5 एकड़ माडल से शुद्ध बचत

क्र०	कृषक का नाम	कुल आय	कुल व्यय	शुद्ध आय	पारिवारिक व्यय	बचत	विशेष
1	श्री रेवती रमण त्रिपाठी	43910	13605	30305	17100	13205	-
2	श्री हरिश्चन्द्र	40412	11716	28696	17100	11596	-
3	श्री आत्म प्रकाश	22125	7166	14959	17100	-	केवल रबी फसल
4	श्री गया प्रसाद	49225	18850	30375	17100	13275	-
5	श्री मातादीन	40670	14599	26071	17100	8971	-
6	श्री बब्बू	39785	13767	26018	17100	8918	-
7	श्री राम औतार	43555	15663	27892	17100	10792	-

औसत पारिवारिक व्यय

1.	भोजन एवं ईधन	–	10000
2.	कपड़ा एवं भवन मरम्मत	–	4400
3.	शिक्षा एवं स्वास्थ्य	–	2000
4.	अन्य	–	700
योग		–	**17100**

सारांश

सीमान्त व लघु सीमान्त जोतों को आर्थिक दृष्टिकोण से लाभकारी बनाने हेतु कृषि विज्ञान केन्द्र, चित्रकूट में सफल प्रयासों को आस–पास के ग्रामों में कृषक अपना रहे हैं। संसाधनों व कृषि जलवायु के अनुरूप फसल चक्र परिवर्तन के साथ कम लागत वाली तकनीकियों द्वारा उत्पादन वृद्धि हो रही है। लाभ बढ़ोत्तरी के साथ–साथ लघु कृषक बाजार की मांग व मूल्यों को ध्यान में रखकर कृषि कर रहे हैं। 2.0 एकड़ व 2.5 एकड़ कृषि माडल खेती जनपद की कृषि परिस्थितियों के अनुकूल होने के कारण अपनाने योग्य है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कृषि विज्ञान केन्द्र, चित्रकूट के माध्यम से छोटी जोतों को लाभप्रद बनाने हेतु 2.0 एकड़ व 2ण्5 एकड़ माडल कृषि पद्धति एक सार्थ प्रयास है।










***

ISBN : 978-81-904444-4-6

14 कृषि जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रसार शिक्षा की भूमिका

अभय कुमार
डॉ राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय समस्तीपुर, बिहार

सामान्यतः प्रसार शिक्षा दो पक्षीय प्रणाली है। प्रथम पक्ष में यह गांव के लोगों के लिए वैज्ञानिक जानकारी लाता है और द्वितीय पक्ष में समाधन के लिए गांव के लोगों की समस्याओं को वैज्ञानिक संस्थानों तक ले जाता है। कृषि की शुरुआत आज से लगभग आठ से दस हजार साल पूर्व हुई थी। कृषि के शुरुआती समय में किसानों ने अच्छे दिखने वाले पौधें और बीजों का चयन किया और अगले वर्ष के रोपण के लिए उन्हें बचा कर रखते थे। इस प्रकार से किसानों ने चयन की विधि् द्वारा उच्च पैदावार तथा कीट और रोग प्रतिरोधी पौधें को नाटकीय ठग से घरेलू प्रजातीय पौधें के रूप में बदल दिया। पौधें में प्रजनन के ज्ञान होने के बाद मनुष्यों को पता चला कि पौधें में क्रत्रिम रूप (पार–परागण) विशिष्ठ लक्षणों के लिए सुधार करने की क्षमता होती है। पारंपरिक पौध किस्मों को विकसित करने के लिए उपयोग में लाया जा रहा है। लेकिन वैश्विक स्तर पर खाद्य पदार्थों की बढ़ती माँग के कारण पारंपरिक पौध प्रजनन विधि् सक्षम नहीं दिख रही है। इसका प्रमुख कारण इसमें लगने वाला समय है। इस विधि् के द्वारा एक नई किस्म् को विकसित करने में कम से कम पाँच से छः वर्ष का समय लगता है।

वर्तमान परिदृश्य बढ़ती जनसंख्या, कृषि के क्षेत्रफल में कमी, उपलब्ध संसाधनों की कमी तथा जलवायु में तेजी से होता बदलाव आदि को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि पारम्परिक प्रजनन विधि, अंतर, प्रजनन–निकट या दूर संभावित पौधे के बीच, प्रतीप संकरण तथा संकरण आदि के साथ–साथ नई सुधर तकनीकों यमार्कर चयन की सहायता, उल्ट प्रजनन, डबल हैप्लॉयड, आनुवांशिक संशोधन, ट्रांसजैनिक, पादप ऊतक संवर्ध्न तथा मैपिंग ऑफ जीन ऑफ इंट्रस्ट इत्यादि का उपयोग करके वैश्विक स्तर पर खाद्य पदार्थों में खाद्य असुरक्षा के संकट के दूर किया जा सकता है।

वर्षों के अनुसंधन से संकेत मिलता है कि कृषि जैव प्रौद्योगिकी एक सुरक्षित और लाभदायक तकनीक है। जो पर्यावरण की पर्यावरणीय स्तरता को बढ़ावा देने में एक बड़ी भूमिका निभाती है। वैश्विक स्तर पर जैव प्रौद्योगिकी द्वारा संशोधित उत्पाद विश्व के कई देशों के बजारो में उपलब्ध् है। जिसमें मुख्य रूप से प्रमुख हैः– विटामिन ए समृध(गोल्डन राइस, प्रोटीन समृध (शकरकन्द, बी. टी. कपास, बी.टी. मक्का, बी.टी. बैंगन बीमारी सहिष्णु पपीता, सोयाबीन तथा देरी से पकने वाले फल व सब्जियाँ–टमाटर केला आदि।

कृषि जैव प्रौद्योगिकी के प्रसारधविस्तार को बढ़ावा देने के लिए प्रसार वैज्ञानिकों तथा प्रसार संस्थानो द्वारा बनायी जाने वाली रणनीतियाँ निम्नलिखित हैं–

–कार्यशाला, संगोष्ठियों और सम्मेलनों के द्वारा कृषि जैव प्रौद्योगिकी में जागरुकता पैदा करना।

–आनुवांशिक रूप से संशोधित जीवों के सुरक्षित हस्तांतरण व्यवहार और उपयोग से संबंधित जन जागरुकता, शिक्षा और भागीदारी को बढ़ावा देना।

–जैव प्रौद्योगिकी प्रसार के लिए आवश्यक अवसंचरण की लागत का निर्धरण करना तथा यह सुनिश्चित करना जो लोग सूचना कम्प्यूटर तकनीक (आई.सी.टी.) का उपयोग करने में असमर्थ है। उन्हें आनुवांशिकी रूप से संशोधित जीवों के बारे में जानकारी प्रदान करना इससे वितरण प्रणाली में सुधार होगा, जिससे किसानों तथा अन्य संभावित उपभोक्ताओं के नये उत्पाद आसानी से उपलब्ध् हो सकेंगे।

–कृषि जैव प्रोधोगिकी अनुसंधान और विकास के लिए नये

ISBN : 978-81-904444-4-6

निवेश और संसाधनो में आवंटन शुनिश्चित करना।

–जोखिम प्रबन्ध् और मूल्यांकन प्रक्रियाओं में परीक्षण प्रदान करना, नई जानकारी को आसान करने के लिए पर्याप्त प्रतिक्रिया तंत्र सुनिश्चित करना तथा नियामक प्रणाली को संशोध्ति करना जैसा कि कृषि जैव प्रौद्यिगिकी केन्द्र को विकसित करने के लिए जानकारी प्रदान करना।

–प्रमुख वैज्ञानिक नियामक, जोखिम, वैश्विक संपदा अधिकार (आई.पी.आर.), तथा अन्य जैव प्रौद्योगिकी मुद्दे के बारे में जानकारी देना।

–कृषि जैव प्रौद्योगिकी नेताओं और नीति निर्माताओं के बीच घनिष्ठ संबंध् का निर्माण करना।

निष्कर्ष:– कुछ हद तक वैज्ञानिक समुदाय जनता की यह प्रदर्षित करने का भार वहन करता है कि जैव प्रौद्योगिकी उत्पाद का उपयोग दंडनीय और सुरक्षित दोनों हैं। अधिकांश लोगों में भोजन के बारे में बहुत मजबूत भावनात्मक और संस्कृतिक और धर्मिक भावनाएं हैं। कुछ का मानना है कि जानवरों तथा पौधें के जीन के साथ छोड़–छाड़ करना प्रजातियों की अखंडता का उल्लंघन है। प्रसार विज्ञान के माध्यम से जैव प्रौद्योगिकी के बारे में ऐसी धरणा के उलट खाद्य असुरक्षा के संकट से लड़ने में पदार्थों का विवेकपूर्ण चयन का प्रसार किया जाना चाहिए। दिन–प्रतिदिन अनुसंधान के अनेक नए दरवाजे खुले हैं। प्रसार विज्ञान के द्वारा आनुवंशिक सुधार प्रौद्योगिकी सभी फायदे जनता अनुमानित अज्ञात दर को कम किया जा सकता है।






***

ISBN : 978-81-904444-4-6

15 जैविक विधि से बढ़ाएं मृदा की उर्वरता

[1]राघवेंद्र सिंह एवं [2]अमन कुमार पाण्डेय

[1]आचार्य नरेन्द्रदेव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

[2]भाकृनुप–अटारी, कानपुर

जैविक खेती देशी खेती का आधुनिक तरीका है जहां प्रकृति एवं पर्यावरण को संतुलित रखते हुए खेती की जाती है इसमें रसायनिक खाद कीटनाशकों का उपयोग नहीं कर खेत में गोबर की खाद, कम्पोस्ट, जीवाणु खाद, फसल अवशेष, फसल चक्र और प्रकृति में उपलब्ध खनिज जैसे रॉकफास्फेट, जिप्सम आदि द्वारा पौधों को पोषक तत्व दिए जाते हैं फसल को प्रकृति में उपलब्ध मित्र कीटों, जीवाणुओं और जैविक कीटनाशकों द्वारा हानिकारक कीटों तथा बीमारियों से बचाया जाता है

जैविक खेती (ऑर्गेनिक फार्मिंग) कृषि की वह विधि है जो संश्लेषित उर्वरकों एवं संश्लेषित कीटनाशकों के अप्रयोग या न्यूनतम प्रयोग पर आधारित है, तथा जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बचाये रखने के लिये फसल चक्र, हरी खाद, कम्पोस्ट आदि का प्रयोग करती है।

वर्तमान समय को देखते हुए भूमि को प्रदूषण से बचाना बहुत ही आवश्यक है जिससे मृदा की उर्वरा–शक्ति का नुकसान न







हो। फसलों के अधिक उत्पादन लेने में जैविक उर्वरकों का प्रयोग लाभदायक सिद्ध हो रहा है। जैविक उर्वरकों का प्रयोग करने से खेती में उपयोग हो रहे अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों की निर्भरता में अवश्य ही कमी आ रही है। साथ ही साथ प्रदूषित हो रही मृदा में भी कमी होगी। अतः फसलों से अच्छी गुणवत्ता की अधिक पैदावार लेने के लिए रासायनिक उर्वरकों

ISBN : 978-81-904444-4-6

के साथ–साथ जैविक उर्वरकों के प्रयोग की पर्याप्त संभावनाएं हैं।

फसलों की अच्छी गुणवत्ता और अधिक उत्पादकता के लिए पिछले दो दशकों से देश के कई राज्यों में फसल उत्पादन हेतु रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक बढ़ते प्रयोग से वायु, जल और मृदा प्रदूषण में लगातार वृद्धि हो रही है। फलस्वरूप मानव स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव प्रभाव पड़ रहा है।

इसके लिए फसलों में प्रयोग किए जाने वाले रासायनिक उर्वरकों के अनुचित व असंतुलित मात्रा में बिना सूझ–बूझ के प्रयोग में कमी लाने की आवश्यकता है अन्यथा मृदा में उपस्थित लाभकारी जीवाणु और जीव–जंतु विलुप्त हो जाएंगे और इनकी उपस्थिति में मृदा में होने वाली विभिन्न अपघटन तथा विघटन इत्यादि क्रियाओं पर प्रतिकूल असर पड़ेगा जिससे पोषक तत्वों एवं खनिज लवणों का बहुत बड़ा हिस्सा पौधों को प्राप्त नहीं हो सकेगा। साथ ही रासायनिक उर्वरकों की बढ़ती कीमतों व उनका कम उत्पादन होने की वजह से लघु व सीमांत किसान बुरी तरह से प्रभावित हो रहे है।

जैविक उर्वरकों के लाभ

1. जैविक उर्वरक आसानी से उपलब्ध है तथा इनका प्रयोग भी बहुत सुगम है।
2. जैविक उर्वरकों को रासायनिक उर्वरकों के साथ आसानी से उपयोग किया जा सकता है।
3. जैविक उर्वरक वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन (78 प्रतिशत) का स्थिरीकरण करके फसलों को उपलब्ध कराते हैं, जो फसलो के लिए बहुत ही आवश्यक होता है।
4. मृदा में अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बनाते हैं जिससे अगली फसल को भी लाभ पहुंचता है।
5. जैविक उर्वरकों के प्रयोग से फसलों में 10 से 25 प्रतिशत तक उपज में वृद्धि होती है।
6. जैविक उर्वरको प्रयोग से बीजों का अंकुरण शीघ्र होता है एवं पौधों में कल्लों की संख्या में वृद्धि होती है।
7. इनके प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में भी कमी आती है।
8. जैविक उर्वरक पौधों की जड़ों के आसपास (राजोस्फीयर) वृद्धि कारक हार्मोन उत्पन्न करते हैं जिनसे पौधों की वृद्धि पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।
9. जैविक उर्वरकों का उपयोग पर्यावरण सुरक्षा में भी सहायक होता है।
10. किसानों को कृषि लागत में कमी और आर्थिक लाभ में मदद मिलती है।

जैविक उर्वरकों का वर्गीकरण

जैविक उर्वरकों को मुख्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है:

1. फसलों को वायुमंडलीय नाइट्रोजन प्रदान करने वाले जैविक उर्वरक।
2. मृदा में अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील कर पौधों को इसकी उपलब्धता बढ़ाने वाले।
3. मृदा में फास्फोरस एवं अन्य पोषक तत्वों को सुदूर स्थानों से पौधों की जड़ों तक पहुंचाने वाले।

पौधों को वायुमंडलीय नाइट्रोजन उपलब्ध कराने वाले जैविक उर्वरक

राइजोबियम जैव उर्वरक : राइजोबियम सर्वाधिक प्रयोग में आने वाला जैविक उर्वरक है। विभिन्न दलहनी फसलों को नत्रजन उपलब्ध कराने के लिए अलग–अलग तरह के राइजोबियम जीवाणुओं की आवश्यकता होती है। इस प्रजाति के जीवाणु मुख्यतः दाल वाली फसलों में वायुमंडल से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं। यह जीवाणु दलहनी फसलों की जड़ों में गांठें बनाते हैं। इन गांठों में राइजोबियम जीवाणु निवास करते हैं। राइजोबियम जीवाणु वायुमंडल में उपस्थित स्वतंत्र नाइट्रोजन को ग्रहण करके दलहनी फसलों को उपलब्ध कराते हैं। ये जीवाणु सामान्यतः 20–25 किग्रा नाइट्रोजन प्रति हे. मृदा में एकत्रित करते हैं। इस प्रकार दलहनी फसलों की नाइट्रोजन मांग को पूरा करने के बाद शेष बची हुई नाइट्रोजन अगली अदलहनी फसलों को प्राप्त हो जाती है। आजकल राइजोबियम जीवाणु उर्वरकों का प्रयोग बहुत बढ़ रहा है। इस संबंध में किसानों को और अधिक जागरूक करने की आवश्यकता है।

एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक : एजोटोबैक्टर मिट्टी व पौधों की जड़ों के आसपास मुक्त रूप से रहते हुए वायुमंडलीय नाइट्रोजन को पोषक तत्वों में परिवर्तित करके पौधों को

ISBN : 978-81-904444-4-6



उपलब्ध कराते हैं। एजोटोबैक्टर सभी गैर–दलहनी फसलों में प्रयोग किया जा सकता है। एजोटोबैक्टर पौधों की पैदावार में वृद्धि करने वाले हार्मोन भी बनाते हैं, जो फसल के विकास में सहायक होते हैं। इनके प्रयोग से फसल की पैदावार में 10–20 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है। एजोटोबैक्टर जैविक उर्वरक को निम्नलिखित फसलों में प्रयोग किया जा सकता है:

1. **अनाज वाली फसलें** – गेहूं, जौ, बाजरा, मक्का व धान।
2. **तिलहन** – तिल, सूरजमुखी, सरसों।
3. **नकदी फसलें** – गन्ना, कपास, आलू, तंबाकू व जूट।
4. **फलों वाली फसलें** – पपीता, केला, अंगूर, खरबूजा व तरबूज।
5. **सब्जियों में** – लहसुन, प्याज, टमाटर, भिण्डी, गोभी, मिर्च व अन्य सभी सब्जियों में।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के अनुसंधान फॉर्म पर गेहूं की फसल की बढ़वार और पैदावार पर एजोटोबैक्टर के प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए प्रयोग किए गए। आंकड़ों का विश्लेषण करने पर पाया गया कि अनुपचारित फसल की तुलना में एजोटोबैक्टर द्वारा उपचारित गेहूं की बढ़वार और पैदावार में सार्थक वृद्धि देखी गई।

एजोस्पिरिलम जैविक उर्वरक : एजोस्पिरिलम जैविक उर्वरक पौधों को नाइट्रोजन प्रदान करते हैं। ये जैविक उर्वरक उन फसलों के लिए लाभकारी हैं जो गर्म व तर जलवायु में उगायी जाती हैं। इस जैविक उर्वरक से पौधों की नाइट्रोजन की आवश्यकता आंशिक रूप से पूरी हो सकती है। ज्वार, बाजरा, मक्का, धान, गन्ना, कपास, केला तथा अन्य फल व सब्जियों वाली फसलों के लिए उपयुक्त है। इनके प्रयोग से लगभग 15 से 20 किग्रा नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की बचत की जा सकती है।

नीलहरित शैवाल (साइनोबैक्टीरिया) : इन्हें नीली हरी काई भी कहते हैं। यह वायुमंडल से लगभग 20–25 किग्रा नाइट्रोजन/हे. प्रतिवर्ष स्थिरीकरण करती है। जिन फसलों को पानी की अधिक आवश्यकता होती है वहां ये बहुत उपयोगी पायी जाती है। इसका प्रयोग धान की फसल में रोपाई के 7 दिन बाद 10 किग्रा/हे. की दर से किया जा सकता है। नीलहरित शैवाल सूर्य की ऊर्जा से अपना भोजन बनाती है। इसकी प्रमुख प्रजातियां नॉस्टाक, टोलीपोथिरिक्स, अनावीना इत्यादि हैं। विभिन्न फसलों में प्रयोग होने वाले जैविक उर्वरकों की प्रयोग विधि, उपयुक्त मात्रा व प्रयोग समय सारणी संख्या–1 में दर्शाया गया है। अनेक अनुसंधानों द्वारा यह भी पाया गया है कि धान की फसल में नीलहरित शैवाल का टीका खेत में डालने से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सकारात्मक सुधार होता है।

अजोला जैविक उर्वरक : अजोला जैविक उर्वरक की संस्तुति मुख्य रूप से धान की फसल के लिए ही की गई है। अजोला पानी पर तैरने वाला जलीय फर्न है जो एलगी (एनाबीना एजोली) के साथ संयोजन करके वातावरणीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करता है। यह पानी के ऊपर हरी चादर बनाती है जो बाद में लाल घूसर रंग की हो जाती है। भारत में मुख्यतः एनाबीना पीन्नाटा नामक फर्न पाया जाता है। अजोला के प्रभावी उपयोग के लिए धान के खेतों में लगभग 5–8 सेमी पानी हमेशा भरा रहना चाहिए। इसका प्रयोग 0.8–1.0 टन प्रति हेक्टेयर की दर से उपयुक्त माना जाता है। प्रयोगों द्वारा अजोला का मृदा उपचार अत्यधिक प्रभावी पाया गया है। इसका प्रयोग रोपाई के 8–10 दिनों बाद लाभकारी रहता है। रोपाई से पहले या रोपाई के समय प्रयोग करने से धान के पौधों को हानि पहुंचने का अंदेशा रहता है। अजोला में शुष्क भार के आधार पर 3–5 प्रतिशत नाइट्रोजन पायी जाती है। धान की फसल में अजोला का प्रयोग करने पर 25–30 किग्रा नाइट्रोजन प्रति

ISBN : 978-81-904444-4-6

हेक्टेयर की बचत की जा सकती है।

फास्फोरस विलयकारी जैविक उर्वरक (फास्फो–बैक्टीरिया) रू कुछ जीवाणु तथा कवक मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बनाकर फसलों में इसकी उपलब्धता को बढ़ाते हैं। इन्हें फास्फोरस विलयकारी जैविक उर्वरक कहते हैं। यह कार्बनिक अम्ल बनाते हैं जिससे अघुलनशील फॉस्फेट (ट्राइकैल्शियम फॉस्फेट, मैग्नीशियम फॉस्फेट, रॉक फॉस्फेट और बोनमील) घुलनशील होकर पौधों को उपलब्ध हो जाता है। यह सभी फसलों में प्रयोग किया जा सकता है। यह फास्फोरस की कमी को पूरा करता है।

फास्फोरस विलयकारी जैविक उर्वरकों का प्रयोग निम्नलिखित फसलों में सफलतापूर्वक किया जा सकता हैः

1. **अनाज वाली फसलें** – गेहूं, धान, मक्का, ज्वार इत्यादि।
2. **नकदी फसलें** – कपास, गन्ना, आलू।
3. **तिलहनी फसलें** – सूरजमखी, सरसों, सोयाबीन।
4. **सब्जियां** – प्याज, टमाटर, गोभी, मिर्च, भिंडी आदि।

जैविक उर्वरकों के प्रयोग के लिए बीजों को बुआई से पहले उपचारित करना चाहिए। इनके प्रयोग से फसलों में फास्फोरस की उपलब्धता 10–25 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।

माइकोराइजा

वेसीकुलर आरवसकुलर माइकोराइजा जो कि एक फफूंद है, भी जैविक उर्वरकों की श्रेणी में आता है। लम्बे समय तक खेती करने से मृदा में कुछ तत्वों की कमी हो जाती है। फसलों की जड़ें एक निश्चित गहराई तक ही पहुंच पाती हैं। मृदा की निचली सतहों से पोषक तत्वों को पौधों तक पहुंचाने के लिए माइकोराइजा बहुत उपयोगी है। इसके प्रयोग से सुदूर स्थानों से फास्फोरस व जिंक जैसे पोषक तत्व पौधों को आसानी से मिल जाते हैं। माइकोराइजा पौधों की जड़ों के साथ भागीदारी करके अपनी पोषण संबंधी आवश्यकता को पूरा करते हैं। ये पौधों द्वारा पानी के अवशोषण को भी बढ़ाते हैं। यह विभिन्न फल वाले पौधों, मोटे अनाजों, मूंगफली और सोयाबीन आदि के लिए उपयुक्त हैं।



जैविक उर्वरकों की उपयोग विधिः

बीज उपचार विधिः जैविक उर्वरकों की यह विधि सबसे सुगम और आसान है। सर्वप्रथम फसल की आवश्यकतानुसार जैविक उर्वरक का चुनाव कर लें। बीज उपचार के लिए 1/2 लीटर पानी में लगभग 50 ग्राम गुड़ या शक्कर अच्छी तरह मिलाकर घोल बना ले। फिर इसमें जैविक उर्वरक की उचित मात्रा मिला ले। सामान्यतः 50 किग्रा बीज के लिए 500 ग्राम जैविक उर्वरक की आवश्यकता होती है। फिर इस घोल को बीज पर अच्छी तरह से छिड़क कर मिला दें जिससे प्रत्येक बीज पर घोल की परत चढ़ जाए। उपचारित बीज को छाया में आधे घंटे तक सुखा ले। बीजों की बुवाई सूखने के तुरंत बाद कर देनी चाहिए।

मृदा उपचार विधि : एक किग्रा जैविक उर्वरक को सड़ी हुई 10 किग्रा गोबर की खाद व 20 किग्रा मिट्टी के साथ अच्छी तरह से मिला ले। इस मिश्रण को फसल की बुवाई के समय या अंतिम जुताई के समय खेत में समान रूप से छिड़क दें। फसल से अधिक लाभ हेतु बुवाई के समय 5–10 किग्रा/हे. जैविक उर्वरक प्रयोग करें।

पौध जड़ उपचार विधि : धान तथा सब्जी वाली फसलें, जिनकी रोपाई की जाती है, उनके लिए यह विधि उपयुक्त है। इस विधि में 200 ग्राम जैविक उर्वरक को एक बड़े मुंह वाले बर्तन या बाल्टी में 50 लीटर पानी में घोल लें। इसके बाद नर्सरी से पौधों को उखाड़ कर 15–20 मिनट के लिए पौधों की जड़ों को उस घोल में डुबाएं। इसके तुरंत बाद रोपाई कर दें। यह सारी प्रक्रिया छाया में ही करनी चाहिए।

कन्द उपचार विधि : इस विधि में गन्ना, अदरक, धुइयां व

ISBN : 978-81-904444-4-6

आलू जैसी फसलों में जैविक उर्वरकों के प्रयोग हेतु कंदों को बुवाई पूर्व उपचारित किया जाता है। इसके लिए एक किग्रा जैविक उर्वरक का 30–40 लीटर पानी में घोल बना लते हैं। इसके बाद कंदों को 15–20 मिनट तक घोल में डूबोकर रखने के पश्चात बुवाई कर देनी चाहिए।

जैविक उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियां

जैविक उर्वरकों का प्रयोग करते समय निम्नलिखित सावधानियां रखनी चाहिए :

1. जैविक उर्वरकों को धूप व गर्म हवा से बचाकर रखना चाहिए।
2. फसलों की किस्म के अनुसार ही जैविक उर्वरकों का चयन करें।
3. जैविक उर्वरकों का पैकेट प्रयोग के समय ही खोलना चाहिए।
4. रासायनिक उर्वरकों, शाकनाशियों व कीटनाशी दवाओं के साथ जैविक उर्वरकों का कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिए।
5. जैविक उर्वरक प्रयोग करते समय पैकेट के ऊपर उत्पादन तिथि, उपयोग की अंतिम तिथि व जैविक उर्वरक का नाम अवश्य देख लें।

जैविक उर्वरकों को कहां से प्राप्त करें

विभिन्न प्रकार के जैविक उर्वरकों के तैयार पैकेट सभी राज्यों में स्थित कृषि विश्वविद्यालय के सूक्ष्म जैव संभागों, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान स्थित सूक्ष्म जैव विज्ञान संभाग कृषि, सेवा केंद्रों व सहकारी समितियों से प्राप्त किए जा सकते हैं।





***

ISBN : 978-81-904444-4-6

16 दलहनी फसलों में फसल सुरक्षा से संबंधित पारंपरिक तकनीकी ज्ञान

[1]उमा साह, [1]हेम सक्सेना, [1]राज कुमार मिश्रा, [1]रश्मि यादव एवं [2]शांतनु कुमार दुबे
[1]भा. कृ. अनुप.–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
[2]भा. कृ. अनुप.–अटारी, कानपुर

भारत विश्व का प्रमुख दलहन उत्पादक, उपभोक्ता व आयातक देश है। दलहनी फसलें भारतीय भोजन व प्रचलित फसल प्रणाली का अभिन्न अंग है। दलहनी फसलें पोषक सुरक्षा के साथ–साथ मृदा स्वस्थ्य बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। दालें भारतीय शाकाहारी आहार में प्रोटीन का मुख्य स्रोत होने के साथ साथ दालें ऊर्जा, खनिज लवण एवं विटामिन का अच्छा स्रोत माना जाता है। दलहनी फसलों में औसतन 20–28 ग्राम प्रोटीन प्रति 100 ग्राम दाल होता है। दलहनी फसलों में पोषण के अतिरिक्त भूमि में जैविक नत्रजन स्थिर करके भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने का अतुलनीय गुण पाया जाता है।

दलहनी फसलें कई तरह के उत्पादन संबंधित बाधक कारकों से प्रभावित होती हैं। इन कारकों में उत्पादन में क्षति पहुँचाने वाले सम्मलित हैं। दलहनी फसलों में रोगों व कीटों के प्रकोप के प्रबंधन के लिए वैज्ञानिक फसल सुरक्षा तकनीकों को विकसित किया गया है। विकसित आधुनिक तकनीकियों के प्रयोग द्वारा दलहनी फसलों के उत्पादन व उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पडा है। कृषक समुदाय प्रायः इन रोगों व कीटों के प्रकोप के लिए विकसित वैज्ञानिक फसल सुरक्षा तकनीकों के साथ साथ परंपरागत फसल सुरक्षा तकनीकों का प्रयोग करते हैं। फसल सुरक्षा से जुड़ी चुनौतियों के समाधान से जुड़े स्थानीय प्रयोगों और अनुभवों के आधार पर कृषक समुदाय विकल्पिक कृषि तकनीकियों का विकास करते हैं जो क्षेत्र विशेष की पारिस्थितिकी व उपलब्ध स्थानीय संसाधनो के अनुरूप होने के साथ–साथ कम खर्च वाली होती हैं।

भौगोलिक पारिस्थितियों में विविधता के कारण भारत परंपरागत कृषि तकनीकियों के ज्ञान का भण्डार है। कृषक समुदाय के इस महत्वपूर्ण ज्ञान भण्डार को प्रलेखित व अध्ययन कर औपचारिक कृषि अनुसंधान प्रणाली में समाहित करने की जरुरत है। इस कदम से नई कृषि तकनीकियों के विकल्पों के विकास को बल मिलेगा जिनको कृषक आसानी से अंगीकृत कर सकेगें।

प्रचलित फसल सुरक्षा पारम्परिक तकनीकें

उकठा रोग प्रबंधनः–अरहर की फसल में उकठा रोग के विनाशकारी प्रभाव को रोकने के लिए देश के अलग–अलग क्षेत्रों में किसानों ने कई पारम्परिक तरीके अपनाते हैं। फसल में उकठा रोग की रोकथाम के लिए मध्य भारत में महाराष्ट्र के जनजातीय कृषक दही से बीजों को दही से उपचारित कर धूप में सुखाते हैं। कृषकों के अनुसार इस विधि द्वारा फसल में उकठा रोग की रोकथाम होने से उत्पादन में 5–8 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की जा सकती है। इसी क्रम में आन्ध्र प्रदेश के कुरनूल जिले के कृषक बीजों को खट्टे मट्ठे से उपचारित करते हैं। चने की फसल में उकठा रोग के प्रकोप को सीमित करने के लिए उत्तर प्रदेश के गोंड़ा जिले के कृषक चने फसल में बुवाई के पूर्व 40 किलो ग्राम बीज को 100 मिली सरसों के तेल से तथा गुजरात के खेड़ा जिले के कृषक नमक से बीजोपचार करते हैं। महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के आगरा व गोंडा जिलों में फसल की बुवाई के पूर्व बीजों का उपचार दही, छाँछ, सरसों व अलसी के तेल के मिश्रण द्वारा करने की पारंपरिक पद्वति है। कवक व बैक्टिीरिया जनित रोगों से बचाव के लिये हिमाचल प्रदेश के किसान चना व मूँग के बीजों को सूखी पिसी लाल मिर्च द्वारा उपचारित करते हैं।

इसके अतिरिक्त उकठा रोग से फसल को बचाव के लिये उत्तर प्रदेश के आगरा जिले के किसानों द्वारा चना/मसूर

ISBN : 978-81-904444-4-6

और अलसी (4:1) तथा अरहर–जौं (1:3) की अन्तः फसली खेती को अपनाया जाता हैं।

कीट प्रबन्धनः भारत में सदियों से कीट प्रबन्धन के लिये नीम की पत्तियों और निबौली तथा तम्बाकू के चूर्ण का प्रयोग होता आ रहा है। दलहनी फसलों में प्रभावी कीट नियंत्रण के लिए हिमाचल प्रदेश के कृषकों द्धारा गोमूत्र तथा तम्बाकू का प्रयोग किया जाता हैं। दालों को कीडों से बचाने के लिये कृषक दलहन के बीजों पर गीली मिट्टी का लेप कर देते हैं। उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में उर्द –मूँग की फसल को हेयरी कैटरपिलर से बचाने के लिये तिल को ट्रेप फसल के रूप में लगाते हैं। मूँग की फसल को कीटों से बचाने के लिये मठ्ठा, एलोवेरा और खमीर युक्त तम्बाकू के घोल का छिड़काव भी किया जाता हैं।

फली भेदक का प्रबन्धनः फली भेदक कीट देश के विभिन्न भागों में अलग–अलग ऋतुओं में दलहनी फसलों में बृहद स्तर पर नुकसान पहुँचाता हैं। अतः इस कीट से बचाव के लिये कृषकों ने कृषि पारिस्थितियों के अनुकूल पारम्परिक तरीके विकसित की हैं। चना व अरहर की फसलों में चना फली भेदक कीट की रोकथाम के लिये अनेक वानस्पतिक उत्पादों का पारंपरिक प्रयोग किया जाता है। इस दिशा में नीम, शरीफा, करंज, तम्बाकू की पत्ती, मिर्च तथा लहसुन के सत् इत्यादि का प्रयोग देश में प्रचलित है।

महाराष्ट्र राज्य में नीम सत् अथवा नीम और गाजर घास से तैयार सत् का प्रयोग इस महत्वपूर्ण कीट के प्रकोप से फसल को बचाने के लिए किया जाता है। असम में फली भेदक से बचाव के लिए नीम की निबौली के सत् का छिडकाव प्रचलित है। आन्ध्र प्रदेश में कृषकों द्वारा शरीफे की पत्तियों के सत् का प्रयोग; नीम, मिर्च, लहसुन, और बोगनविलिया के मिश्रित सत् का छिडकाव फसल में फली भेदक कीट के नियंत्रण के लिए किया जाता है। इस कीट की रोकथाम के लिए आन्ध्र प्रदेश राज्य में अरहर के साथ गेंदे की फसल को ट्रैप कॉप की तरह लगाई जाती है। राज्य में फली भेदक के याँत्रिक नियन्त्रण के लिये पौधों से फली भेदक कीट के लार्वा को रस्सी के सहारे जमीन पर झाड़ कर खेतों की जुताई कर दी जाती है।

कर्नाटक राज्य में किसान दलहनी फसलों को फली भेदक से बचाने के लिये पानी के साथ लहसुन और मिर्च पीस कर और केरोसीन तेल मिलाकर फसलों पर छिड़काव प्रचलन में है। कर्नाटक राज्य में 0.4 प्रतिशत गुड़ के घोल का अरहर की फसल पर छिड़काव किया जाता हैं जिससे चींटियाँ फसल की ओर आकर्षित होती हैं और गुड़ के साथ–साथ फली भेदक के लार्वा और अण्डे को खाकर उनकी संख्या को नियंत्रित करती हैं। इसके अतिरिक्त फसलों को फली भेदक से बचाने के लिए गेंदे की फसल को ट्रैप कॉप के रूप में लगाया जाता है। गुजरात राज्य में फली भेदक कीट के नियंत्रण के लिये कृषक कई पारंपरिक तरीकों का प्रयोग करते हैं जिनमें हरी मिर्च के घोल का छिड़काव, करंज की पत्तियों के सत् का छिड़काव, शरीफा और अग्निमय के सत् का छिड़काव, एलोवेरा, नीम तेल, रीठा और तम्बाकू के मिश्रित सत् का छिड़काव, केरोसीन तेल का छिड़काव, शकरकन्द की पत्तियों के सत् का छिड़काव, तम्बाकू के सत् का छिड़काव तथा एलोवेरा मट्ठा और तम्बाकू के चूर्ण के मिश्रण का छिड़काव प्रमुख है। इन सभी विधियों के अतिरिक्त गुजरात के कृषक अरहर के साथ मक्का की बुआई करते हैं। मक्का के भुठ्ठे चिड़ियों को आकर्षित करते हैं जिससे चिड़ियाँ मक्का के दानों के साथ फसलों में फली भेदक के लार्वा खा कर फली भेदक कीट के नियंत्रण में योगदान करती हैं।

महाराष्ट्र राज्य में चना फली भेदक कीट के प्रकोप की रोकथाम के लिए कृषक चिड़ियों को खेतों की ओर आकर्षित करने के लिये पके हुए चावल प्लेट में रख देते हैं अथवा चने के साथ ज्वार की मिश्रित खेती करते हैं। चिड़ियाँ पके हुए चावल व ज्वार के साथ–साथ फली भेदक के लार्वा खाकर कीट नियंत्रण में सहायता करती हैं। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र राज्य के शोलापुर में कृषक अरहर की फसल में पुष्प बनने से फली बनने के मध्य खेतों में मिट्टी पलटते हैं जिससे फली भेदक कीट की सूड़ी नष्ट हो जाती है। इसी दिशा में कृषक संक्रमित फसलों पर गुड़ के घोल का छिड़काव करते हैं जिससे चींटियाँ खेतों की ओर अकार्षित होकर गुड़ के साथ साथ फलीभेदक की सूड़ी को भी नष्ट कर देती हैं। फली भेदक कीट के नियन्त्रण के लिये फसलों पर बाजरे के आटे के खमीर का भी छिड़काव किया जाता है। उत्तर प्रदेश राज्य के बलिया व अजामगढ़ जनपदों में चने की फसल में फली भेदक कीट के प्रबन्धन के लिए चने के साथ धनिया की मिश्रित खेती प्रचलित है।

हिमाचल प्रदेश राज्य के मण्डी जिले फली भेदक के नियंत्रण

ISBN : 978-81-904444-4-6

के लिए एलावेरा, मठ्ठा और तम्बाकू के चूर्ण का पानी के साथ घोल बनाकर फसल पर छिड़काव किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त राज्य में पारंपरिक पद्वति में लहसुन, अदरख, मिर्च तम्बाकू, हींग तथा गोमूत्र के मिश्रण का फसल पर छिड़काव भी किया जाता हैं । फली भेदक कीट के प्रकोप के प्रबंधन के लिए गोबर कण्डों की राख का फसल पर छिड़काव भी प्रचलित है।

दीमक प्रबन्धनः कृषकों द्वारा फसलों में दीमक के नियंत्रण के लिए विभिन्न पारंपरिक तकनीकें अपनाई जाती हैं जिनका विकास क्षेत्र विशेष में उपलब्ध संसाधनों पर आधारित होता है। जम्मू–कश्मीर राज्य के राजौरी जनपद में खेतों में दीमक के प्रबन्धन के लिए खेतों की तैयारी के समय गाय के गोबर की राख का छिड़काव किया जाता है जबकि राजस्थान में बुवाई से पहले चने के बीज को हींग के पानी से अथवा गोमूत्र से उपचारित करना प्रालेखित है। राजस्थान में कृषकों द्वारा अकौड़ा/मदार के सत् से बीजापचार को दीमक का प्रभावी नियंत्रण के लिए किया जाता हैं।

माँहू नियंन्त्रण : माँहू के नियन्त्रण के लिए देश के विभिन्न हिस्सों में तम्बाकू के अर्क को साबुन के पानी के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाता है। गुजरात में कृषकों द्वारा लहसुन और हरी मिर्च के सत् का प्रयोग को माँहू के नियंन्त्रण में अत्यधिक प्रभावी माना जाता है।

सूत्रकृमि नियंत्रण : अरहर की फसल में सूत्रकृमियों के नियंत्रण के लिये कृषकों द्वारा मृदा को मदार की पत्तियों के चूर्ण से उपचारित किया जाता है। अरहर व चने की फसल में जड़गाँठ सूत्रकृमि के नियंत्रण के लिये अर्जिमोन और बबूल की पत्तियों का प्रयोग भी प्रचलित है। कटाइ उपरान्त फसल प्रबन्धनः–कटाई के उपरान्त फसल से बीज प्राप्त करने के लिये किसान अलग–अलग तकनीकियों का प्रयोग करते हैं। अधिकतर लकड़ी के डण्डों तथा लकड़ी के पटरों का प्रयोग किया जाता हैं फसल को सर्वप्रथम धूप में अच्छी तरह सुखाया जाता हैं मूँग और उर्द के बीज को खल्लड़ में अलग करने के लिये खाध तेल का भी प्रयोग किया जाता हैं।

बीज भण्डारण : दहलनी फसलों के सुरक्षित भण्डारण से जुडी हुई अनेक पारंपरिक विधियाँ देश के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं। पारंपरिक विधि से कृषक बीजों को भण्डारित करते समय अनेक वानस्पतिक उत्पादों का प्रयोग करते हैं जैसे प्याज की गाँठें, सूखे लहसुन, नीम की पत्तियाँ, गेहूँ का भूसा, तुलसी, मेथी की सूखी डंडियाँ, हींग, नमक, करंज आदि।इसके अतिरिक्त कपूर, मिट्टी का तेल, मोबिल आँयल, रेत, राख, लाल मिट्टी आदि का भी प्रयोग प्रचलित है।

दक्षिण भारत तमिलनाडु राज्य में कृषक दलहनी फसलों के बीजों को भण्डारित करते समय उन्हें जूट के बोरों में भर कर रखते हैं। राज्य के कुछ हिस्सों में राख, लाल मिट्टी, नीम की पत्तियाँ, रीठा आदि का प्रयोग भी किया जाता है। कुछ कृषक दालों को लोहे के बर्तन में सूखा भून लेते हैं, तत्पश्चात मिट्टी के सूखे पात्र में भण्ड़ारित करते हैं। दाल को बाँस की डालियों में बालू की तहों के बीच में रखकर डलियों को ढक्कन से बन्द कर उस पर गाय के गोबर और राख का लेप करने की पारंपरिक विधि भी अपनाई जाती है। दालों के सुरक्षित भण्डारण के लिए तमिलनाडु राज्य के कृषक दालों पर नारियल के तेल व अण्डी के तेल का लेप करते हैं। कर्नाटक के कृषक दालों के सुरक्षित भण्डारण के लिए लकड़ी की राख का प्रयोग करते हैं क्योंकि माना जाता हैं कि राख कीड़ों के श्वसन तन्त्र को अवरूद्व कर देती है। कर्नाटक राज्य के ही कुछ हिस्सों में अण्डी के बीजों के चूर्ण अथवा गर्म तेल या नीम के तेल का भी प्रयोग भण्ड़ारण के समय किया जाता हैं। धारवाड़ जिले में दालों को सूखा भून कर, ठण्ड़ा करके हवा अवरोधी भण्डारण पात्रों में भर कर रखा जाता है। आन्ध्र प्रदेश के कृषक दालों को बालू अथवा लकड़ी की राख, गाय के गोबर की राख के साथ मिलाकर नये मिट्टी के बर्तनों में रखते हैं। साथ ही कृषक रीठा और नीम की पत्तियों का भी प्रयोग करते हैं। इन पारंपरिक उपायों के अतिरिक्त दालों को सुरक्षित भण्डारण के लिए खाध तेल जैसे– मूँगफली, कंरज अथवा तिल के तेल का लेप लगाकर हवा बन्द डिब्बों में भी रखने की परम्परा हैं।

पूर्वी भारत के बिहार राज्य में चना, मटर, मसूर की दाल का भण्ड़ारण अलसी और गेहूँ के भूसे के साथ किया जाता है वही असम राज्य में दालों के साथ लकड़ी की राख, नीम की पत्तियाँ/डंडियाँ व छाल को मिला कर रखा जाता है। असम के कुछ क्षेत्रो में दालों के सुरक्षित भण्ड़ारण के लिए लहसुन की सूखी पत्तियाँ, लहसुन की कलियों का चूर्ण अथवा पपीते के चूर्ण को 1 ग्राम/5 किग्रा दाल की दर से प्रयोग में लाया जाता है। उड़ीसा राज्य में मूँग और उर्द के सुरक्षित भण्ड़ारण

ISBN : 978-81-904444-4-6

के लिए पिसी हरी मिर्च मिला दी जाती हैं और फिर दाल को भलीभाँती सुखाकर भण्डारित किया जाता है।असम के बारपेटा जनपद में दालों को गोमूत्र से धोकर व सुखाकर भण्डारित करने की प्रथा का उल्लेख मिलता है।

पश्चिमी भारत के गुजरात राज्य में दालों को सुरक्षित रखनें के लिए बालू की तह लगाई जाती है व धान को पुआल से बनी डलियों में दालों का भण्डारित किया जाता है। महाराष्ट्र में दालों को लकड़ी की राख के साथ मिलाकर टिन के भण्डारण पात्रों में रखने का प्रचलन है। कुछ जनपदों में दालों को लोहे की गागर में भर कर रख देते हैं और गागर के ढक्कन में मिट्टी का लेप लगाकर बंद कर दिया जाता है । इन गागरों को छतों पर धूप में रख दी जाती हैं। महाराष्ट्र की कुछ जनजातियाँ चने के भण्डारण के समय बीच बीच में भूसे की तह लगा देते हैं।

उत्तर भारत में भी दालों के सुरक्षित भण्ड़ारण के लिए विभिन्न परम्पराओं का प्रचलन है। उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले में उर्द, चना तथा मटर के भण्डारण के लिये लकड़ी की राख का प्रयोग किया जाता है। दालों के सुरक्षित भण्ड़ारण के लिए उत्तराखंड, जम्मु कश्मीर, उत्तर प्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश में दालों पर सरसों के तेल का लेप किया जाता है। शिमला में सरसों के तेल के साथ हल्दी का भी लेप लगाया जाता है। हिमाचल प्रदेश के कुछ हिस्सों में मिट्टी के तेल का प्रयोग भी प्रचलित है। उत्तराखंड व हिमाचल प्रदेश में कृषक दालों का भण्डारण लकड़ी के पात्रों में करते हैं। हिमाचल प्रदेश में दालों के सुरक्षित भण्ड़ारण के लिए स्थानीय पौंधो बन्ना और गन्दला की 5–6 पत्तियाँ प्रति किग्रा बीज की दर से भण्डारण के समय प्रयुक्त होती हैं। साथ ही अमरबेल के बीज और राख को 25 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से भी प्रयोग किया जाता है। हींग और कपूर का प्रयोग भी दलहनी फसलों के सुरक्षित भण्ड़ारण के लिए किया जाता है।

उत्तर प्रदेश के बुंदेलखण्ड क्षेत्र में कृषक दालों के बीज को भण्डारित करने के लिए मिट्टी के पात्रों का प्रयोग करते हैं और उनके मुँह को ढक्कन से बन्द कर मिट्टी और गोबर का लेप लगा कर सील कर दिया जाता हैं। इससे नमी अन्दर नहीं पहुँचती है और पात्र के अन्दर उचित तापमान बरकरार रहता है।

भौगोलिक परिस्थितियों में विविधता होने के कारण भारत परंपरागत कृषि तकनीकियों के ज्ञान का भण्डार है। दलहनी फसलों में फसल सुरक्षा से संबंधित पारंपरिक तरीके स्थानीय उपलब्ध संसाधनों के आधार पर देश के विभिन्न हिस्सों में अपनाई जाती हैं। इन पारंपरिक ज्ञान संसाधनों के वैज्ञानिक आधार के अध्ययन व औपचारिक कृषि अनुसंधान में शामिल करने आवश्यकता है। इससे ऐसे नए फसल सुरक्षा तकनीकों के विकास को आधार मिलेगा जो प्रभावी व मितव्ययी होने के साथ साथ क्षेत्र विशेष के तथा उपलब्ध संसाधनों के अनुकूल होगी। पारंपरिक पद्धतियों के समावेश से विकसित तकनीकों को कृषक समुदाय आसानी से स्वीकार कर पाएंगे।



***

ISBN : 978-81-904444-4-6

17 आजमगढ़ जिले में प्रमुख दालों का उत्पादन एवं विपणन

[1]राजीव सिंह, [2]नवीन कुमार शर्मा, [1]स्वतंत्र प्रताप सिंह एवं [1]संतोष कुमार मिश्रा
[1]नरेंद्र देव यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर एंड टेक्नोलॉजी, अयोध्या
[2]कृषि विज्ञानं केंद्र, कौशाम्बी (उत्तर प्रदेश)

दालों के महत्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि अधिकांश भारतीय आबादी शाकाहारी है। दालें सस्ते प्रोटीन का मुख्य स्रोत और भारतीय आबादी के शाकाहारी भोजन का एक महत्वपूर्ण घटक हैं। चूँकि भोजन और पोषण सुरक्षा दोनों ही महत्वपूर्ण आवश्यकता है, इस प्रकार दालों के उत्पादन और आपूर्ति के गहन प्रयास पर विशेष प्रयास आवश्यक हैं। पल्स फसल जैविक नाइट्रोजन निर्धारण और चारा और चारे के रूप में उनके विभिन्न उपयोगों के माध्यम से मिट्टी को समृद्ध करके फसल उत्पादन प्रणाली को स्थिरता प्रदान करती है। ये फसलें मुख्य अनाज वाली फसलों को परेशान किए बिना विभिन्न फसल प्रणाली में भी फिट होती हैं।

भारत दुनिया में दालों का सबसे बड़ा उत्पादक, आयातक और उपभोक्ता है, जिसका वैश्विक उत्पादन का 25 प्रतिशत, 15 प्रतिशत व्यापार, और वर्तमान आर्थिक दिनों के दौरान खपत का 27 प्रतिशत है, किसान न्यूनतम लागत से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए इच्छुक हैं। जिसका प्रबंधन दलहन के क्षेत्र में वृद्धि करके किया जा सकता है।

दालों के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए "पूर्वी उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले में प्रमुख दालों का उत्पादन और विपणन" नामक अध्ययन विशिष्ट उद्देश्यों के साथ किया गया थारू

1. फार्म संरचना का अध्ययन करने के लिए नमूना पैटर्न पर फसल पैटर्न और फसल की तीव्रता।
2. नमूना फार्मों पर पल्स उत्पादन की लागत और रिटर्न का पता लगाने के लिए।
3. संसाधनों का पता लगाने के लिए नमूना खेतों पर पल्स उत्पादन में दक्षता का उपयोग करें।
4. नमूना खेतों पर विपणन और विपणन अधिशेष बाहर काम करने के लिए और विपणन दक्षता का पता लगाने के लिए।
5. दालों के उत्पादन और विपणन में बाधाओं का अध्ययन करना और उपयुक्त नीतिगत उपाय सुझाना।

अध्ययन आजमगढ़ जिले के थेक्मा ब्लॉक में आयोजित किया गया था। ब्लॉक के 5 चयनित गांवों से सीमांत, लघु और मध्यम श्रेणी के किसानों के लिए एक सौ सैंपल किसानों को पर्पोजिव कम आनुपातिक रैंडम सैंपलिंग तकनीक के जरिए दिए गए। प्राथमिक डेटा एकत्र करने के लिए पूर्व संरचित अनुसूची के साथ व्यक्तिगत साक्षात्कार आयोजित किया गया था। ब्लॉक और जिला कार्यालयों के आधिकारिक रिकॉर्ड से माध्यमिक डेटा एकत्र किए गए थे। परिणामों के संदर्भ और प्रस्तुति को आकर्षित करने के लिए सारणीबद्ध और फंक्शन विश्लेषण लागू किया गया था।

खेत श्रम एक प्रमुख इनपुट कारक के रूप में आबादी से बाहर आता है, 81.08, 9.73 और 9.17 प्रतिशत के रूप में सीमांत, छोटे और मध्यम आकार के खेत के समूह पर वितरित किया गया था, यह खेत के आकार के साथ जनसंख्या की विपरीत प्रवृत्ति को दर्शाता है। उत्तरदाताओं की शिक्षा एक अन्य कारक है जिसका सीधा प्रभाव किसी भी फसल की उन्नत खेती पर पड़ता है। यह खेत के आकार के साथ प्रत्यक्ष प्रवृत्ति का पाया गया। यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जनसंख्या और उनकी शिक्षा का कृषि आकार के साथ नकारात्मक और सकारात्मक रुझान था। कुल मिलाकर औसत जोत का आकार 0.67 हेक्टेयर था जो खेतों के सीमांत, छोटे और मध्यम आकार पर 0.44, 1.57 और 3.24 हेक्टेयर था। खरीफ में फसल की पैदावार में, रबी में गेहूं और

ISBN : 978-81-904444-4-6

जैद के मौसम में प्याज पहली रैंक पर था। अध्ययन के तहत दलहनी फसलें खरीफ में अरहर थी, और रबी मौसम में चना और मटर ने क्रमशः 2.83,5.00, और 4.16 प्रतिशत घास की फसल वाले क्षेत्र पर कब्जा कर लिया था। औसत घास वाले फसली क्षेत्र क्रमशः 0.83, 2.93 और 4.91 हेक्टेयर सीमांत, छोटे और मध्यम आकार के खेतों के समूह पर आए थे, जो कि सभी खेत औसत पर 1.20 हेक्टेयर थे। इसी तरह फसल की तीव्रता विपरीत प्रवृत्ति के साथ पाई गई, जो कि आकार में 188.63:, सीमांत पर 187.00: और खेत के मध्यम आकार के समूह पर 151.44 प्रतिशत से भिन्न थी और यह पूरे खेत पर 179.10 प्रतिशत थी। यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि होल्डिंग के आकार में वृद्धि के साथ फसल की तीव्रता कम हो जाती है। कुल खेतों पर प्रति खेत निवेश रु। 457551.40 जो कि मशीनों पर 13.05 प्रतिशत और पशुधन पर 7.64: की दर से 79.27: के रूप में वितरित किया गया था। खेत के आकार के साथ निवेश के संबंध में, जहां किसानों और किसानों के बीच सकारात्मक रुझान था, वहां निवेश और पशुधन पर निवेश उलटा पाया गया। प्रति हेक्टेयर निवेश के मामले में भी इसी तरह का रुझान दर्ज किया गया। प्रति हेक्टेयर खेती की कुल लागत और चने की कुल आय रु। 33431.35 और रु। 75843.67 और रु। 36115.08 और रु। मटर में 52098. 96, इसी तरह यह रु। अरहर के मामले में क्रमशरू 28794.27 और 87499.68.

क्रमशः चना, मटर और अरहर के मामले में आउटपुट इनपुट अनुपात 1रू 2.26, 1रू 1.44 और 1रू 3.01 पाया गया। यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अध्ययन के तहत तीन दालों में से सबसे अधिक लाभदायक था चना और मटर। चार स्वतंत्र कारक जो मानव श्रम, बीज, उर्वरक और मशीनरी शुल्क की लागत हैं, संसाधन उपयोग दक्षता के विश्लेषण के लिए विचार किया गया था और यह पाया गया कि बीज लागत का तीनों फसलों यानी चना, मटर और अरहर के उत्पादन में बदलाव के साथ महत्वपूर्ण सहयोग था लेकिन इन सभी कारकों के एमवीपी को अतिरिक्त आय प्राप्त करने के लिए एक से अधिक निवेश के संकेत दिए गए थे।

क्र.सं.	किसान समुह सीमांत	नमूना किसानों की संख्या ने दालों को उगाया			सैंपल फार्म पर दलहन की कुल उपज		
		चना	मटर	अरहर	चना	मटर	अरहर
1.	छोटा	20 (60.61)	84 (86.60)	21 (61.76)	16.58 (36.29)	78.92 (74.37)	31.93 (49.21)
2.	मध्यम	8 (24.24)	8 (8.28)	8 (23.53)	15.90 (34.80)	15.00 (14.13)	19.50 (30.05)
3.	किसान समुह	5 (15.15)	5 (5.15)	5 (14.70)	13.20 (28.90)	12.20 (11.50)	13.45 (20.73)
कुल	100	33 (100)	97 (100)	34 (100)	45.68 (100)	106.12 (100)	64.88 (100)

(कोष्ठक में चित्र से पता चलता है कि नमूना कृषकों की संख्या सैंपल फार्मों पर दालों को चुनिंदा सौ उत्तरदाताओं और दालों के उत्पादन से उगाया गया है)

जहां तक अध्ययन क्षेत्र में दालों के विपणन का संबंध है, यह पाया गया कि चने, मटर और अरहर की कुल पैदावार में 57. 51, 50.81 और 62.42 प्रतिशत का प्रसार इलाके में प्रचलित विभिन्न विपणन चौनलों के माध्यम से किया गया था। लेकिन घरेलू खपत के उद्देश्य से कुल फसलों का 43.81 प्रतिशत। इन फसलों के विपणन अधिशेष के निपटान के बारे में यह पाया गया कि अधिकतम मात्रा यानी 65.09: चना चौनल प्प्तक के माध्यम से बेचा गया था, लेकिन 52.86: मटर चौनल IInd के माध्यम से बेचा गया था, फिर से तींत चौनल IIIrd के निपटान के लिए अधिक कुशल पाया गया। यहां यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चौनल IIIrd अधिक कुशल था और नमूना किसानों के बहुमत द्वारा अपनाया गया था, इसकी दक्षता इलाके में प्रचलित बाकी विपणन चौनलों की तुलना में कम है। यह निष्कर्ष निकाला गया है कि उपभोक्ता की कीमत में निर्माता की हिस्सेदारी क्रमशः 99.07, 93.25 और 83.29 प्रतिशत चना के विपणन में चौनल II IInd और IIIrd के खिलाफ थी। पल्स मार्केटिंग में तीनों चौनल के दक्षता सूचकांक की तुलना करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि चौनल Ist सबसे अधिक कुशल था, फिर भी दो में से अधिकांश की मार्केटिंग की गई लेकिन अधिशेष की अधिकतम मात्रा चौनल के माध्यम से निपटा दी गई और समस्याओं और बाधाओं की तीसरी श्रृंखला पल्स उत्पादन को प्रतिबंधित करने के लिए मौजूद थी। किसान क्षेत्र जो तकनीकी ज्ञान कौशल, इनपुट कारकों की आपूर्ति, विपणन समस्याओं और नीले बैल, प्राकृतिक जलवायु और नहर

ISBN : 978-81-904444-4-6

सिंचाई क्षेत्र में उच्च जल स्तर सहित अन्य समस्याओं से संबंधित थे।

इन सभी समस्याओं के बीच तकनीकी ज्ञान और कौशल को 1 रखा गया था, जिसके बाद विपणन में बाधाएं, इनपुट कारक की उपलब्धता और कम से कम अन्य समस्याएं थीं। दोनों पक्षों अर्थात् उत्तरदाताओं और अन्वेषक के सुझाव का निष्कर्ष यह है कि सरकार के संयुक्त प्रयासों की मदद से। और खेती की आबादी इन सभी बाधाओं को हल किया जा सकता है।

अंत में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि देश के गरीब शाकाहारी आबादी के भोजन और पोषण सुरक्षा के दृष्टिकोण के साथ पल्स मानव आहार का एक अनुपलब्ध महत्वपूर्ण घटक है। समय के साथ–साथ जनसंख्या बढ़ती है और प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता कम होती जाती है, जिसने अंततः खाद्यान्न क्षेत्र में वृद्धि की स्थिति पैदा की और दलहन के क्षेत्र में कमी आई।

अगल–बगल कई अन्य कारकों पर चर्चा की गई जो दालों के क्षेत्र उत्पादन और उत्पादकता को कम करने के लिए जिम्मेदार हैं। यह समय की आवश्यकता है कि दलहन की खेती को किसान के क्षेत्र में किसी भी माध्यम से बढ़ावा दिया जाना चाहिए। जो किसानों की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने और लागत को कम करने और मिट्टी की उर्वरता और फसल की तीव्रता को बढ़ाने के साथ आय को अधिकतम करने में सहायक होगा। यह दालों के आयात स्तर को कम करने में पूरी मदद करेगा और इसके प्रसंस्करण में रोजगार का स्तर बढ़ाएगा।



***

ISBN : 978-81-904444-4-6

18 दलहन उत्पादन में पारंपरिक कृषि तकनीकी ज्ञान का महत्व

[1]उमा साह, हेम सक्सेना, [1]नरेन्द्र कुमार, [1]रश्मि यादव एवं [2]शांतनु कुमार दुबे'
[1]भा.कृ.अनु.–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर
[2]भा.कृ.अनु प्र.–अटारी, कानपुर

पारंपरिक कृषि तकनीकी ज्ञान समुदाय विशेष के सदस्यों द्वारा संचित वर्षों के अनुभवों व अर्जित ज्ञान का भंडार है जिसका उपयोग कृषक समुदाय अपने अस्तित्व के आधार के रूप में करता है। यह ज्ञान कृषक समुदाय द्वारा वर्षों के अपने अनौपचारिक परीक्षणों व प्रयोगों से कृषि उत्पादन से जुड़ी समस्याओं, चुनौतियों, व विषमताओं के समाधान के लिए विकसित किया जाता है। पारंपरिक कृषि तकनीकी ज्ञान समुदाय विशेष का अभिन्न अंग होता है जिसे पर स्थानीय लोगों द्वारा स्थानीय वातावरण में स्थानीय संसाधनों के प्रयोग द्वारा विकसित किया जाता है। यह ज्ञान क्षेत्र विशेष की पारिस्थितिकी के अनुरूप होने के साथ–साथ व्यवहारिक, रचनात्मक, कम लागत के साथ साथ आसानी से उपलब्ध होता है। इस ज्ञान का विस्तार धीमी गति से सीमित क्षेत्र में होता है और पीढी दर पीढी प्रवाहित होता है।

कृषक समुदाय व पारंपरिक तकनीकी ज्ञान को अक्सर शोधकर्ताओं, विकास एजेंसियों व नीति नियोजकों द्वारा पुराना, अपरिवर्तनीय व अवैज्ञानिक समझा जाता है। इस धारणा के विपरीत पारंपरिक ज्ञान भंडार समुदाय विषेश की पर्यावरण के अंतरंग समझ, स्थानीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान प्रणालियों के साथ संपर्क व लगातार नई चुनौतियाँ से प्राप्त अनुभवों का समवेश करते हुए बदलता और बढ़ता है। कृषक समुदाय की शोध क्षमता की उपेक्षा कर यह ज्ञान भंडार अस्वीकृत व औपचारिक कृषि अनुसंधान प्रणाली द्वारा अक्सर असमर्थित रह जाता है।

पारंपरिक कृषि ज्ञान को समझना कई कारणों से महत्वपूर्ण है। सबसे पहले यह ज्ञान भंडार अतीत में लोगों द्वारा स्थानीय पर्यावरण के साथ किए गए प्रयोगों व प्राप्त को दर्शाता है। दूसरा, पारंपरिक ज्ञान की समझ कृषकों की भागीदारी सुनिश्चित कर स्थानीय सशक्तिकरण और विकास के साथ समुदाय विशेष की आत्मनिर्भरता में वृद्धि में योगदान भी कर सकता है। साथ ही इस ज्ञान की समझ किसानों व कृषि विस्तार कर्मियों व वैज्ञानिकों के बीच संवाद में सुधार आ सकता है जिससे कृषि विकास को गति मिल सकती है। तीसरा पारंपरिक ज्ञान की समझ से स्थान विशिष्ट, जरूरत या समस्या उन्मुख, सामाजिक रूप से वांछनीय व कम लागत वाली कृषि प्रौद्योगिकियाँ विकसित करने में सहायक होगी जिससे कृषि विकास को गति प्रदान की जा सकती है।इस पारंपरिक ज्ञान संसाधन के अध्ययन व औपचारिक कृषि अनुसंधान व प्रसार सम्बन्धी नीतियों में शामिल करने और समान कृषि परिस्थतियों में हस्तान्तरित करने की आवश्यकता है। ऐसा करने से नये तकनीकि विकल्पों के विकास को आधार मिल सकता है जिनका अंगीकरण आसानी से लंबे समय तक कृषक समुदाय के बीच संभव हो सकता है।

भौगोलिक व कृषि उत्पादन पारिस्थितियों में उपस्थित विविधताओं के कारण भारत परंपरागत कृषि तकनीकियों के ज्ञान का भण्डार है। पारंपरिक तकनीकी ज्ञान, दलहनी फसलों के संदर्भ किसी भी अन्य फसलों की तुलना में अधिक प्रासंगिक है।

पारंपरिक तकनीकी ज्ञान और दलहन उत्पादन :

भारत में दलहनी फसलों की खेती मुख्यतः बारानी स्थितियों व कम उपजाऊ भूमि में की जाती है। कृषक प्रायः इन फसलों के उत्पादन में सीमित बाह्य संसाधनों का प्रयोग करते हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों में उगााए जाने के कारण इन फसलों पर संस्तुत मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग भी नही हो पाता जिससे फसल को उत्पादन सीमित रह जाता है। दलहनी किसानों में

ISBN : 978-81-904444-4-6

संस्तुत किस्मों के बीजों की वांछित मात्रा में समसामयिकता उपलब्धता व प्रयोग की जानकारी का भी अभाव होता है। जलवायु परिस्थितियाँ व अस्थिर बाजार भाव दलहनी फसलों के उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। सर्म्पूण दलहन उत्पादन एवं प्रयोगों की श्रृंखला में दलहनी फसलों का भण्डारण एक महत्वर्पूण कड़ी है। प्रोटीन की अधिकता के कारण दालों का सुरक्षित संरक्षण अन्य फसलों से अधिक चुनौतीपूर्ण है।

दलहनी फसलों के उत्पादन से जुड़ी इन विषमताओं के परिप्रेक्ष इन फसलों मे पारंपरिक तकनीकी ज्ञान प्रासंगिक है। पारंपरिक तकनीकी ज्ञान भंडार को एक वैकल्पिक अनुसंधान के रूप में नई दलहनी तकनीकी हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है, जिसे कृषक समुदाय आसानी से स्वीकार कर पाएंगे। दलहनी फसलों के उत्पादन संबंधित ऐतिहासिक पारंपरिक ज्ञान भण्डार में ऐसी प्रविष्टियाँ हैं जिनकी मिलती जुलती संस्तुति वर्तमान में औपचारिक दलहन अनुसंधान भी करता है। इन्ही में से कुछ का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में विवरण निम्नवत् है।

दलहन उत्पादन से जुड़ी ऐतिहासिक पारंपरिक तकनीकें

कष्यप के 800 ईसवीं में चने व अरहर के बड़े आकार के बीज वाली प्रजातियों व मूँग और उर्द की बुआई पंक्तियों में होने तथा चना, उर्द व मूँग की बुवाई के एक महीने बाद गोबर की खाद के प्रयोग की संस्तुति का उल्लेख किया है। सन् 1807 में बूचानन ने दक्षिण भारत में अरहर की पंक्ति में बुवाई के लिए कुरूगे नामक सीड ड्रिल के प्रयोग का उल्लेख किया है। चना की फसल को अत्यधिक वनस्पतिक विकास को रोकने के लिए पषुओं को फसल पर चराने की व्यवस्था का जिक्र मिलता है। अलाउद्दीन खिलजी के षासन काल में उत्तरी भारत में एक दिलचस्प फसल चक्र के उपयोग की चर्चा लाल (1980) ने की है जिसमें बरसात के मौसम में उर्द की फसल के बाद रबी के मौसम में गेंहूँ या जौ की फसल ली जाती थी। इसके बाद बारिष के मौसम में खेतों को परती छोड़कर, रबी में चना की फसल ली जाती थी। यह फसल चक्र वर्तमान में संस्तुत फसल चक्र का ही एक उदाहरण है। षामषास्त्री (1961) के अनुसार कौटिल्य के समय (321–296 ईसा पूर्व) दलहनी फसलों के बीज को बुवाई के पूर्व 3–5 रातों तक ओस में भीगने के लिए खुले में रखा जाता था और दिन में धूप में सुखाया जाता था। इस विधि से किया गया बीजोपचार बीज के छिलके को ढीला कर जमाव में सहायक होता था। मुगल शासन के दौरान भारत में बीज को बुवाई के पूर्व गुनगुने पानी में 24 घण्टों तक भिगोए जाने का उल्लेख नकवी (1984) ने किया है। इसी समय मसूर के बीज को पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए गाय के गोबर से उपचारित किये जाने का उल्लेख भी मिलता है।

वर्तमान में प्रचलित पारम्परिक तकनीकें

भारत में दलहनी फसलों के उत्पादन व भण्डारण में पारंपरिक तकनीकी ज्ञान का ग्राम स्तर पर विशेष महत्व है। इनमें से वर्तमान में प्रचलित कुछ तकनीकों का वर्णन निम्नवत है।

भूमि की उर्वरता में वृद्धिः– मध्य भारतीय क्षेत्र के जबलपुर जिले में मृदा की उर्वरा शक्ति की वृद्धि के लिये ग्रीष्म ऋतु में उर्द के भूसे को कटाई के बाद खेत में ही रहने देते हैं जिससे अगली फसल(गेहूँ) को लाभ पहुँचाने वाले पोषक तत्व मिलते हैं। इस पर यूरिया का छिड़काव करके वर्षा ऋतु में खेत को परती छोड़ देते हैं । रबी ऋतु में इस भूमि में गेहूँ की अच्छी उपज प्राप्त की जाती है।

शुष्क बुवाईः– महाराष्ट्र में अरहर की फसल की उत्पादकता में वृद्धि के लिए मानसून के 10–12 दिन पहले शुष्क मृदा में बुवाई कर दी जाती है। ऐसा करने से वर्षा होते ही बीजों का अंकुरण प्रारम्भ हो जाता हैं और कृषकों को सामान्य से आठ दस दिन पहले हुई बुवाई का लाभ मिलता हैं। साथ ही लगभग 10 प्रतिशत उपज में वृद्धि दर्ज होती है।

मिश्रित/अन्तः फसली खेतीः– भारत के विभिन्न हिस्सों में कृषक दलहनी फसलों से लाभ को सुनिश्चित करने के लिये दलहनी फसलों के साथ अन्य फसलों की मिश्रित अथवा अन्तः फसली खेती प्रचलित है।

दक्षिण भारत के कर्नाटक व तमिलनाडु राज्यों में बुवाई से पूर्व बीज के चयन हेतु एक अनोखी प्रथा का चलन है जिसमें किसान उगादी पर्व पर पाँच तरह के अनाज व नौ तरह के दलहनी फसलों के बीजों को सुपारी की छाल में रखी मिट्टी में बोया जाता है और नौ दिन बाद बीजों के जमाव के आधार पर खेतों में बुवाई के लिए फसलों का चयन करते हैं।

ISBN : 978-81-904444-4-6

इसी कडी में आन्ध्र प्रदेश के अनन्तपुर जिले में मूँगफली, अरहर बाजरा व अरण्डी की मिश्रित खेती की जाती हैं। इसका कारण है कि अरण्डी की फसल स्पोडोप्टेरा को रोकने का कार्य करती है, ज्वार/बाजरा राक्षक फसल का कार्य करते हैं जबकी अरहर की बढवार शुरूआती दौर में धीमी होती है अतः वह मूँगफली की फसल के लिये रूकावट नहीं बनती। इसी आधार पर अच्छे जमाव वाली दलहनी फसलों को चयनित कर बोया जाता हैं। रबी ऋतु में मक्का और अरहर की अन्तः फसली खेती की जाती है क्योंकि मक्का एक लघु अवधि की फसल है जो 100 दिनों के अन्दर कट जाती है वहीं अरहर एक दीर्घ अवधि की फसल होने के कारण संसाधनों का बेहतर व भरपूर उपयोग करती है। उत्तराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र में 'बारानाज' नामक एक प्रथा में किसान बारह फसलों के बीजों को मिलाकर छिटकवाँ विधि द्वारा खेतों में बुवाई की जाती है। इस समूह में विभिन्न दलहनी फसलों के साथ शाकभाजी व अनाजी फसलों के बीजों को शामिल किया जाता है।

मध्य भारत में महाराष्ट्र राज्य के जनजातीय कृषक, मूँगफली– मक्का –ज्वार–अरहर, मूँग/उर्द –ज्वार/मक्का की मिश्रित खेती करते हैं। साथ ही साथ महाराष्ट्र राज्य में जनजातीय कृषक मिट्टी की विभिन्न गहराइयों में स्थित पोषक तत्वों के फसलों द्वारा भरपूर उपयोग को सुनिश्चित करने के लिये अरहर, धान, ज्वार और तिल की मिश्रित खेती भी करते हैं। इन फसलों की जड़ों की लम्बाई व जड़तन्त्र के साथ परिपक्वता समय भी अलग–अलग है। मध्य प्रदेश के ही डिडौरी जिले व उत्तर प्रदेश के बुंदेलखण्ड क्षेत्र में कृषक अरहर– धान की सहफसली खेती प्रचलित है जिसके तहत धान की ऊँची प्रजाति का चुनाव किया जाता है और अरहर को खेतों के बन्धों पर बोया जाता है ।

उत्तरी भारत के हिमाचल प्रदेश में रबी ऋतु में गेंहूँ, लौकी, सरसों, चना तथा मटर की मिश्रित खेती की जाती है जो कि खाध विविधता एंव मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने में लाभकारी सिद्ध होती है। इसी प्रकार शिमला के ऊपरी भागों में मक्का और राजमा के समान मात्रा मे बीज लेकर मिश्रित खेती की जाती है हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में गेंहूँ, सरसों, चना, मसूर की भी मिश्रित खेती की जाती हैं। इसी प्रकार उत्तरा खण्ड के गढवाल क्षेत्र में बारानाज प्रथा के अर्न्तगत दलहनी, शाकभाजी व अनाजी फसलों सहित बारह प्रकार के बीजो की बुवाई छिटकवाँ पद्धति द्वारा की जाती है। इस विधि द्वारा उच्चतम उत्पादन प्राप्त किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त सभी फसलों का परिपक्वता समय अलग अलग होने के कारण कटाई का समय भी अलग होता है जिससे मृदा की नमी लगातार खाध आपूर्ति बरकरार रखने में लाभकारी सिद्ध होता है।

पुश्प–पतन का प्रबंधनः– मध्य भारत में ननदरबार जिले में अरहर व चने की फसल में पुष्पों का झडना रोकने के लिये दस लीटर मठ्ठा, दस लीटर पानी, व एक किलो यूरिया के घोल का बीस दिन के अन्तराल पर दो से तीन बार छिड़काव किया जाता है।

पार्श्व भााखाओं की वृद्धिः– हरियाणा राज्य में पौधो की पार्श्व शाखाओं की अच्छी वानस्पतिक वृद्धि के लिये भेडों को खेतों में चरने के लिये छोड दिया जाता है जिससे पौधों की ऊँचाई रूक जाती है। इसी प्रकार मणीपुर में मटर की खुटाई की जाती है। चने की उत्पादकता बढ़ाने के लिये भी पौधों का घनत्व कम रखा जाता है। इसके लिए कृषक चने की खुटाई करते हैं।

दलहनी फसलों के परिप्रेक्ष में पारंपरिक तकनीकी ज्ञान का विशेष महत्व है। उपरोक्त पारंपरिक तकनीकी ज्ञान पर आधारित तकनीकियाँ कुछ बदलाव व स्थानीय संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर देश के विभिन्न हिस्सों में अपनायी जाती हैं। इन पारंपरिक तकनीकियों को वैज्ञानिक आधार पर शोध द्वारा प्रमाणिक बनाकर विस्तार देने की आवश्यकता है ताकि सम्पूर्ण कृषक समुदाय को पर्यायवरण हितैषी, सस्ती, प्रभावी, क्षेत्र अनुकूल तथा संसाधनों की उपलब्धता पर आधारित तकनीकियों की जानकारी मिल सके। पारंपरिक कृषि तकनीकियों को अपनाकर कृषक भारत में दलहन उत्पादन क्षमता को बल प्रदान कर सकता है।

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

19 दलहन उत्पादन तकनीक के नए आयाम

अतर सिंह, शंकर सिंह, एस.एन. यमूल एवं शान्तनु कुमार दुबे
भा.कृ.अनुप.–कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान कानपुर

मानव स्वास्थ में अच्छे एवं सन्तुलित भोजन का विशेष महत्व है। भोजन शाकाहारी एवं मांसाहारी के रूप में प्रचलित है। गरीब मध्यम वर्ग में आमतौर पर शाकाहारी भोजन की प्रधानता रहती है। शाकाहारी भोजन में दालें भोजन को संतुलित बनाने में बड़ी भूमिका निभाती हैं, कहावत है कि ''दाल रोटी खाओ प्रभु के गुण गाओ'' और ''सब बात खोटी सबसे श्रेष्ठ है दाल रोटी'' दालें भोजन को पोषक बनाती हैं प्रोटीन का मुख्य स्रोत दालें हैं। न्यूट्रीशियन विशेषज्ञ भोजन में दालों को शामिल करने की सलाह देते हैं। प्रायः दालों का मतलब फली से है परन्तु सोयाबीन एवं मूंगफली के दाने फली श्रेणी में आते हैं लेकिन इनमें वसा की मात्रा अधिक होने से इन्हें सामान्य तौर पर दालों की श्रेणी में नहीं रखा जाता।

दालों में फाइबर, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है जबकि वसा बिल्कुल नहीं होता इसीलिए भोजन थाली में दाल का स्थान सन्तुलित भोजन के रूप में जाना जाता है।



दालें किसे बहुत जरूरी हैं?–

1. जिनका वजन बहुत अधिक है।
2. जिन्हें मधुमेह की बीमारी है।
3. जिन्हें ब्लड कोलस्ट्राल का स्तर ज्यादा है।
4. जिन्हें सीलिएक बीमारी है।

दालों में रेसा अधिक होता है इसमें घुलनशील रेसा ब्लड कोलेस्ट्रोल के स्तर को कम करता है तथा अघुलनशील रेसा पाचन शक्ति को बढ़ाता है। दालें फोलेट का अच्छा स्रोत है इससे फर्टिलिटी बढ़ती है हार्ट अटैक में दालों में पाए जाने वाला होमोसिस्टाइन के स्तर को कम करता है। यह होमोसिस्टाइन का उच्च स्तर हृदय की धमनियों की अंदरूनी सतह को नष्ट कर देता है और खून के थक्के जमने और प्लाक बनाने का काम करता है जिससे रक्त संचार मस्तिष्क एवं हृदय कम हो जाता है जिससे हार्ट अटैक का खतरा बढ़ जाता है। दालें इलूटन मुक्त होती हैं इसलिए सीलिएक बीमारी से ग्रस्त लोगों को दालों के सेवन से लाभ मिलता है प्रतिदिन प्रति किग्रा. शारीरिक भार की दर से 3 से 2 ग्राम दाल भोजन में लेनी चाहिए। भार 60 किग्रा. शारीरिक वजन है तो 60–120 ग्राम प्रतिदिन भोजन में लेनी चाहिए। संतुलित भोजन में प्रतिदिन दाल अच्छी सेहत के लिए जरूरी है।

उ0प्र0 में प्रयोग की जाने वाली प्रमुख दालें–

मूंग, उर्द, अरहर, चना, मटर, मसूर, राजमा, प्रमुख दाल वाली फसलें उगाई जाती हैं तथा इनका प्रयोग सामान्यता भोजन में किया जाता है भोजन के अतिरिक्त दालें अपना स्थान कई मायनों में विशिष्ठ रखती हैं।

1. बाजार मूल्य अधिक है।
2. नमकीन उद्योग का प्रमुख कच्चा माल है।
3. खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ाती है।
4. वायुमंडल का नमजल संस्थापित करती हैं।

ISBN : 978-81-904444-4-6

5. भूसा एवं फसल अवशेष पशुओं के चारे एवं पैकिंग सामग्री में काम आता है जिससे लोगों के रोजगार के अवसर पैदा होते हैं।
6. सहफसली खेतों में उपयुक्त हैं।
7. लागत कम आती है।
8. कम पानी की चाहती हैं।
9. प्रोटीन का अच्छा स्रोत हैं।

देश में दालों की स्थिति–

हमारे देश में अधिकांश आबादी शाकाहारी है, मनुष्य के भोजन में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज, लवण, विटामिन संतुलित रूप में होना आवश्यक है। प्रोटीन का भोजन में महत्वपूर्ण स्थान है, प्रोटीन का मुख्य स्रोत दालें, अण्डा, दूध एवं मांस हैं। भारत जैसे देश में दालों में मूंग, उर्द, अरहर, चना, एवं मटर मसूर लेथाइरस, राजमा की खेती की जाती हैं। दालों प्रोटीन का प्रचुर स्रोत होने के साथ भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है। इनकी जड़ों में नत्रजन स्थरीकरण करने की अद्भुत क्षमता हैं जो वातावरण में उपलब्ध 79 प्रतिशत नाइट्रोजन को अपनी जड़ों में विद्यमान राइजोबियम नोड्यूल के माध्यम से स्वतंत्र नाइट्रोजन को वातावरण से प्राप्त कर भूमि को उपलब्ध कराती हैं। यह नोड्यूल एजोटोवेक्टर, वैक्टीरिया द्वारा नाइट्रोजन स्थरीकरण की क्रिया सम्पन्न होती हैं। दलहनी फसलों में अन्य फसलों की तुलना में लागत कम आती है। भूमि की रसायनिक, भौतिक एवं जैविक दशा में सुधार होता हैं। सभी दलहनी फसलें भूमि में नत्रजन छोड़ती हैं जिसका लाभ दूसरी बोई जाने वाली फसल को होता हैं। दाल वाली फसलों के अवशेष जानवरों के पौष्टिक चारे के रूप में प्रयोग होता हैं तथा दाल बनने के बाद चूनी जानवरों का पौष्टिक चारा तथा डंठल आदि पैकिंग सामग्री एवं अवशेष ईंधन के रूप में प्रयोग में आती है। इससे रोजगार के अवसर ग्रामीण क्षेत्र में सुलभ होते हैं।

> भारत में कुल दलहन का उत्पादन 17–18 मिलियन मैट्रिक टन हैं जबकि आवश्यकता 22–23 मिलियन मैट्रिक टन की हैं। 5–6 मिलियन मैट्रिक टन दालों का प्रतिवर्ष आयात किया जाता हैं, इससे करोड़ों रूपये की विदेशी मुद्रा खर्च की जाती हैं। भारत में प्रति व्यक्ति 42 ग्राम दाल प्रतिदिन की आवश्यकता हैं जबकि उपलब्धता मात्र 37 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन हैं।

वर्तमान परिदृश्य में देश में वर्ष 2015–16 में कुल दलहन उत्पादन 17–18 मिलियन टन हुआ जबकि आवश्यकता 22–23 मिलियन टन की हैं। आवश्यकता की पूर्ति हेतु 5–6 मिलियन टन दालों का प्रतिवर्ष आयात किया जाता है। (ग्लोबल पल्स सेनेरियों 2016) भारतीय भोजन में प्रति दिन प्रति व्यक्ति 42 ग्राम दाल की आवश्यकता हैं परन्तु उपलब्धता मात्र 37 ग्राम प्रतिदिन प्रति व्यक्ति हैं। दालों में प्रोटीन के साथ–साथ कार्बोहाइड्रेट, विटामिन–ए वसा रेसा फास्फोरस आयरन विटामिन सी तथा रिवोप्लेविन पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं।

देश में दलहन के आयात को कम करने तथा भोजन में संतुलित मात्रा में प्रोटीन की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा देश के सभी कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से समूहबद्ध प्रथम पंक्ति प्रदर्शन का आयोजन वर्ष 2014–15 में प्रारंभ किया गया। हुद–हुद 2014 खरीफ एवं बेमौसमी बरसात फरवरी अंत एवं मार्च के प्रथम सप्ताह (2015) में हुई वर्षा से दलहन की पैदावार में हुई अप्रत्याशित गिरावट 50–60 प्रतिशत फसल नष्ट होने से कुल दलहन पैदावार में 16 प्रतिशत तक गिरावट दर्ज की गई। इसी कमी को दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार ने दलहन उत्पादन को बढ़ाने की दिशा में समूहबद्ध प्रथम पंक्ति प्रदर्शन (राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन) के अन्तर्गत कार्यक्रम प्रारम्भ किया। इस कार्यक्रम में दालों के उत्पादन में स्थिरता लाने की दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा रही है।

दलहन उत्पादन तकनीकी– देश में दलहन की मांग एवं पूर्ति को ध्यान में रखकर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद नई दिल्ली की विशेष पहल से कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से समूहबद्ध दलहन प्रथम पंक्ति प्रदर्शन तथा दलहनी फसलों पर प्रक्षेत्र परीक्षणों के परिणाम उत्साहवर्धक प्राप्त हुए हैं जिससे दलहन उतपादन के प्रति विकसित तकनीकी का लाभ दलहन उत्पादकों को मिल सकेगा।

प्रक्षेत्र परीक्षण में तकनीकी का प्रभाव

उ0प्र0 के विभिन्न कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा दलहनी फसलों पर पक्षेत्र परीक्षण में प्रयुक्त तकनीकी प्रयोग की गई इन तकनीकी का कृषि विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों तथा कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग संस्थान जी.टी. रोड रावतपुर कानपुर द्वारा नियमित अनुश्रवण किया गया परिक्षणों के परिणाम उत्साह जनक देखे गये।

ISBN : 978-81-904444-4-6

सारिणी–1 प्रक्षेत्र परीक्षण का प्रभाव

क्र. सं.	फसल	तकनीकी		उपज (कु0 / हे0)	उपज बढ़ोत्तरी (कु0 / हे0)	शुद्ध आय (रू0 में)	लागत आय अनुपात
1.	मटर	आई.एन.एम.	बीज उपचार–राइजोवियम कल्चर 1 पैकेट 400 ग्राम / 10 किग्रा + 2 ग्राम अमोनियम मोल्विडेट प्रति 10 कि बीज	24.50	27.33	53400	3.66
2.	उर्द	आई.एन.एम.	ना0फा0पो0 सल्फर जिंक बोरान 25:50:25:20, 25:1	13.4	34	41530	2.80
3.	चना	आई.एन.एम.	जी.एन.जी. 1581+(20:40:30:प्रजाति 30) न.फा.पो. सल्पर + बोरान 25%, 15% घोल का 3 छिड़काव	15.63	44.32	48200	2.95
4.	उर्द	प्रजातिय, आई.एन.एम.	उत्तरा + एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन	7.03	52.08	21.787	1.75
5.	उर्द	आई.पी.एम.	सफेद मक्खी का नियंत्रण डिफेन्थ्रोन 500 मिग्रा. / हे. 15 दिन के अन्तराल पर 2 छिड़काव	10.80	36.70		1.53
6.	अरहर	आई.पी.एम.	फली छेदक, वीटावेक्स 3 ग्रा. / कि.बीज+फेरोमोन टेप+एन.एस.के.ई. 5%+ एन.पी.वी. 350 एल ई	22.9	48.70	18791	6.54
7.	मसूर	आर.सी.टी.	हाईजेल एफ पी+2.5 किग्रा. / हे बुवाई के समय प्रयोग	18.20	15.20%	56850	3.78

2. प्रथम पंक्ति प्रदर्शन में दलहनी फसलों पर प्रभाव–

फसल	तकनीकी		प्रदर्शन उपज कु. / हे.	उपज में वृद्धि % में	शुद्ध आय (रू0 में)
उर्द	आई.सी.एम.	(अ) उर्द की पी.यू.–31 प्रजाति का प्रभाव (खरीफ)	9.75	21.87	29425
		(ब) उर्द की पी.यू.–31 प्रजाति का प्रभाव (जायद)	10.00	23.40	2600
		(स) पी.यू.31+फलीवेदक के नियंत्रण हेतु थायमेक्सोन का छिड़काव	13.20	14.80	41840
		(द) पी.यू–31 15 कि. / हे+2.5 कि. / हे. इमेजाथापर+गन्धक 25 कि. / हे. +इमेडा क्लोरोपिड 250 एमएल / हे+2.5ली / हे. क्यूनालफास का छिड़काव	14.01	91.92	48454
	आई.डी.एम.	(अ) पी .यू31, 15 कि. / हे.+ ट्राइडरमा 10.2 4 कि / हे. द्वारा बीज शोधन	10.2	17.24	50180
		(ब) इमिडाक्लोरोपिड 500 मिग्रा. / हे. छिड़काव	12	37.19	38900
	सुधरी किस्म	(स) शेखर–2	10.06	99	48800
		(द) पी.यू.–31	9.73	18.51	53558
चना	आई.सी.एम.	(अ) जी.एन.जी. 1581+बीजशोधन कार्बान्डाजिम 2 ग्रा / कि.+पी.एस.वी+5 ग्राम / कि. से उपचारित	16.95	42.67	53409
		(ब) उदय प्रजाति+पी.एस.वी.+सल्फर 5 कि. / हे.	18.00	25.25	60200
	आई.एन.एम.	(स) पूसा 362 प्रजाति संतुलित उर्वरक+कूड़ों में बुवाई	19.80	20	44670
		(द) पी.आर.:एस.जी.प्रजाति+संतुलित उर्वरक+कूड़ों में बुवाई	18.85	25.25	63400
		(य) पूसा 362 प्रजाति	22.60	31	61900
		(र) के.डब्लू.आर.–108 प्रजाति+बीज शोधन+पौधरक्षा उपाय	25.25	42.17	97000
मटर	प्रजातिय	(अ) के.पी.एम.आर.–400	24	20%	55000
		(ब) के.पी.एम.आर.–522	26	24	62000
		(स) प्रकाश	20.30	32.70	66195
		(द) रचना	18.40	46.03	46150
		(य) अमन	17.90	27.85	40000
		(र) के.पी.एम.आर. 400	22.45	41.2	84750
मूंग	आई.सी.एम.	(अ) आई.पी.एम 2–3+जैविक 250 कि. / हे.+माइकोराइजा 5 कि. +कोसाविट 6.25 कि. / हे.	7.84	48.48	12003
		(ब) आई.पी.एम.–2–3+5 कि. सल्फर + पी.एस.वी.+जैविक खाद 5 कु. / हे.	8.6	48.27	21450
		(स) आईपी.एम.2–3 (ग्रीष्म कालीन 2017)	10.80	27	35000
		(द) आई.पी.एम–2–3 20 कि. बीज +सल्फर 25 कि. / हे. +इमेजा थापर 2.5 यूनिट / हे. +12.5 कि. माइक्रोन्यूट्रेन्ट +इमेडाक्लोर 250 मिलि / हे.	9.73	47.42	27388

ISBN : 978-81-904444-4-6

मसूर	आई.सी.एम.	(अ) पी.एल–8 35 कि. बीज/हे. +कार्बान्डाजिम +मेन्कोजैव 1.250 कि./हे.	21.64	71.88	61170
		(ब) के.एल.एस.–218 +बीजशोधन +पौध संरक्षण उपाय	14.2	28.16	39400
	प्रजातिय	(स) आई.पी.एल 316 +कूड़ों में बुवाई	14.20	33.00	21050
		(द) फसल प्रबंध +पोषक तत्व प्रबंधन +प्रजाति उच्च उत्पादन क्षमता	24.50	39.20	79500
	खरसतवार नियंत्रण	(य) एच.यू.एल. 57 +पेन्डामिथिलीन 3.3 ली./हे.	16.50	28.90	23280
अरहर	आई.सी.एम.	(अ) अमर बीज +पी.एस.वी +माइकोराइजा+पालीमेदक नियंत्रण	19.7	20.86	67350
		(ब) एन.एन–1 + कूड़ों में बुवाई	15.40	20.80	40460
		(स) आई.वी.यू.–2–43 +राइजोबियम +सल्फर 2514/हे.+इमेजाथापर	8.87	30.6	15750
		(द) एन.ए–2 + वीटावेक्स +राइजोबियम कल्चर	20	44.9	88150
		(य) एन.ए–2 +मेड़ों पर बुवाई	20.50	45.4	90925
		(र) एन.डी.ए–2 + संतुलित उर्वरक	23.6	47.2	102090
		(ल) जी.एन.जी. 1581	17	39.34	60400

प्रक्षेत्र परीक्षण के परिणाम

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान कानपुर जोन–3 अन्तर्गत विभिन्न कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा दलहन समूहबद्ध प्रथम पंक्ति प्रदर्शन अन्तर्गत एवं प्रक्षेत्र परीक्षणों से प्राप्त परिणामों के आधार पर पाया गया कि प्रक्षेत्र परीक्षणों में मटर में एकीकृत पोषण तत्व प्रबंध तकनीकी में औसत उपज 24.50 कु0/है0 प्राप्त हुयी कुल लागत के साथ शुद्ध लाभ 53400/–रू0/है0 तथा परीक्षण में स्थानीय उपज की तुलना में 27.33ः बढ़ोत्तरी दर्ज की गई। इसी प्रकार उर्द में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन से 13.4 कु0/है0 उपज के साथ शुद्ध लाभ 41530/है0 तथा उपज बढ़ोत्तरी 34ः दर्ज की गई चना की फसल में 15.63 कु0 उपज/है0 के साथ शुद्ध लाभ 48200 रू0/है0 तथा उपज बढ़ोत्तरी 44.30ः दर्ज की गई अरहर की फसल में एकीकृत कीट प्रबंधन तकनीकी के परीक्षण परीणाम में 22. 90कु0/है0 उपज के साथ शुद्ध लाभ 187916/है0 तथा उपज बढ़ोत्तरी 48.70ः दर्ज की गई। मसूर फसल में आर.सी. टी. तकनीकी एवं हाइड्रोजेल के प्रयोग से परीक्षण परिणाम 18.20 कु0/है0 उपज एवं उपज बढ़ोत्तरी 15.20ः तथा शुद्ध आय 56850/रू0/है0 दर्ज की गई है।

समूहबद्ध प्रथमपंक्ति प्रदर्शन दलहन के प्रभाव का विश्लेषण

खरीफ उर्द–पी.यू.–31 से 9.75 कु0/है0 उपज के साथ शुद्ध लाभ रू 29425/है0 तथा उपज बढ़ोत्तरी 21.87ः दर्ज हुयी। वहीं जायद में उर्द उत्पादन 10.00कु0/है0 दर्ज किया गया उर्द की पी.यू.–31, प्रजाति के साथ समन्वित फसल प्रबंधन पोषक तत्व प्रबंधन में इमेजाथापर. गन्धक साथ में 'फली भेदक हेतु क्यूनालफास का स्प्रे करने पर 14.01 कु0/है0 उपज के साथ कुल शुद्ध लाभ 48454 रू0/है0 दर्ज किया गया। इसी प्रकार चने सर्वाधिक उपज 25.25 कु0/है0 के डब्लू.आर.–108 के साथ पौध रक्षा उपाय बीज शोधन आदि से प्राप्त हुयी तथा 97000/है0 शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ। प्रथम पंक्ति प्रदर्शन में मटर के अन्तर्गत सर्वाधिक 22.45 कु0/है0 उपज के साथ शुद्ध लाभ 84750 रू0/है0 के.पी.एम.आर. –400 प्रजाति से दर्ज की गई।

मूंग की आई.पी.एम.–2–3 प्रजाति से समूहबद्ध प्रथमपंक्ति प्रदर्शन में सर्वाधिक 10.80 कु0/है0 उपज दर्ज की गई। यह उत्पादन ग्रीष्म कालीन फसल से प्राप्त हुआ मसूर फसल के प्रदर्शन से सर्वाधिक उत्पादन 24.50 कु0/है0 दर्ज की गई। पोषण तत्व प्रबंधन एवं फसल प्रबंधन की विधियों को अपनाया गया आई.पी.एल. – 316 प्रजाति पर प्रदर्शन लगाने में उपज प्राप्त हुयी। तथा शुद्ध आय 79500/है0 प्राप्त हुयी।

अरहर की एन.ए.–2 प्रजाति के साथ माइकोराइजा फली छेदक नियंत्रण खरपतवार नियंत्रण के सर्वाधिक उपज 20.50 कु0/है0 दर्ज की गई तथा शुद्ध लाभ 90225रू0/है0 दर्ज की गई।

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

20 ग्रीष्मकालीन मूँगफली की खेतीः एक अभिनव प्रयोग

[1]शंकर सिंह, [2]विकास रंजन चौधरी, [2]जगदीश मिश्रा एवं [2]एस.के. पाण्डेय
[1](भा.कृ.अनुप.–अटारी कानपुर), ([2]कृषि विज्ञान केन्द्र मैनपुरी)

उत्तर प्रदेश में वर्षाकालीन मूँगफली की खेती वर्ष 1981–82 में 2.62 लाख हे0 क्षेत्रफल पर की जाती थी जिससे 2.54 लाख मैट्रिक टन उत्पादन मिलता था तथा उत्पादकता 6.71 कु0/हे0 प्राप्त होती थी। परन्तु तकनीक प्रसार एवं रोग व कीटों के उचित प्रबन्धन के अभाव में मूँगफली के क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता में निरन्तर गिरावट आती गयी और वर्ष 2003–04 में यह क्षेत्रफल 0.63 लाख हे0, उत्पादन 0.60 लाख मैट्रिक टन तथा उत्पादकता 6.36 कु0/हे0 रह गयी। जिन क्षेत्रों में वर्षाकालीन मूँगफली मुख्य फसल के रूप में होती थी अब उन क्षेत्रों में कृषक इसकी खेती करने से हतोत्साहित होने लगे और मूँगफली की जगह धान, मक्का तथा बाजरा की खेती करने लगे थे। मूँगफली के उत्पादन को बढ़ाने के लिए अन्तराष्ट्रीय अर्द्ध–शुष्क ऊष्ण कटिबंधीय फसल अनुसंधान संस्थान (ICRISAT) हैदाराबाद से प्राप्त ग्रीष्मकालीन प्रजातियों के बीज का परीक्षण मैनपुरी फार्म में वैज्ञानिकों द्वारा जायद में किया गया जिसमें डी.एच. 86, अवतार टी.जी. 37 एवं आई0सी0जी0वी0–93468 प्रजातियां 90–100 दिन में पककर 20–30 कु0/है0 उत्पादन क्षमता वाली पाई गई थी। परीक्षण उपरान्त ग्रीष्मकालीन मूँगफली की खेती के उत्पादन तकनीकी का प्रसार कृषि विज्ञान केन्द्र, मैनपुरी द्वारा प्रारम्भ किया गया। जनपद में रबी फसलों जैसे मटर, सब्जी मटर, सरसों, आलू आदि के बाद किसान अपने खेत गर्मी में खाली छोड़ देते थे अथवा पछेती गेहूँ व अपनी घरेलू आवश्यकतानुसार थोड़े क्षेत्रफल में सब्जी आदि करते थे जिससे कोई विशेष उत्पादन व लाभ नहीं हो पाता था ऐसे क्षेत्रों का प्रतिस्थापन ग्रीष्म कालीन मूँगफली द्वारा हुआ।



सर्वप्रथम जेड0ए0आर0एस0 कृषि विज्ञान केन्द्र मैनपुरी द्वारा वर्ष 2001 में ग्रीष्म ऋतु में मैनपुरी जनपद के ग्राम राजपुरा के 10 कृषकों के 2 हे0 क्षेत्र में ग्रीष्म कालीन मूँगफली की खेती कराई गयी जिससे 27.8 कु0/हे0 औसत उत्पादकता प्राप्त करते हुये कुल उत्पादन 55.60 कु0 प्राप्त हुआ। यह उत्पादन 10 कृषकों के खेतों में 25–32 कु0 प्रति हे0 की दर से प्राप्त हुआ था।

वर्ष 2002 में कृषि विज्ञान केन्द्र, मैनपुरी द्वारा कृषकों के खेतों पर 25 है0 क्षेत्र में ग्रीष्मकाली मूँगफली की खेती करायी गयी और 682.50 कु0 उत्पादन एवं 27.30 कु0/है0 उत्पादकता प्राप्त हुई। वर्ष 2003 में यह क्षेत्रफल बढ़कर 500 है0 हो गया तथा उत्पादकता विगत् वर्षों के लगभग बराबर रहते हुए कुल उत्पादन 13450 कु0 प्राप्त हुआ। इस प्रकार जायद में कृषकों के लिए ग्रीष्मकालीन मूँगफली एक वरदान साबित हुई जिसे देखकर पड़ोसी जनपदों के कृषक, कृषि विज्ञान केन्द्र, मैनपुरी के वैज्ञानिकों व किसानों से ग्रीष्मकालीन मूँगफली के बीज हेतु सम्पर्क करने लगे तथा मैनपुरी के किसानों से बीज ले जाने लगे। केन्द्र के वैज्ञानिकों द्वारा गर्मी में खाली पड़े खेतों को शत–प्रतिशत ग्रीष्मकालीन मूँगफली से आच्छादित करने हेतु सतत् प्रयास किया गया। केन्द्र द्वारा ग्रीष्मकालीन मूँगफली का क्षेत्रफल एवं उत्पादन में निरन्तर बढ़ोत्तरी हुई है जिनके आंकड़े निम्नवत् हैं–

ISBN : 978-81-904444-4-6

तालिका–1 : जनपद मैनपुरी में ग्रीष्मकालीन मूँगफली का वर्षवार क्षेत्र विस्तार, उत्पादन एवं उत्पादकता

वर्ष	क्षेत्रफल (हे0)	उत्पादन (कु0)	उत्पादकता (कु0/हे0)	स्थानीय दर	जायद में मूँगफली से प्राप्त कुल राजस्व
2001–05	9605	172890	18	2500	432225000
2006–10	15062	278647	18.5	3000	835941000
2011–15	22045	374765	17	3200	1199248000
2016–19	28000	392000	14.8	3000	1176000000
औसत	**18678**	**304575.5**	**17.08**	**2925**	**910853500**

(स्थानीय आंकड़ों के आधार पर)

तालिका–2 : उत्तर प्रदेश में खरीफ मूँगफली का वर्षवार क्षेत्र विस्तार, उत्पादन एवं उत्पादकता

वर्ष	क्षेत्रफल (हे0)	उत्पादन (कु0)	उत्पादकता (कु0/हे0)
2001–05	95298	784280	8.23
2006–10	90652	610930	6.74
2011–15	97939	845950	8.64
2016–19	101032	1004700	9.94

ग्रीष्मकालीन मूँगफली के उगाने से जिन क्षेत्रों की फसल सघनता 200 प्रतिशत रहती थी वह बढ़कर 300 प्रतिशत हो गई और मूँगफली (दो दाल वाली फसल) के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि हुई तथा टिकाऊ खेती को बढ़ावा मिला। अब जनपद मैनपुरी में ग्रीष्मकालीन मूँगफली के साथ निम्नलिखित फसल चक्र प्रचलित हो गये हैं–

मक्का–आलू–ग्रीष्मकालीन मूँगफली
मक्का/सब्जियाँ–सरसों–ग्रीष्मकालीन मूँगफली
मूँगफली–सब्जी–मटर–ग्रीष्मकालीन मूँगफली
मूँगफली–मटर–ग्रीष्मकालीन मूँगफली
मूँग/बाजरा/उर्द–सरसों/ग्रीष्मकालीन मूँगफली

इस प्रकार मैनपुरी में ग्रीष्मकालीन मूँगफली को अभूतपूर्व सफल कहानी के रूप में देखा जा सकता है और कृषि विज्ञान केन्द्र, मैनपुरी द्वारा किये गये इस अभिनव प्रयास को एक स्वर्णिम उदाहरण माना जा सकता है। जनपद में ग्रीष्मकालीन मूँगफली को यदि आर्थिक दृष्टि से जोड़कर देखा जाय तो वर्ष 2003 में लगभग 3 करोड़ रू0 (134500 कु0 मूँगफली को 2000–2500 रू0/कु0 की दर से बेचकर) से बढ़कर 2008 में लगभग 26.5 करोड़ रू0 (132600 कु0 मूँगफली को 2000–2500 रू0/कु0 की दर से बेचकर) हो गई है जिसका लाभ सीधे जनपद के किसानों को हुआ है। उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि ग्रीष्मकालीन मूँगफली 90–100 दिन की अवधि में तैयार होकर जनपद में सर्वाधिक फायदे की फसल साबित हुई है।

तालिका–3 : जायद में मूँगफली व अन्य फसलों की खेती में आवश्यक पोषक तत्व व सिंचाई प्रबंध का तुलनात्मक अध्ययन

फसलें	उर्वरक (किग्रा0/हे0)			सिंचाई सं
	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	
मूँगफली	20	30	45	4
मूंग/उर्द	20	60	–	2
मक्का	80	40	40	10
कद्दुवर्गीय फसलें	60	40	4	12
पछेती गेहूँ	100	60	40	4
अरबी	150	80	100	12

तालिका–4 : जायद में मूँगफली व अन्य फसलों का आय–व्यय एवं शुद्ध लाभ (रू0/हे0) का तुलनात्मक अध्ययन

फसलें	उत्पादन लागत	सकल आय	शुद्ध लाभ	सी:बी अनुपात
ग्रीष्मकालीन मूँगफली	22000	900000	68000	1:3.09
मूंग/उर्द	15000	600000	45000	1:3.00
मक्का	18000	600000	42000	1:2.33
कद्दुवर्गीय फसलें	15000	45000	30000	1:2.00
पछेती गेहूँ	16000	40000	24000	1:1.50

ISBN : 978-81-904444-4-6

ग्रीष्मकालीन मूँगफली के क्षेत्र विस्तार में अपनाये गये प्रसार गतिविधियाँ :

सहभागी बैलीडेसन परीक्षण

सहभागी प्रदर्शन एवं प्रक्षेत्र दिवस

सम्बन्धित प्रशिक्षण

जिला व क्षेत्र स्तरीय कृषक गोष्ठी

किसान विद्यालय व कृषक समूहों के माध्यम से प्रचार–प्रसार

मासिक गोष्ठी

मूँगफली महोत्सव व किसान मेला

मूँगफली वाले खेतों का कृषक समूहों द्वारा भ्रमण

सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन व वितरण

समाचार पत्रों व इलेक्ट्रानिक माध्यमों से प्रचार–प्रसार

कृषि वर्कशाप, कृषि प्रदर्शनी एवं कृषि विज्ञान केन्द्र सम्मेलन के माध्यम से प्रस्तुतीकरण

कृषकों का कृषि विज्ञान केन्द्र में भ्रमण, सुझाव एवं वैज्ञानिकों द्वारा मोबाइल/दूरभाष से कृषकों को सलाह

ग्रीष्मकालीन मूँगफली की उत्पादन तकनीकी :

भूमि : दोमट, बलुअर या हल्की दोमट आलू, मटर, सब्जी मटर तथा राई सरसों की कटाई के बाद वाली भूमि।

भूमि की तैयारी : एक गहरी एवं 2–3 देशी हल से जुताई।

प्रजातियाँ : आई0सी0जी0वी0–93468 एवं टी0जी0 37ए0, डीएच–86, अवतार

बीज दर : 95–100 किग्रा0 गिरी/हे0

बुवाई का समय : 5–15 मार्च

बीज शोधन : 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम या बीटावैक्स पावर या थायोफेनेट मिथाइल 1 ग्राम या 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर प्रति किलो बीज।

बीज उपचार : राइजोबियम कल्चर 1 पैकेट प्रति 10 किग्रा बीज

बुवाई विधि : कूड़ में (25 से 30 सेमी0 कूड़ एवं 10 सेमी0 पौध से पौध)

पोषक तत्व : 20:30:45:150 नत्रजन : फास्फोरस : पोटाश : जिप्सम बुवाई के समय तथा 150 किग्रा0 जिप्सम फूल एवं धागे (खूटियाँ) बनते समय प्रति हे0।

सिंचाई प्रबन्ध : बुवाई के 20, 35, 45, 55 एवं 75 दिनों पर सिंचाई करना चाहिए।

निराई–गुड़ाई : बुवाई के 15 से 35 दिन के बीच।

फसल सुरक्षा : दीमक से बचाने के लिये 3 से 4 ली0 क्लोरपाइरीफॉस (20ई.सी.) प्रति हे0 पलेवा सिंचाई के पानी के साथ खेत में प्रवाहित करना चाहिए।

खुदाई, सुखाई व भण्डारण : फसल की 90 से 95 दिनों की अवधि पूरी होने पर खुदाई कर लेना चाहिए तथा फलियों को छाया में सुखाकर 10 प्रतिशत नमी की अवस्था में भण्डारण करना चाहिए।

उपज : उपरोक्त बिन्दुओं को अपनाने पर उपज लगभग 25 से 32 कु0/हे0 प्राप्त होती है।

तालिका–5 : जनपद में ग्रीष्मकालीन मूंगफली का वर्षवार क्षेत्र विस्तार एवं आय

विवरण	2001–05	2006–10	2011–15	2016–19
क्षेत्रफल (हे0)	9605	90652	97939	28000
गाँव	120	345	420	475
उत्पादकों की संख्या	3200	6300	7420	8500
कुल उत्पादन (मी0टन)	172890	278647	374765	392000
सकल आय (लाख मी0)	4322.25	8359.41	11992.48	11760.00
औसत उपज (कु0/हे0)	18	18.5	17	14.8
सकल आय (रू0/हे0)	45000	55500	54400	42000
औसत शुद्ध आय (रू0/हे0)	23000	33500	32400	20000

प्रतिबिन्बन

- ग्रीष्मकालीन मूँगफली अपनाने से जनपद में फसल सघनता 200 प्रतिशत से 300 प्रतिशत हो गई है।
- सुनियोजित प्रसार व प्रबंधन से जनपद में ग्रीष्म मूँगफली का क्षेत्रफल बढ़ा है।
- अन्य फसलों की तुलना में इस फसल से शुद्ध लाभ अधिक प्राप्त हुआ है।
- आलू उगाने के बाद इस फसल के स्थान लेने से कृषकों को कम लागत में अधिक फायदा होने लगा है।
- कृषि विज्ञान केन्द्र के प्रयास से पड़ोसी जनपदों ग्रीष्मकालीन मूँगफली का विस्तार होने लगा है तथा कृषक बीज हेतु मैनपुरी जनपद से लगातार सम्पर्क करने लगा है।
- फलीदार फसल होने के कारण मृदा उर्वरता में भी सुधार हुआ है।
- परम्परागत जायद में मक्का की फसल का क्षेत्र मूँगफली/मूंग में परिवर्तित हुआ।
- मक्का की फसल लेने से भूजल स्तर में गिरावट तथा बाजार मूल्य में उतार चढ़ाव के कारण एवं जमीन से अधिक भागों में पोषक तत्वों का दोहन होने से उर्वरा शक्ति में कमी देखी गई।
- किसानों को प्रशिक्षण द्वारा प्रेरित कर मक्का के क्षेत्र को मूँगफली/मूँग में परिवर्तित हुआ।

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

21 सब्जियों के प्रमुख रोग एवं उनका समेकित प्रबन्धन

[1]भूपेन्द्र कुमार सिंह, [1]वी0 बी0 जायसवाल, [1]राजीव, [1]डी0पी0 सिंह एवं [2]शान्तनु कुमार दुबे
[1]चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर –208002
[2]भाकृअनुप–कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, कानपुर

मानव पोषण में सब्जियों का विशिष्ट स्थान है। विभिन्न प्रकार की सब्जियों यथा कंद, फली तथा पत्तेदार सब्जियाँ न केवल प्रमुख पोषक तत्वों की पूर्ति करती हैं साथ ही सूक्ष्म तत्वों जैसे विटामिन तथा खनिज तत्वों का भी महत्वपूर्ण स्रोत है। हरी सब्जियों में उपस्थित विशिष्ट रसायन मानव में रोगों से बचाव तथा शारीरिक स्वास्थ्य में मजबूती प्रदान करते हैं।

सब्जी उत्पादन में वर्तमान में भारत, चीन के उपरान्त विश्व का दूसरा सबसे बड़ा सब्जी उत्पादक राष्ट्र है। वर्ष 2016–17 में देश में लगभग 10290 हजार हैक्टेयर भूमि पर खेती कर 1,75 मिलियन टन सब्जियों का उत्पादन किया गया। भारतवर्ष में सब्जियों का प्रति हेक्टेयर उत्पादन 17.01 टन प्रति है0 है जो विश्व औसत 18.80 टन प्रति है0 से कम है।

देश में बढ़ती हुई जनसंख्या की पोषण तथा स्वास्थ्य सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु सब्जियों का उत्पादन तथा उत्पादकता को बढ़ाने की महती आवश्यकता है। सब्जी उत्पादन के क्षेत्र में किये गये शोध कार्यों द्वारा विभिन्न सब्जी फसलों की उच्च उपज देने वाली प्रजातियों तथा उत्पादन तकनीकी का विकास हुआ है परन्तु परन्तु देश में सब्जी–उत्पादन के क्षेत्र में आशातीत वृद्धि नहीं हो सकी है।

सब्जी उत्पादन की व्यापक क्षमता हासिल करने में अनेक कीट नाशीजीवों, बीमारियों, सूत्र–कृमियों तथा कुटकी के प्रकोप के कारण होने वाला उच्च आर्थिक नुकसान एक प्रमुख बाधा है। सघन खेती, बेमौसमी उत्पादन एवं वर्षभर पैदावर लेने से इसमें कीट एवं व्याधियों का प्रकोप भी तेजी से बढा है, जिसके कारण किसानों को आथिर्क नुकसान का सामना करना पड रहा है। सब्जियों में नाशीजीव प्रकोप के कारण 30–40 प्रतिशत तक पैदावार का नुकसान होता है जिससे प्रतिवर्ष करोड़ों रूपये की हानि होती है। नुकसान को कम करने और इन नाशीजीवों का नियंत्रण करने के उद्देश्य से किसान सामान्यतया रासायनिक दवाईयों का अंधाधुंध छिड़काव करते हैं जिससे रसायनों के अवशेष फसल उत्पादों पर बने रह जाते हैं व जिसके कारण पर्यावरण तथा स्वास्थ्य को अत्यधिक नुकसान होता है। एक अनुमान के अनुसार देश के कुल खेती योग्य क्षेत्रफल मे सब्जियों का कुल क्षेत्रफल लगभग 3% है जबकि कुल नाशीजीव रसायनों का 15% सब्जियों पर ही प्रयोग हो रहा है । जिसकी वजह से अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। इन कीटों एवं बीमारियों के नियंत्रण हेतु जीवनाशी रसायनों के अनियन्त्रित तथा अविवेकपूर्ण प्रयोग से मानव व पर्यावरण को गम्भीर खतरा उत्पन्न हो रहा है तथा कीटों एवं बीमारियों में इन रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो रही है। अतः इनके नियन्त्रण हेतु एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। अतः खेती के सुधरे तरीके अपनाकर तथा फसल को कीटों व बीमारियों से बचाकर अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। सब्जी फसलों में लगने वाले प्रमुख, रोग एवं उनका एकीकृत प्रबन्धन निम्नवत् है:–

टमाटर के प्रमुख रोग

आर्द्र–पतन

रोगकारक (पिथिएम एफेनिडर मेटम)

यह रोग एक भूमि जनित रोग है। जो पिथियम नामक फफूंद के द्वारा होता है। इसे पौध गलन रोग भी कहते हैं। नर्सरी में भूमि की सतह पर पौधों का कालर रिजन से अचानक गिरना और गलना इसका प्रमुख लक्षण है। इस बीमारी के कारण पौधे नर्सरी में ही अचाानक सूख जाते हैं और जो बच भी जाते है वह भी कुछ दिनों में सूखने लगते हैं।

अगेती झुलसा

रोगकारक–आल्टर नेरिया सोलेनाई

ISBN : 978-81-904444-4-6

यह एक फंफूद जनित रोग है जो कि आल्टरनेरिया नामक कवक से होता है। इस रोग के लक्षण सूखे मौसम में दिखाई पड़ते हैं। इस रोग के लक्षण निचली पत्तियों पर छोटे–छोटे, हल्के भूरे रंग के धब्बों के रूप में दिखाई पड़ते हैं, बाद में ये धब्बे ऊपर की पत्तियों पर भी फैलने लगते हैं। इन धब्बों में वलयाकार संरचनां बन जाती है। जिससे ये लक्षित बोर्ड जैसा दिखाई पड़ता है। अत्यधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ सूख जाती हैं तथा फल छोटे एवं कम संख्या में बनते हैं।

पिछेता झुलसा :

रोगकारक–फाइटोप्थोरा इन्फेस्टान

यह भी एक फंफूद जनित रोग है जो कि फाइटोप्थोरा इन्फेस्टान नामक फंफूद से होता है। यह बीमारी टमाटर में लगने वाली बीमारियों में सबसे ज्यादा घातक होती है। इस रोग से पौधे की पत्तियाँ, डन्ठल एवं फल प्रभावित होते हैं। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर छोटे–हल्के पीले रंग के अनियमित आकार के धब्बों के रूप में दिखाई पड़ते हैं। जो बाद में बहुत तेजी से पूरे पौधो पर फैल जाते हैं और आपस में मिल जाते है जिससे पूरा पौधा कुछ ही दिन में समाप्त हो जाता है। यह बीमारी आर्द्रता अधिक होने पर ज्यादा लगती है।

फल विगलन :

रोगकारक–फाइटोप्थोरा पेरासिटिका

यह रोग फाइटोप्थोरा नामक फफूंद के कारण होता है। टमाटर के फल पर हल्के पीले सकेन्द्र वलय धब्बें बनते है जो बाद में बडे होकर पूरे फल पर फैल जाते हैं। इसमें फल का छिलका नहीं गलता है लेकिन फल के भीतर तक गूदा बदरंग हो जाता है।

पर्ण–कुंचन :

रोगकारक–विषाणु

यह रोग टमाटर में एक विषाणु द्वारा होता है। इस रोग को सफेद मक्खी एक पौध से दूसरे पौधे तक फैलाती है। इस बीमारी में पौधों की पत्तियां छोटी, अन्दर की ओर मुडी हुई एवं एक गुच्छे में दिखाई देती है।

मूल–ग्रन्थि रोग :

रोगकारक–मेलोडागाइन जैवनिका

यह रोग एक सूत्रकृमि मेलॉइडोगाइन के कारण होता है। इसमें जड़ों में गाठें पड़ जाती हैं। रोगी पौधे बौने रह जाते हैं तथा कमजोर दिखाई पड़ते हैं।

बैंगन के प्रमुख रोग

फोमॉप्सिस अंगमारी तथा फल विगलन

रोगकारक–फोमोप्सिस बेक्सन

इस रोग के लक्षण पौधों में तीन रूपों में दिखायी पड़ते हैं–

(1) पौधशाला में आर्द्रपतन के रूप में (2) पौध लगाने के बाद खेत में अंगमारी (झुलसा) तथा (3) फल लगने के बाद फल सड़न के रूप में।

रोग की वृद्धि के लिए आर्द्र मौसम तथा 26° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। पत्तों पर अनियमित आकार का काला किनारा युक्त धूसर भूरा धब्बा दिखाई देता है। वृंत और तनों पर अंगमारी फैलता है और फलों पर छोटे धंसे हुए मटमैले दाग बनते हैं जो आपस में जुड़ कर विगलित क्षेत्र बनाते हैं।

जीवाणु उकठा रोग

रोगकारक–रेलेस्टोनिया सोलेनेरम

यह रोग बैंगन में एक जीवाणु द्वारा होता है। इस रोग में पौधों की पत्तियां अचानक मुरझाकर नीचे की ओर झुक जाती हैं तथा अन्त में पूरा पौधा सूख जाता है। संक्रमित पौधों के तनों तथा जड़ों को काटकर साफ पानी भरे हुए शीशे के गिलास में डालने पर थोड़ी देर में पौधे से सफेद भूरा लसदार रस निकालता है, जिससे पानी दूधिया हो जाता है।

छोटी पत्ती रोग:

रोगकारक–फाइटोप्लेस्मा

इस रोग का प्रमुख लक्षण पौधों की पत्तियों का छोटा हो जाना है। पत्तियों का डंठल इतना छोटा होता है कि पत्तियां तने से चिपकी हुई दिखाई देती हैं। संक्रमित पौधों की पत्तियां संकरी, मुलायम, चिकनी तथा पीले रंग की हो जाती हैं। नव विकसित पत्तियां और भी छोटी होती हैं। तने की अन्तरगांठें भी छोटी पड़ जाती हैं। अग्रस्थ कलिकाएं बड़ी हो जाती हैं लेकिन पौधों के पर्णवृन्त तथा पत्तियां छोटी ही बनी रहती हैं जिससे पौधा झाड़ी जैसा दिखाई देता है। ऐसे पौधों पर फलन बहुत कम होता है।

जड़गांठ सूत्रकृमि :

रोगकारक–मेलाइडोगाइन स्पोसीज

सर्वाधिक विशेष लक्षण पौधों की जड़ प्रणाली में गांठों या

ISBN : 978-81-904444-4-6

पुटियों का बनना है। ये पुटियां एकल या अनेक होती हैं सूत्रकृमि के प्रकोप से पौधों की बढ़वार रुक जाती है, पत्तियों का हरापन गायब हो जाता है और मुरझान के लक्षण दिखाई देते हैं। फलन भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। प्रभावित खेत पर पौधों के धब्बे जैसे दिखाई देते हैं।

मिर्च के प्रमुख रोग

श्यामवर्ण तथा फल विगलन(एन्थ्रेक्नोज और फ्रूटरॉट):

रोगकारक–कोलोट्रिकम केप्सीकाई

इस रोग का प्रमुख लक्षण पौधों की शाखाओं का उपरी भाग सूखना है और रोग ऊपर से नीचे की तरफ बढ़ता है। रोगी शाखाओं की पत्तियाँ गिरने लगती हैं। फलों के ऊपर रोग के लक्षण छोटे–छोटे, काले धंसे हुऐ और गोल धब्बों के रूप में दिखाई पड़ते हैं। फलों पर काली चित्ती दिखाई देते हैं।

मोजैक तथा पर्ण कुंचन (मोजैक एड लीफ कर्ल) :

रोगकारक–विषाणु

यह रोग मिर्च में एक विषाणु द्वारा होता है। इस रोग को सफेद मक्खी एक पौध से दूसरे पौधे तक फैलाती है। बेमिसियस टोबेकी से रोगग्रस्त पत्तियों पर छोटे–छोटे पीले रंग के चितकबरे धब्बे बनते हैं। पत्तियों का रंग पीला पड़ जाता है। हरा भाग छिछले गड्ढों का रूप ले लेता है, पत्तियों के किनारे नीचे झुक जाते हैं और कटे हुए से हो जाते हैं।

फ्यूजेरियम उकठा रोग :

रोगकारक–फ्यूजेरियम आक्सीपोरम एफ स्पीसीज केपसीसी

यह रोग अधिकांशतः खराब निकासी वाली मृदाओं में होता है पौधे के मुरझाने तथा पत्तियों के ऊपरी तरफ और अंदर की तरफ मुड़ने से फ्यूजेरियम मुरझान का पता चलता है। पत्तियां पीली होकर मर जाती हैं। सामान्यतः यह रोग खेत के नीचे वाले पानी रुकने वाले क्षेत्रों में दिखाई देता है और जल्दी ही सिंचाई के साथ पानी की नाली के साथ फैल जाता है। उपरोक्त समय तक जब भूमि के ऊपर लक्षण दिखाई देने लगते हैं तब तक पौधे की संवहनी प्रणाली विशेष रूप से निचले तने और जड़ें भी विरुपित होने लगते हैं।

आलू के प्रमुख रोग

1. अगेती झुलसा :

रोगकारक–आल्टर नेरिया सोलेनाई

यह एक फंफूद जनित रोग है जो कि आल्टर नेरिया सोलेनाई नामक कवक से होता है। इस रोग के लक्षण सूखे मौसम में दिखाई पड़ते हैं। इस रोग के लक्षण निचली पत्तियों पर छोटे–छोटे, हल्के भूरे रंग के धब्बों के रूप में दिखाई पड़ते हैं, बाद में ये धब्बे ऊपर की पत्तियों पर भी फैलने लगते हैं। इन धब्बों में वलयाकार संरचनां बन जाती है। जिससे ये लक्ष्य बोर्ड जैसा दिखाई पड़ता है। अत्यधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ सूख जाती हैं तथा कन्द छोटे एवं कम संख्या में बनते हैं।

(2) पिछेता झुलसा :

रोगकारक–फाइटोप्थरा इन्फेस्टान

यह भी एक फंफूद जनित रोग है जो कि फाइटोप्थरा इन्फेस्टान नामक फंफूद से होता है। यह बीमारी आलू में लगने वाली बीमारियों में सबसे ज्यादा घातक होती है। इस रोग से पौधे की पत्तियाँ, डन्ठल एवं कन्द प्रभावित होते हैं। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर छोटे–हल्के पीले रंग के अनियमित आकार के धब्बों के रूप में दिखाई पड़ते हैं। जो बाद में बहुत तेजी से पूरे पौधो पर फैल जाते हैं और आपस में मिल जाते है जिससे पूरा पौधा कुछ ही दिन में समाप्त हो जाता है। यह बीमारी आर्द्रता अधिक होने पर ज्यादा लगती है तथा प्रभावित पौधों से तीक्षण गंध भी आती है। यदि तापमान 10–25°C तथा आर्द्रता 80 प्रतिशत से अधिक है तो यह बीमारी तेजी से फैलती है तथा पूरी फसल एक सप्ताह में समाप्त हो जाती है।

(3) ब्लैक स्कर्फ या काली रूसी :

रोगकारक–राइजोक्टोनिया सोलेनाई

यह भी एक फंफूद जनित रोग है जो कि राइजोक्टोनिया सोलेनाई नामक फंफूद से होता है। इस रोग की दो अवस्थायें होती हैं।

(i) स्टेम कैंकर अवस्था

(ii) काली रूसी अवस्था

पहली अवस्था में जैसे ही ट्यूबर से कल्ले निकलते हैं वे मर जाते हैं और फसल का जमाव देर से होता है जिससे उपज में कमी आ जाती है।

दूसरी अवस्था जिसे काली रूसी अवस्था कहते हैं। इसमें कन्द की ऊपरी सतह पर काले रंग की पपड़ी जैसी संरचना बन जाती है। यह खुरदरी एवं उभरी हुई होती हैं, यह

ISBN : 978-81-904444-4-6

स्केलेरोशिया होती हैं तथा पानी से धोने पर भी अलग नही होती हैं। इससे कन्दों पर तो कोई प्रभाव नहीं पड़ता है परन्तु उनका बाजार मूल्य कम हो जाता है। मुख्य रूप से द्वितीय अवस्था ही अपने देश में दिखाई पड़ती है।

(4) कामन स्कैब :

रोगकारक–स्ट्रप्टोमाइस स्केबीज

यह भी एक भूमि एवं कन्द जनित रोग है जो कि स्ट्रप्टोमाइस स्केबीज से होता है। यह रोग मुख्य रूप से हल्की तथा कम जीवांश वाली भूमि में पाया जाता है। इस रोग में कन्दो के ऊपर खुरदरे धब्बे बनते हैं जो कि उभरे से दिखाई पड़ते हैं यह धब्बे लाल या भूरे रंग के होते हैं तथा इनका व्यास से 1 से 2 सेमी0 होता है। यह धब्बे बाद में बड़े होकर कन्द की सतह पर कड़े, गोल एवं अनियमित कार्क रूपी क्षेत्र बनाते हैं जिससे आलू में दरारें पड़ जाती हैं जिससे उनका बाजार मूल्य कम हो जाता है।

(5) भूरा विगलन एवं जीवाणु उकठा : यह एक जीवाणु जनित बीमारी है जो कि आलू की फसल में बहुतायत में पाई जाती है। इस रोग में पौधे छोटे रह जाते हैं तथा पत्तियाँ कांसे के रंग की हो जाती हैं तथा सूख जाती है। बाद में पूरा पौध सूख जाता है। कन्द में एक भूरे रंग की वलयाकार संरचना बन जाती है। अत्याधिक प्रकोप होने पर कन्द काले हो जाते हैं इनसे जीवाणु रस बाहर आने लगता है।

(6) पत्ती मोड़क विषाणु : यह एक विषाणु जनित रोग है इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियाँ मध्य शिराओं से ऊपर की ओर मुड़ जाती हैं। परन्तु मुख्य रूप से इसके लक्षण कन्दों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों के किनारे अन्दर की ओर मुड़ जाते हैं तथा पत्तियाँ पीली पड़ जाती है। ये पत्तियों का मुड़ना नीचे से शुरू होकर ऊपर तक जाता है तथा पत्तियॉ मोटी एवं भंगुर हो जाती हैं तथा छूने मात्र से ही पत्ती टूटने लगती है। पौधे के पोरियों के बीच की दूरी कम हो जाती है जिससे पौधा बौना रह जाता है। यह बीमारी पोटेटो लीफ रोल विषाणु से होती है तथा माहू (माइजस पेरीसेकी) द्वारा रोगी पौधे से स्वस्थ पौधे पर फैलाई जाती है।

(7) मौजेक रोग : यह भी एक वाइरस जनित रोग है। इस रोग के लक्षण पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं। इस रोग में पत्तियां चितकबरे रंग की हो जाती हैं तथा पत्ती की निचली सतह पर शिराओं से लगे उतक नष्ट हो जाते हैं। रोगी पौंधों की वृद्धि रूक जाती हैं तथा पत्ती व तना भंगुर हो जाते हैं। प्रभावित पौना बौना रह जाता है।

सब्जी मटर के प्रमुख रोग

प्रमुख रोगः–

चूर्णिल आसिता : यह एक फफूंद जनित रोग है। इस रोग का कारक एरीसाइफी पॉलीगोनी नामक कवक होता है। रोगी पौधों के सारे हरे भाग कवक के सफेद चूर्ण धूल से ढ़क जाते हैं। बाद में पूरा पौधा भूरा होकर सूख जाता है। जब वातावरण में आपेक्षित आर्द्रता अधिक बढ़ जाती है तथा बादलों वाला मौसम होता है तो इस रोग का प्रकोप अधिक तेजी से फैलता है।

रतुआ : यह भी एक कवक जनित रोग है जो कि यूरोमाइसीज फेवी नामक कवक से होता है। रोगी पौधों की पत्तियों, तनों, पर्ण वृंतों और फलियों पर पीले से नारंगी रंग के फफोले बनते हैं। बाद में इनका रंग भूरे से काला हो जाता है।

फ्यूजेरियम मुरझान_:यह रोग फ्यूजेरियम नामक कवक द्वारा फैलता है। निचले पत्ते पीले पड़ जाते हैं। रोगी पौधे का मुख्य शीर्ष झुक जाता है तथा निचले तने का संवहन बण्ड़ल पीला नारंगी या काला भूरा रंग का हो जाता है।यह कवक पौधों में पानी व खाद्य पदार्थों का संचरण रोक देता है, पौध की वृद्धि रुक जाती है और धीरे–धीरे पूरा पौधा सूख जाता है। इस रोग का मुख्य लक्षण पत्तियों का क्रमिक या आकस्मिक रूप से पीला पड़ना, मुरझाना और फिर सूख जाना है। इस रोग से ग्रसित पौधों की जड़ें तथा तना गहरे रंग के हो जाते हैं तथा जड़ से लेकर तने तक काले रंग की धारियाँ पाई जाती हैं। जलभराव वाले क्षेत्र में यह रोग अधिक लगता है।

मृदुरोमिल आसिता : रोग कारक कवक पेरोनोस्पोरा पीसी कवक द्वारा फैलता है। वृन्तों, तनों, पत्तों के ऊपर गोल या लम्बे भूरे या पीले धब्बे दिखाई देते हैं। ठण्ड और नम मौसम में पत्तियों के नीचे धूसर बैंगनी या सफेद रोयेंदार प्रवर्धन बनता है। पौधा बौना और विकृत आकार ले लेता है। फलियों पर अण्डाकार फीके हरे धब्बे बनते हैं। जो बाद में भूरा रंग ले लेते हैं।

समेकित प्रबन्धन :

- ❖ गर्मी की गहरी जुताई करने से उसमें मौजूद हानिकारक रोगों के रोगाणु नष्ट हो जाते हैं।
- ❖ रोगरोधी प्रजातियों व प्रमाणित बीज का चुनाव करना चाहिये।

ISBN : 978-81-904444-4-6

- पौधों से पौधों और लाइन से लाइन की वांच्छित दूरी ही रखें।
- फसल–चक्र के साथ–साथ जल–निकास की व्यवस्था करना चाहिये।
- परभक्षी व परजीवी को बाहर से लाकर खेत में छोड़ना चाहिये।
- खेतों में प्रकाश प्रंपच लगाकर कीड़ों को नष्ट करना चाहिये।
- चिड़ियों के बैठने के लिये बांस पर लकड़ियाँ बाँधकर खेत के बीच में लगाना चाहिये।
- रोग ग्रसित पौधों को नष्ट कर देना चाहिये।
- नर्सरी की स्थापना के लिए ऐसे स्थान का चयन करे जहॉ पर पानी का जमाव न होता हो इससे जड़ सडन जैसे कई रोगों से बचाव किया जा सकता है। इसके अलावा जमीन से 6 से 10 इंचं ऊंची क्यारी बनाकर नर्सरी की बुआई करनी चाहिये। नीम की खली की 50 ग्राम मात्रा (प्रति वर्ग मीटर) नर्सरी की बुआई से 15–20 दिन पहले मिटटी में मिला दें आधा मि॰मी॰ मोटी चादर से क्यारी को ढक कर रखने से भी भूमिजनित रोग से निदान मिलता है।
- नर्सरी को कापर आक्सीक्लोराइड 3 ग्राम प्रति लीटर की दर से पानी में घोलकर उपचारित करना चाहिए ।
- नर्सरी की बुआई से पहले प्रति वर्ग मीटर अनुसार ट्राइकोर्डमा हरजीनियम की 50 ग्राम मात्रा को 1 किग्रा सड़ी हुई गोबर की खाद में अच्छी प्रकार मिलाकर एक सप्ताह के लिये छोड़ देना चाहिये। बाद में इसे क्यारी में अच्छी प्रकार मिला दें।
- डैंपिंग आफॅ एवं जड़ गलन के नियंत्रण हेतू ट्राइकोडर्मा 1 प्रतिशत के साथ बीजोपचार (5 ग्रा प्रति किग्रा बीज की दर से), नर्सरी उपचार (400 वर्ग मी क्षेत्र का 250 ग्रा प्रति 50 लीटर पानी की दर से), पौध जड़ उपचार (1 प्रतिशत 15 मिनट तक) करें ओर आवशयकतानुसार कैप्टान 75 डब्लयुपी से 0.25 प्रतिशत की दर से मृदा उपचार करें।
- रोग प्रकट होने पर मैन्कोजेब (0.25%), रिडोमिल एम. जेड – 72 (3.0 ग्रम/लीटर पानी) या स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (5 ग्राम) + ब्लाइटॉक्स (20 ग्रा.) प्रति 10 लीटर पानी की दर से आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।
- पौधे की रोपाई से पूर्व ट्राइकोर्डमा हरजीनियम की 40 ग्राम मात्रा 10 लीटर पानी मे मिलाकर पौधो की जड़ो को दस मिनट के लिये घोल मे उपचारित करने के बाद ही पौधो की रोपाई करना चाहिये।
- अगेती एवं पछेती झुलसा के नियंत्रण हेतु मेन्कोजेब 75 डब्ल्युपी 1.5–2 किग्रा प्रति हे की दर से 750–1000 लीटर पानी के साथ सुरक्षात्मक छिड़काव करें और आवश्यकतानुसार एजोक्सीस्ट्रोबिन 23 प्रतिशत एससी का 500 मिली प्रति हे कि दर से 500 लीटर पानी के साथ प्रति हे की दर से 500 लीटर पानी के साथ मौसम और फसल अवस्थानुसार छिड़काव करें।
- अगेती एवं पछेती झुलसा के नियंत्रण हेतु सायमोक्सानिल 8 प्रतिशत + मेन्कोजेब 64 प्रतिशत डब्ल्यूपी 1.5 किग्रा या टयूबीकोनाजोल 50 प्रतिशत + ट्राइफलोक्साईट्रोबिन 25 प्रतिशत डब्ल्यूजी 350 ग्रा प्रति हे कि दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।
- बक अक्षु सड़न के प्रकोप को कम करने के लिए टमाटर के पौधों में डंडे लगाकर उनको सहारा दें और आवश्यकतानुसार मैन्कोजेब 75 डब्ल्युपी 1.5–2.0 किग्रा 750 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।
- बैक्टीरियल सूखा रोग के नियंत्रण हेतू पौध पर स्ट्रैप्टोसायक्लीन (40–100 पी पी एम) घोल का छिड़काव खेत में करें। फसल पर रोग का चिन्ह देखते ही स्ट्रेप्टोसायॅक्लीन (1 ग्राम/10 लीटर) या एग्रीमाइसीन–100 (0.6 ग्राम/लीटर) पानी के घोल का छिड़काव करना चाहिये।
- सफेद मक्खी आदि के लिए पीले चिपचिपे फंदे या डेल्टा फंदे 2–3 प्रति एकड़ की दर से लगाए।
- चूसक नाशीजीवों तथा पत्ती मोड़क कीट को नियंत्रित करने के लिए एक–एक सप्ताह के अन्तराल पर एनएसकेई 5 प्रतिशत के 2–3 छिड़काव करें। रस चूसने वाले कीटों के बचाव के लिये थायोमेथोक्साम (2 ग्रा./10 ली. पानी) अथवा डेल्टामेथ्रिन (1 मि.ली./ली. पानी) का प्रयोग करना चाहिये।
- छोटी पत्ती रोग से प्रभावित पौधों की छंटाई की जानी चाहिए।
- फल सड़न और डाई बैक के प्रबंधन हेतु मेन्कोजेब 75 डब्ल्यूपी अथवा प्रोपिनेब 70 डब्ल्यूपी का 1.5–2.0 किग्रा

ISBN : 978-81-904444-4-6

प्रति हे की दर से 750–1000 लीटर पानी के साथ या जिनेब 70 डब्ल्यूपी का 0.5 प्रतिशत की दर से सुरक्षात्मक छिडकाव व आवश्यकता आधारित डायफेनकोनाजोल 25 ईसीका 0.05 प्रतिशत अथवा मायक्लोब्युटानिल 10 डब्ल्यूपी का 0.04 प्रतिशत या केप्टान 70 प्रतिशत + हेक्साकोनाजोल 5 डब्ल्यूपी का 500–1000 ग्रा प्रति हे की दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

- ❖ चूर्णिल आसिता रोग का प्रकोप होने पर गंधक चूर्ण (25–30 कि.ग्रा./है.) का बुरकाव करें। सल्फेक्स (2.0 कि.ग्रा.), कैलिक्सिन (500 मि.ली.) या कैराथेन (600 मि. ली.) का 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्अर में छिड़काव करें। छिड़काव 12–15 दिनों पर 3 बार किया जा सकता है।
- ❖ चूर्णिल आसिता और फल सड़न के प्रबंधन के लिए आवश्यकता आधारित हेक्सकोनाजोल 2 एससी का 3 ली प्रति हे या टेब्युक्युनाजोल 25.9 प्रतिशत एम/एम ईसी का 500 मिली का 600–700 मिली प्रति हे की दर से 500–700 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।
- ❖ विभिन्न रोगों के लिए पी. फलोरोसेंस या ट्राइकोडर्मा (जैव नाशकनाशीजीव) का सामान्य रूप से छिड़काव किया जा सकता है।
- ❖ डाऊनी मिल्ड्यू व ब्लाईट से बचाव के लिए जिनेब 75 डब्ल्यूपी का 1.5–2.0 किग्रा प्रति हे की दर से 750–1000 लीटर पानी के साथ आवश्यकता आधारित छिडकाव करें।
- ❖ खड़ी फसल में रतुआ रोग का प्रकोप होने मैंकोजेब (2.5 कि.ग्रा.), या कैलेक्सिन (500 मि.ली.) 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर 10–12 दिनों के अन्तराल पर डालें।
- ❖ मृदुरोमिल आसिता रोग का प्रकोप होने पर मैन्कोजेब या रिडोमिल एम.जेड. 72 का छिड़काव 2.5 ग्राम/ली पानी की दर से 10–12 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।
- ❖ यदि भूमि में सूत्रकृमि (निमेटोड) अधिक संख्या में हो तो भूमि में कार्वोफ्यूरान 33 किग्रा0 प्रति हे0 का प्रयोग करें। खेत में सूत्रकृमि प्रबन्धन के लिये नीम की खली या लकड़ी का बुरादा 25 क्विंटल प्रति हे0 की दर से मिलाने से इस का प्रकोप कम होता हैं।
- ❖ कटाई के बाद सस्यावशेष को इकट्ठा करके जला दें।



***

ISBN : 978-81-904444-4-6

22

अदरक उगायें : अधिक लाभ कमायें

त्रिलोक नाथ राय, केदार नाथ राय, अजय कुमार एवं संजीव कुमार राय
कृषि विज्ञान केन्द्र (भा.कृ.अनु.प.–भा.स.अनु.सं., वाराणसी), सरगटिया, सेवरही, कुशीनगर, उ0 प्र0 – 274406
आचार्य नरेन्द्रदेव कृ. प्रो. वि. वि., कुमारगंज, फैजाबाद'

अदरक एक महत्वपूर्ण नगदी फसल है। भारत विश्व के अदरक उत्पादन में अग्रणी देशों में से एक हैं। अदरक का उपयोग मसाले के रूप में अचार, चटनी, दाल, सब्जी तथा अन्य ब्यन्जनों को रूचिकर तथा स्वादिष्ट बनाने में किया जाता है। अदरक से बना सोंठ मनुष्यों के साथ–साथ पशुओं के विभिन्न रोगों के इलाज में प्रयोग किया जाता है।

जलवायु और मिट्टी– अदरक गरम और नमी युक्त जलवायु में अच्छी तरह उगाया जाता है। इस फसल की सफल खेती के लिए बुआई से अंकुरण तक मध्यम वर्षा, वृद्धि तक अधिक वर्षा और कटाई से लगभग 1 महीना पहले शुष्क वातावरण अति आवश्यक है। इसकी खेती उत्तम जल निकास वाली जीवांश युक्त बलुई दोमट भूमि में उत्तम होती है। एक ही खेत में अदरक की फसल को लगातार नहीं बोना चाहिए।

प्रजातियां– भारत में अदरक की खेती विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय प्रजातियों जैसे मारन, कुरूप्पमपाडी, एरनाड, वायनाडु, हिमाचल और नदिया आदि, का उपयोग करते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्रों में नदिया एवं रियो–डीजनीरीओ बहुत लोकप्रिय कल्टिवर है। अदरक की उत्कृष्ट प्रजातियां और उनकी प्रमुख विशेषताएं तालिका 1 में दी गई है।

तालिका 1. अदरक की उन्नत प्रजातियां और उनके विशिष्ट गुण

क्र0 सं0	प्रजाति	औसत उपज (साफ) प्रतिशत	फसल अवधि (दिन)	सूखे प्राप्ति (प्रतिशत)	कडा रेशा (प्रतिशत)	ओलिओरीसिन (प्रतिशत)	एसनशियल आयेल (प्रतिशत)
01	आई आई एस आर वरदा	22.66	200	20.7	4.5	6.7	1.8
02	सुप्रभा	16.60	229	20.5	4.4	8.9	1.9
03	सुरूची	11.60	218	23.5	3.8	10.0	2.0
04	आई आइ एस आर महिमा	23.2	200	23.0	3.26	4.48	1.72
05	नादिया	28.55	200	22.6	3.9	5.4	1.4
06	रयो–दि–जनीरीओ	17.65	190	20.0	5.6	10.5	2.3
07	मारन	25.21	200	20.0	6.1	10.0	1.9
08	चीन	9.50	200	21.0	3.4	7.0	1.9

नदिया – यह अदरक की पश्चिम बंगाल में उगायी जाने वाली किस्म है। जिसकी खेती अदरक उगाये जाने वाले लगभग सभी क्षेत्रों में की जाती है। यह किस्म 240–250 क्विंटल प्रति हेक्टेअर उपज प्राप्त होती है। जिसके प्रकन्दों से 20.2 प्रतिशत तक सूखे अदरक (सोंठ) की प्राप्ति होती है। इस प्रजाति का उपयोग सोंठ तथा अर्क बनाने में किया जाता है। इसमें 5.4 प्रतिशत ओलियोरेजिन तथा 1.4 प्रतिशत सुगंधित तेल पाया जाता है।

रियो–डी–जेनीरो – ब्राजील देश की यह प्रजाति 230–250 क्विंटल तक उपज देती है। सुखे अदरक की मात्रा 18.6 प्रतिशत तथा इसमें रेशे की मात्रा कम (5.19 प्रतिशत) होती है। इस प्रजाति से 10.5 प्रतिशत ओलियोरेजिन तथा 2.3 प्रतिशत सुगंधित तेल मिलता है। अर्क निकालने के लिये यह सर्वोत्तम प्रजाति है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

तालिका 2. अदरक का स्थानीय कलटीवर्स/लैंड राइसेस–

कल्टिवर	औसत उपज (साफ) (ट/हे)	पक्वता (दिन)	सूखे प्राप्ति (प्रतिशत)	कडा रेशा (प्रतिशत)	टोलिओरीसिन (प्रतिशत)	एसनशियल आयेल (प्रतिशत)
चीन	9.50	200	21.0	3.4	7.0	1.9
असम	11.78	210	18.0	5.8	7.9	2.2
मारन	25.21	200	20.0	6.1	10.0	1.9
हिमाचल	7.27	200	22.1	3.8	5.3	0.5
नादिया	28.55	200	22.6	3.9	5.4	1.4
रयो–दि–जनीरीओ	17.65	190	20.0	5.6	10.5	2.3

खेती योग्य भूमि की तैयारी– गरमी से पहले वर्षा होने के बाद भूमि को चार या पांच बार अच्छी तरह जोतना चाहिए। लगभग एक मीटर चौड़ा 15 से.मी. मीटर ऊँचा और सुविधानुसार लम्बाई के बेड़ों को तैयार करते है। दो बेड़ों के बीच 50 से.मीटर दूरी होनी चाहिए। सिंचाई आधारित फसल के लिए 40 से.मीटर उठी हुई मेंढ बनाना चाहिए। सूत्रकृमियों के प्रकोप से बचाने के लिए पारदर्शी प्लास्टिक शीट को 40 दिनों तक बेड़ों पर फैला कर सौर्यीकरण करते है।

बुआई का समय– अदरक की बुआई का उत्तम समय मई महीने का प्रथम पखवाड़ा (मानसून से पहले वर्षा के समय) होता है। सिंचित दशा में फरवरी के मध्य या मार्च के प्रारम्भ में इसकी बुआई की जा सकती है।

बुआई– अदरक का बीज प्रकन्द होता है। अच्छी तरह परिरक्षित प्रकन्द को 2.5–5.0 से0मीटर लम्बाई के 20–25 ग्राम के एक या दो टुकड़े करके बीज बनाया जाता है। बीजों की दर खेती के लिये अपनाये तरीके के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में अलग होती है। केरल में बीजों दर 1500 से 1800 कि0ग्राम/हेक्टर है। अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में बीजों की दर 2000–2500 कि.ग्राम/हेक्टर है। बीज प्रकन्द को 30 मिनट तक 0.3प्रतिशत (3ग्राम/लिटर पानी) मैनकोजेब के साथ उपचार करके 3–4 घण्टे छायादार जगह में सुखाकर 20–25 से.मीटर की दूरी पर बोते है। पंक्तियों के बीच की दूरी 20–25 से.मीटर रखना चाहिए। बीज राइजोम के टुकड़ों को गढड्े में रखकर उसमें खाद (एफ वाइ एम) तथा मिट्टी डालकर जमीन के समान्तर करना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक– बुआई के समय 25–30 टन/हेक्टर की दर से अच्छी तरह अपघटित गोबर या कम्पोस्ट को बुआई के पहले बेड़ों के ऊपर बिखेर देना चाहिए या बुआई के समय गढ्ड़ों में डाल देना चाहिए। बुआई के समय 2 टन/हेक्टर नीम केक का उपयोग करने से राइजोम गलन रोग/सूत्रकृमियों का प्रभाव कम होता है जिससे उपज बढ़ जाती है।

अदरक के लिए संस्तुत उर्वरक की मात्रा 75 कि.ग्राम नाइट्रोजन, 50 कि.ग्राम पी2ओ2और 50 कि.ग्राम के2ओ/हेक्टर है। इन उर्वरकों को विघटित मात्रा में डालना चाहिए (तालिका 3)। प्रत्येक बार उर्वरक डालने के बाद उसके ऊपर मिट्टी डालना चाहिए। जिंक की कमी वाली मिट्टी में 6 कि.ग्राम जिंक/हेक्टर (30 कि.ग्राम जिंक सल्फेट/हेक्टर) डालने से अच्दी उपज प्राप्त होती है।

तालिका 3. अदरक की खेती के लिए उर्वरक डालने की सूची (प्रति हेक्टर)

उर्वरक	तट पर लगाना	40 दिनों के बाद	90 दिनों के बाद
नाइट्रोजन	–	37.5 कि.ग्राम	37.5 कि.ग्राम
फास्फोरस	50 कि.ग्राम	–	–
पोटास	2.5 कि.ग्राम	25 कि.ग्राम	25 कि.ग्राम
कम्पोस्ट/गोबर	25–30 टन	–	–
खली	2 टन	–	–

ISBN : 978-81-904444-4-6

झपनी– मिट्टी के बहाव को भारी वर्षा से बचाने के लिए बेड़ों के ऊपर हरे पत्तों/ओरगानिक अवशेषों से मलच बनाना चाहिए। इससे मिट्टी में कार्बनिक तत्तवों की मात्रा बढ़ जाती है और फसल काल के बाकी समय आर्द्रता बनी रहती है। बुआई से समय 10–12 टन/हेक्टर की दर से हरे पत्तों से मलचिंग करना चाहिए। बुआई से 40 और 90 दिनों के बाद घासपात निकालने और उर्वरक डालने के तुरन्त बाद 7.5टन/हेक्टर की दर से दोबरा मलचिंग करना चाहिए।

घासपात निकालना– उर्वरक डालने और मल्चिंग करने से पहले घासपात को निकाल देना चाहिए। घासपात को धनत्व के आधार पर 2–3 बार निकालना चाहिए। पानी के निकास के लिये नाली बनाना चाहिए। ताकि खेतों में पानी न जमा हो सके। बुआई से 40 और 90 दिनों के बाद घासपात निकालने तथा उर्वरकों के डालने के बाद यदि राइजोम दिखने लगे तो उसके ऊपर मिट्टी डालकर ढ़क देना चाहिए ताकि वह अच्छी तरह बृद्धि कर सकें।

मिश्रित फसल और फसल चक्र– अदरक को टेपियोक, रागी, पौडी, जिंजल्ली और तरकारियों आदि फसलों के साथ फसल चक्र के रूप में खेती कर सकते है। करनाटक में, रागी, लाल चना और अरंडी के साथ अदरक की मिश्रित खेती की जाती है। केरल और करनाटक में नारियल, सुपारी, कॉफी और संतरा के साथ अन्तः फसल के रूप में अदरक की खेती की जा सकती है। टमाटर, आलू, मिर्च, बैगन और मूंगफली आदि के साथ अदरक की खेती नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह पौध म्लानी रोग के कारण रालस्टोनिया सोलानसीरम के परपोषी होते है।

पौध सुरक्षा

रोग–

मृदु वगलन– मृदु विगलन अदरक का सबसे अधिक हानिकारक रोग है। जिसके फलस्वरूप रोबाधित सभी पौधे नष्ट हो जाते है। यह रोग पाइथीयम अफानिडरमाटम के द्वारा होता है। पी वेक्सान्स और पी. माइरीओटाइलम के द्वारा भी यह रोग होता है। दक्षिण पश्चिम मानसून के समय मिट्टी में नमी के कारण इसका प्रभाव अधिक होता है। इसका प्रभाव अग्रणी सर्वप्रथम आभासी तने के निचला भाग में होता है और फिर ऊपर की तरफ फैल जाता है। सवंमित तने का निचला भाग पानी को सोख कर प्रकन्द तक पहुँचता है जिससे यह रोग प्रकन्द में भी लग जाता है। बाद में यह रोग जड़ में भी लग जाता है। इसके बाह्य लक्षणों में पत्तियों के अग्र भाग में पीलापन आ जाता है और यह धीरे–धीरे पूरी पत्ती पर फैल जाता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पत्तें का मध्य भाग हरा रहता है, जबकि अगले भाग में पीलापन आ जाता है। यह पीलापन पौधे की सारी पत्तियों पर फैल जाता है। जिसके कारण पत्तियॉ सूख कर गिरने लगती है।

इस रोग को नियन्त्रण के लिये भण्डारण के समय तथा बुआई से पहले बीज प्रकन्द को 0.3 प्रतिशत मैनकोजेब से 30 मिनट तक उपचार करना चाहिए। खेत में पानी का निकास होना चाहिए। अगर खेत में पानी जमा हो रहा है तो इससे इस रोग की समस्या और बढ़ जाती है। पानी के निकास के लिये नाली बना कर पानी का निकास अच्छी तरह करना चाहिए। यह रोग सवंमित बीज द्वारा भी होता है। इसलिये रोग मुक्त प्रकन्द को ही बुआई के लिये उपयोग करना चाहिए। ट्राइकोडरमा हरजियानम के साथ नीम केक 1 कि.ग्राम/बेड की दर से डालने पर इस रोग को नियन्त्रित किया जा सकता है। रोग ग्रसित पौधे को निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए और उसके चारों तरफ 0.3प्रतिशत मैनकोजेब डालना चाहिए ताकि यह रोग और अधिक न फैंलें।

जीवाणु म्लानी– यह रोग रालस्टोनिया सोलानसीरम बयोवार–3 द्वरा दक्षिण पश्चिम मानसून के समय मिट्टी एवं बीज से उत्पन्न रोग है। इसके लक्षण सर्वप्रथम आभासी तने के निचले हिस्से पर दिखाई पड़ते है और यह ऊपर वाली पत्तियॉ भी पीली पड़ जाती है। रोग बाधित तने के संवहनी (वास्कुलर) तन्तु में गहरे रंग की लाइन पड़ जाती है और प्रकन्द को दबाने पर उस में से इध जैसे पदार्थ का स्राव होने लगता है। अन्त में प्रकन्द गल जाता है।

मृदु विगलन प्रबन्ध के लिए अपनाई विधियों को जीवाणु म्लानी के प्रबन्ध के लिए भी उपयोग कर सकते है। बुआई के लिए प्रकन्द को रोग मुक्त होना चाहिए। बुआई से पहले बीज 30 मीनट तक स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 200 पीपीएम में उपचार करके छायादार जगह में सुखा कर उपयोग करना चाहिए। इस रोग के बचाव के लिये 1प्रतिशत बोर्डो मिश्रण या 0. 2प्रतिशत कोप्पर ओक्सीक्लोराइड का बेडों पर छिड़काव करना चाहिए।

पर्ण चित्ती रोग– पर्ण चित्ती रोग फिलोस्टिक्टा जिजिबरी के द्वारा होता हे। यह रोग जुलाई से अक्तूबर के मध्य, पत्तों पर होता है। इस रोग की शुरूआत सूखे पानी के धब्बे के रूप

ISBN : 978-81-904444-4-6

में होती है जो बाद में सफेद धब्बे के रूप में हो जाता है। जिसकें चारों ओर गहरे भूरे रंग के किनारे होता है। यह धब्बा निरन्तर बढता रहता है। इस धब्बे पर पानी की बूँद पड़ने से यह रोग और प्रभावी हो जाता है। इस रोग का प्रभाव वृधि पर पड़ता है। इस रोग को पौधे नियन्त्रण करने के लिए 1प्रतिशत बोर्डो मिश्रण या मैनकोजेब 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

सूत्रकृमि– अदरक का हानि पहुँचाने वाले प्रमुख सूत्रकृमि जड़ गॉठ (मेलोयिडोगाइन स्पीसीस) बोरोयंग, (रेडीफोलस सीमिलस) तथा जड़ विक्षत सूत्रकृमि (प्राटाइलेन्कस स्पीसीस) आदि है। इसके बाह्य लक्षण में पत्तियॉ पीली पड़ जाती है, पौधा बौना रह जाता है, पौधा दूर्बल होकर सूख जाता है। इसके आन्तरिक लक्षण में जड़ में गॉठे बन जाती है, गहरे भूरे रंग या काले रंग की जड़ पर चित्ती पड़ जाती है तथा जड़ में विक्षति का निशान पड़ जाता है। सूत्रकृमियों की उपस्थिति में प्रकन्द गलन रोग बढ़ता है। इसको नियन्त्रण करने के लिए प्रकन्द को गरम पानी में (500 से.) 10 मिनट तक उपचार करते है। प्रतिरोधक क्षमता वाली प्रजातियॉ जैसे आईआईएसआर महिमा का उपयोग करना चाहिए। बुआई के समय बेडों पर पौकोनिया क्लामिडोस्पेरिया (20 ग्राम/बेड106बनिग्राम) का छिड़काव करना चाहिए।

कीट

तना बेधक– तना बेधक (कोनोगीथस पंक्टिफेरालिस) अदरक को हानि पहुँचाने वाला प्रमुख कीट है। इसका लार्वा तने को बेधकर उसकी आन्तरिक कोशों को खा लेता है। इसके द्वारा भेदित तने के छिद्र से फ्रास निकलता है। पौधे की ऊपरी भाग की पत्तियॉ पीली पड़ जाती है। इसका वयस्क मध्यम आकार का होता है जिसमें 20 मि0मीटर शलभ युक्त नारंगी पीले रंग के पंख होते है, जिस पर सूक्ष्म काले चित्ती के निशान होते है। इसका लार्वा हल्के भूरे रंग के होते है। इनका प्रभाव सितम्बर से अक्तूबर के बीच अधिक होता है।

तना बेधक को 21 दिनों के अन्तराल से जुलाई से अक्तूबर के मध्य 0.1 प्रतिशत मैलथियोन का छिड़काव करके नियंत्रण किया जा सकता है। जब कीट ग्रसित पौधे पर प्रत्यक्ष लक्षण दिखाई दें तभी छिड़काव करना ज्यादा प्रभावी होता है।

राइजोम भाल्क– राइजोम शल्क (अस्पिडियल्ला हरट्टी) खेत के अन्दर तथा भण्डारण में प्रकन्द को हानि पहुँचाते है। इसकी वयस्क मादा गोलाकार (लगभग 1 मि.मीटर) हल्के भूरे रंग की होती है। यह प्रकन्द का सार चूस लेते है। जिससे वह सूखकर मुरझा जाते है। जिसके कारण अंकुरण में समस्या आती है। इसकी रोकथाम के लि प्रकन्द को भण्डारण के समय और बुआई से पहले 0.075प्रतिशत क्विनालफोस से 20–30 मिनट तक उपचारित करते है। कीट ग्रसित प्रकन्द को भण्डारण न करके उसे नष्ट कर देना चाहिए।

लघु कीट– पत्ती लपेटक पर्ण वेल्लक के लार्वे (उदास पोस झोलस) के लार्वे पत्तों को भेदकर काटते है तथा उसको खा लेते हे। इसके वस्यक मध्यम आकार की तितली होती है। जिसके सफेद चित्ती युक्त भूरे काले रंग के पंख होते हैं और इसके लर्वे गहरे हरे रंग का होता है। अब इस कीट का प्रकोप अधिक हो तब कारबरिल (0.1प्रतिशत) या इायमेतोयट (0.05प्रतिशत) का छिड़काव करने से इनको नियन्त्रण किया जा सकता है।

जब बेधक मुख्यत नरम राइजोम जड़ और आभासी तने के निचले हिस्से को खा लेते है जिसके कारण पत्तियों में पीलापन आ जाता है और पौधा सूखने लगता है। इस कीट को नियंत्रण करने के लिए क्लोरी पाइरिफोस (0.075प्रतिशत) का मिट्टी में छिड़काव करते है।

जैविक उत्पादन

परिवर्तन– प्रमाणित जैविक उत्पादन के लिए फसलों को कम से कम 18 महीने जैविक प्रबन्धन के अधिन रखना चाहिए, जहॉ अदरक की दूसरी फसल को हम जैविक खेती के रूप में व्यय कर दे सकते है। अगर इस क्षेत्र के इतिहास के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है कि इस भूमि पर रसायनों का उपयोग नहीं किया गया है तो परिर्वतन काल को कम कर सकते है। यह जरूरी है कि पूरे फार्म में जैविक उत्पादन की विधि अपनाई गई है, लेकिन ज्यादा बड़े क्षेत्रों के लिए ऐसी योजना बनाए कि परिवर्तन योजना को कमानुसार करें।

अदरक की फसल को कृषि–बागवानी–सिलवी पद्वति का एक उत्तम घटक माना जाता है। जब अदरक नारियल, सुपारी, आम, ल्यूसियाना, रबड आदि के साथ खेती करते है। तब फार्म की अनुपयोगी वस्तुओं को पुनरू उपयोग कर सकते है। इसको हरी खाद्य फसलों के साथ इसकी खेती करते है। जिस से इस में शक्ति युक्त पोषक तत्व बनते है और कीटों या रोगों को नियन्त्रण करते हैं। जब मिश्रित

ISBN : 978-81-904444-4-6

फसलें की खेती कर रहे है, तब ये जरूरी है कि सारी फसलों का उत्पादन जैविक विधि के अनुसार होना चाहिए।

जैविक उत्पादन के खेत के आसपास के अजैविक खेतों से दूषित होने से बचाने के लिए उचित माध्यम अपनाना चाहिए जो फसलें अलग से बोई जा रही है, उनको जैविक फसलों की श्रेणी में नही रख सकते है। बहावदार जमीन में बराबर के खेतों से पानी और रसायनों के आगमन को रोकने के लिए पर्याप्त उपाय करना चाहिए। मिट्टी और पानी को पर्याप्त सुरक्षा देने के लिए सुरक्षित गढ्डे मेढ़ों के बीच–बीच में बनाते है। जिस से पानी का बहाव कम हो जाता है। निचली स्तर की भूमि में गहरे और बड़े बढ्डे खोद कर जल भराव से बचना चाहिए।

प्रबन्ध पद्धतियां– जैविक उत्पादन के लिए ऐसी परम्परागत प्रजातियों को अपनाते है जो स्थानीय मिट्टी और जलवायु की स्थिति में प्रतिरोधक या कीटों, सूत्रकृमियों और रोगों से बचाव करने में समर्थ होती है। क्योंकि जैविक पद्धति में कोई कृत्रिम रसायनिक उर्वरक, कीट नाशक या कवक नाशक का उपयोग नहीं करते है। इसलिए उर्वरकों की कमी को पूरा करने लिए फार्म की सारी फसलों के अवशेष हरी घास, हरी पत्तियॉ, गोबर, मुर्गी लीद आदि को कम्पोस्ट और वर्मी कम्पोस्ट में उपयोग करके मृदा की उर्वरकता उच्च स्तर तक बनाते है। एफ.वाई.एम.40 टन/हैक्टर और वर्मी कम्पोस्ट 5–10 टन/हेक्टर की दर से उपयोग करते है। मृदा परीक्षण के आधार पर फासफोरस और पोटैशियम की न्यूनतम पूर्ति को पर्याप्त मात्रा में चूना, राक फासफेट और राख डालकर पूरा करते है। सूक्ष्म तत्वों के अभाव में फसल की उत्पादकता प्रभावित होती है। मानकता सीमा या संगठनों के प्रमाण के आधार पर सूक्ष्म तत्वों के स्रोत खनिज/रसायनों को मृदा या पत्तियॉ उपयोग कर सकते है। इसके अतिरिक्त ओयल केक जैसे– नीम केक (2टन/हैक्टर), कम्पोस्ट किये कोयरपिथ (5टन/हेक्टर) और अजोस्पिरिल्लम का कल्चर्स और फोसफेट सोलुबिलाइसिंग जीवाणु उर्वरकता और उत्पादकता में वृद्धि करते हैं।

जैविक पद्वति की प्रमुख नीति के अनुसार कीटों और रोगों का प्रबन्धन जैव कीटनाशी, जैवनियन्त्रण एजेंट, फाइटोसेनेटी उपायों का उपयोग करते है। नीम गोल्ड या नीम तेल (0.5 प्रतिशत) 21 दिनों के अन्तराल पर जुलाई से अक्तूबर के बीच में छिड़कने से तना बेघक को नियन्त्रित किया जा सकता है।

स्वस्थ प्रकन्द का चयन, मृदा सौरीकरण, बीज उपचार और जैव नियन्त्रण एजेन्टों जैसे ट्राइकोडरमा प्स्यूडोमोनास को मिट्टी में उचित वाहक मीडिया जैसे कोयरपिथ कम्पोस्ट, सूखा हुआ गोबर या नीम का केक बुआई के समय तथा नियमित अन्तराल पर डालने से प्रकन्द गलन रोग रोका जा सकता है। अन्य रोगों को नियन्त्रण करने के लिए प्रति वर्ष 8कि.ग्राम/हेक्टर की दर से कोपर का छिड़काव करते है। जैव एजेन्टों जैसे पोकोनिया क्लामाइडोस्पोरिया के साथ नीम केक के डालने से सूत्रकृमियों को नियन्त्रण कर सकते है।

प्रमाणीकरण– जैविक खेती अन्तर्गत जैविक घटकों की आवश्यक गुणवत्ता को भौतिक और जैविक प्रक्रियाओं द्वारा बनाए रखते है। इन प्रक्रियाओं में उपयोग होने वाले सारे घटक और कारक प्रमाणित और कृषि आधारित उत्पाद होना चाहिए। अगर प्रमाणित और कृषि आधारित उत्पाद घटक पर्याप्त मात्रा और उच्च गुणवत्ता में उपलब्ध न हों तो प्रमाणित अजैविक सामग्रियों का उपयोग कर सकते है।

जैविक खेती में उत्पादन के उत्पादन की जैविक स्थित का विवरण लेबिल पर स्पष्ट अंकित करना चाहि। बिना सूचना लेबिल के जैविक और अजैविक उत्पादक एक साथ भण्डारण और ढुलाई नहीं करना चाहिए।

प्रमाणिकता और लैबलिंग एक स्वतन्त्र निकाय द्वारा करानी चाहिए जो उत्पादक की गुणवत्ता की पूर्णता जिम्मेदारी लें। भारत सरकार ने छोटे और सीमित उत्पादन करने वाले किसानों के लिए देसी प्रमाणित प्रणाली बनाई है। जिस के अन्तर्गत ऐपीडा और मसाला बोर्ड द्वारा गठित प्रमाणित एजेंसियों जो वैध जैविक प्रमाण पत्र जारी करती है। इन प्रमाणित एजेंसियों द्वारा निरीक्षकों की नियुक्ति की जाती है जो खेतों पर जा कर निरीक्षण करता और विवरण (अभिलेख) के रजिस्टर में लिख कर रखता है। इन अभिलेखें की आवश्यकता प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए होती है। विशेषकर जब परम्परागत और जैविक दोनों प्रकार की फसल की खेती करते हैं। भौगोलिक निकटता वाले एक ही वर्ग के लोग जो उत्पादन और प्रक्रिया को एक कम में करते है उनके लिए वर्ग प्रमाण पत्र कार्यक्रम भी उपलब्ध है।

कटाई– बुआई के आठ महीने बाद जब पत्ते पीले रंग के हो जाये और धीरे–धीरे सूखने लगे तब फसल कटाई के लिए तैयार हो जाती है। पौधों को सावधानी पूर्वक फावड़े या कुदाल की सहायता से उखाड़ कर प्रकन्द को जड़ और मिट्टी से अलग कर लेते है। अदरक का सब्जी के रू॰ में

ISBN : 978-81-904444-4-6

उपयोग करने के लिये उसे छठवें महीने में ही कटाई करके निकाल लेना चाहिए। प्रकन्द को अच्छी तरह धो कर सूर्य के प्रकाश में कम से कम एक दिन सुखा कर उपयोग करना चाहिए।

सूखा हुआ अदरक प्राप्त करने के लिए बुआई के आठ महीने बाद कटाई करते है। प्रकन्द को 6–7 घण्टे तक पानी में डुबों कर उसको अच्छी तरह साफ करते हैं। पानी से निकाल कर उसको बांस की लकड़ी (जिसका एक भाग नुकीला होता है) से बाहरी भाग को साफ करते हैं। ज्यादा साफ करने से तेलों के कोशों को, हानि पहुँचती है। अतः सावधानी पूर्वक साफ करना चाहिए। छिले हुए प्रकन्द को धोने के बाद एक सप्ताह तक सूर्य के प्रकाश में सुखा लेते है। अदरक की उपज प्रजाति और जगह पर आधारित होती है। जहॉ पर फसल उगाई जाती है।

नमकीला अदरक बनाने के लिए बुआई से 170–180 दिनों के बाद फसल की कटाई करते हैं यह अदरक दूसरों की अपेक्षा कम रेशे वाली होती है। नरम प्रकन्द को अच्छी तरह साफ करके 1प्रतिशत सिट्रिक एसिड तथा 30प्रतिशत तनमक के घोल में डुबाकर रख देते हैं। चौदह दिन बाद यह उपयोग के लिए तैयार हो जाता है। इसका भण्डारण ठण्डी जगह पर करना चाहिए।

भण्डारण– अच्छा बीज प्राप्त करने के लिए प्रकन्द को छायादार जगह पर बने गढ्ड़ों में भण्डारण करते है। जब फसल 6–8 महीने की हरी अवस्था में हो तो खेत में स्वस्थ पौधों का चयन कर लेते है। बीज राइजोम को 0.075प्रतिशत क्विनालफोस तथा 0.3प्रतिशत मैनकोजेब के घोल में 30 मिनट उपचार करके छायादार जगह में सुखा लेते हैं। बीज प्रकन्द को सुविधानुसार गढ्ड़े बनाकर भण्डारण करते है। इन गढ्डों की दीवारों को गोबर से लेप देते है। गढ्ड़ों में एक परत राइजोम फिर 2से.मीटर रेत/बुरादा की परत में रखते है। पर्याप्त वायु मिलने के लिए गढ्ड़ों के अन्दर पर्याप्त जगह छोड़ देते है। इन गढ्ड़ों को लकड़ी के तख्ते से ढक देते है। इन तख्तों को हवादार बनाने के लिए एक या दो छेद करते है। बीज प्रकन्द को लगभग 21 दिनों के अन्तराल पर देखना चाहिए। मुरझाये या रोग बाधित प्रकन्द को निकाल देना चाहिए। प्रकन्द को मैदान के छायादार जगह में भी गढ्ड़े बनाकर भण्डारण किया जा सकता है। किसान गलाइकोसमिस पेन्टाफाइला (पेनल) की पत्तियों का उपयोग अदरक के बीज प्रकन्द के भण्डारण के लिये करते है।



***

ISBN : 978-81-904444-4-6

23 लोबिया की उन्नत खेती

पुष्पेन्द्र सिंह दीक्षित, भूपेन्द्र कुमार सिंह एवं डी0पी0 सिंह
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर –208002

लोबिया एक महत्वपूर्ण सब्जी की फसल है लोबिया की खेती के लिए गर्म व अर्द्र जलवायु उपयुक्त है। लोबिया की खेती मैदानी क्षेत्रो में फरवरी से अक्टूबर तक सफलतापूर्वक की जाती है। दलहनी फसल होने के कारण यह वायु मण्डलीय नत्रजन भूमि में संचित करती है जिससे जमीन की उरर्वता बढती है। लोबिया प्रोटिन के लिए उत्तम फसल मानी जाती है तथा इसकी खेती सब्जी, चारे तथा हरी खाद्य के लिए की जाती है।

लेबिया की फसल में हरी सब्जियों की तुलना में प्रोटिन फासफोरस एवं कैलशियम की मात्रा अधिक होती है। इसमें पाई जाने वाली तत्वों प्रति 100 ग्राम हरी फली में नमी 84.5 ग्राम काबोहार्डेट 08 ग्राम प्रोटिन 4.3 ग्रम कैलशियम 80 ग्राम आदि। इसकी खेती मक्का, बाजरा या दलहनी फसलो के साथ सह–फसली खेती की जा सकती है।

- **भूमि एवं जलवायु**– इस खेती सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है। लेकिन अच्छी उपज के लिए उचित जल निकास युक्त बलूई दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है। इस पी0एच0– मान 5.5 से 6.5 उचित रहती है। इसकी खेती के लिए उचित तापमान 24 से 27 डिग्री सेन्टीग्रेट होना चाहिये, तथा इसके बीज अंकुरण के लिए अनुकूलतम तापमान 12 से 15 डिग्री सेन्टीग्रेट अच्छा माना जाता है।

- **भूमि की तैयारी**– लोबिया की खेती मुख्यतः बलुई दोमट मिट्टी में की जाती है। जिसमें समतल खेत तथा जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। खेत की तैयारी के लिए एक जुताई मिट्टी पलट वाले हल से तथा 2 से 3 जुताई कल्टीवेटर से करके पाटा लगा देना चाहिये, जिससे खेत में नमी बनी रहे तथा मिट्टी भुर–भरी हो जाये।

उन्नतशील किस्मे–

काशी कंचन– यह किस्म बौनी एवं गुच्छेदार (ऊचाई 50–60 सेन्टीमीटर) प्रकाश एवं तापक्रम के प्रति संवेदनशील व इसमें जल्दी फूलने (40–45 दिन) व जल्दी पकने (50–55 दिन) की क्षमता होती है। इसको गर्मी तथा वर्षा के मौसम में आसनी से उगाया जा सकता है। इसकी फली का आकार 30–35 सेन्टीमीटर लम्बा गहरा हरा, मुलायम लचीला होता है। हरी फली की उपज 150–175 कुन्तल प्रति हे0 और यह किस्म गोल्डेन मुजैक वायरस और सुयोडोसरकोस्पोरा कुसेन्टा के प्रति सहनशील है।

काशी उन्नती– यह किस्म प्रकाश एवं तापक्रम के प्रति संवेदनशील, बौनी व गुच्छेदार उच्चाई 40–45 सेन्टीमीटर, शाखाये 4–5 प्रति पौधा और गोल्डेन मुजैक वायरस के प्रति सहनशील है। इस उपज क्षमता 125–150 कुन्तल प्रति हे0 है।

पूसा दोफसली– यह किस्म बंसत, ग्रीष्म तथा वर्षा तीनो मौसमों के लिए उपयुक्त हैं। फली का रंग हल्का हरा एवं 18 सेन्टीमीटर लम्बा होता है। इसकी पकने की क्षमता 40 से 45 दिन है तथा इसकी उपज 70 से 80 कुन्तल प्रति हे0 होती है।

पूसा कोमल– यह किस्म बैक्टीरियल ब्लाईट प्रतिरोधी है। इस बसंत ग्रीष्म तथा वर्षा तीनों मौसम में लगाते है। फली का रंग हल्का रहा, मोटा गूदेदार 20 से 22 सेन्टीमीटर लम्बा होता है। इसकी उपज 100 से 120 कुन्तल प्रति हे0 होती है।

अन्य किस्में– काशी गौरी, काशी श्यामल, काशी सुधा, अर्का गरिमा इत्यादि।

बुवाई का समय– गर्मी मौसम की फसल के लिए फरवरी से मार्च में एवं वर्षा मौसम की फसल के लिए जून एवं जुलाई में बुवाई की जानी चाहिये। गर्मी की बुवाई समतल भूमि में कर सकते है। वर्षा ऋतु की फसल की बुवाई मेंढो पर 15 सेन्टीमीटर की ऊचाई पर पंक्तियों में करना चाहिये।

बीज दर– साधारणतयः 12 से 15 कि0ग्रा0 बीज प्रति हे0

ISBN : 978-81-904444-4-6

वर्षा ऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु के लिए 25–30 कि0ग्रा0 प्रति हे0 बीज की अवश्यकता होती है।

बीज उपचार– बुवाई के पहले 2 से 2.5 ग्राम कार्बेन्डाजिम या धीरम से प्रति किलो0 ग्राम बीज को शोधित करते है तथा राईजोबियम कल्चर से बीज को उपचारित करना चाहिये।

बुवाई की विधि– दाना एवं हरी फली के लिए बुवाई पंक्तियों में करनी चाहिए दाना वाली प्रजाती के लिए 4–5 सेन्टीमीटर तथा फलियों के लिए 30 सेन्टीमीटर लाइन से लाइन की दूरी एवं पौध से पौध की दूरी 20–25 सेन्टीमीटर रखनी चाहिए।

उर्वरक एवं खाद– गोबर एवं कम्पोस्ट की 25 टन मात्रा बुवाई के एक माह पूर्व खेत में डालना चाहिए। लोबिया एक दलहनी फसल है, इस लिए 25 कि0लो0 ग्राम फास्फोरस 25 कि0ग्रा0 तथा पोटाश 60 किलो0 ग्रम प्रति हे0 खेत में बुवाई के समय मिट्टी में देना चाहिए। भूमि एवं पौधो की अवश्यकतानुसार सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जिंक सल्फेट का प्रयोग भी करना चाहिए।

सिंचाई– बुवाई के बाद आवश्यकतानुसार एक हल्की सिचाई करना अंकुरण के लिए लाभदायक रहता है। गर्मी की मौसम में तापक्रम बढ़ने से प्रति सप्ताह के अन्तराल में सिचाई करते रहना चहिए।

खरपतवार नियंत्रण – इसमें बुवाई से लेकर फूल आने की अवस्था तक खेतो को खरपतवार मुक्त रखना चहिए। इसके लिए बुवाई के 20–25 दिन बाद निराई गुड़ाई कर देनी चाहिए। निराई करने से मिटट्ी में वायु संचार की बढ़ोतरी होती है। जो पौधों की विकास के लिए लाभदायक होता है।

प्रमुख रोग एवं नियंत्रण–

1. जीवाणु अंगमारी (जैनथोमोनास कैम्पेस्ट्रिस विग्नीकोला)– इस रोग से ग्रस्ति पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई पडते है। इसके नियंत्रण के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लीन दवा का 2 ग्राम प्रति ली0 पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

2. लोबिया मोजैक (मोजैक वायरस)– रोगी पत्तियॉ हल्की पीली हो जाती है। रोग की उग्र अवस्था में पत्तियें का आकार छोटा हो जाता है और उन पर फफोले जैसे उभार आ जाती है। रोगी फलियों के दाने सिकुडे हुए छोटे तथा कम बनते है। इसके नियंत्रण के लिए रोगी पौधो को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए या रोगार (डाइमेथोऐट) 1 मि0ली0 या डाइमेक्रान (फॉस्फेमिडान) कर 0.5 मि0ली0 प्रति ली0 पानी के हिसाब से गोल बनाकर 15 से 15 दिन तक के अन्तराल पर छिडकाव करना चाहिए।

3. एन्थ्रेकनाज– इस बीमारी से ग्रसित पौधें भी फलियों एवं पत्तियों के उपर काले–पीले रंग के धब्बे पड़ जाते है। प्रभावित पटियॉ सिकुड़ कर मर जाती है। वर्षा में इस रोग या अधिक प्रकोप होता है। इस रोग से रोगथाम के लिए कार्बेन्डाजिम दवा 2 ग्रम प्रति कि0ग्रा0 बीच में मिलाकर बीजो या शोधन कर लेना चाहिए। खड़ी फसल में मैकोजेन दवा 2 ग्रा0/ली0 पानी में मिलाकर 15 दिन के अन्तराल पर 2–3 बार छिडकाव करना चाहिए।

4. तना लांछन– इस रोग से ग्रस्ति पौधे के तने में मिट्टी के निकट वाले स्थान से बचाव हेतु बीज को कार्बेन्डजिम दवा 2 ग्र0 प्रति0 किलो0 ग्रम से उपचारित कर देना चाहिए।

लोबिया में लगने वाले प्रमुख कीट–

फली भेदक कीट (मुरिका टेस्टुलैलिस) – पौधे के परिपक्व होते समय इस कीट के लार्वा फूलो के कलियों एवं फली में छेद करके नुकसान पहुचाते है। इसके नियंत्रण के लिए 0.5 मि0ली0 फ्लूवेण्डमाइड (फेम) या कोराजेन प्रति ली0 पानी में घोलकर छिडकाव करना चाहिए।

माहूँ– यह छोटे रंग के कीट होते है। जो मुलायम पत्तियों, शाखाओं ,फूलो एवं फलो रस चूसते है जिससे पौधे कमजोर हो जाते है, तथा इनकी बढवार रूक जाती है। जिससे फलियों की उपज एवं गुणवत्ता दोनो में कमी आती है। इसके नियंत्रण के लिए डाइमेथोएट 30 ई0सी0 की 1.5 ली0 मात्रा 600 से 800 ली0 पानी घोलकर प्रति हे0 की दर से छिडकाव करना चाहिए।

- **तुडाई** – लोबिया की कच्ची फलियों की तुड़ाई नियमित रूप से 4 से 5 दिन के अन्तराल में करना चाहिए। झाडीदार प्रजातियों में 3 से 4 तुडाई तथा बेलदार प्रजातियों में 8 से 10 तुडाई की जा सकती है।
- **उपज**– हरी फली की झाडीदार प्रजातियों में उपज 60 से 70 कुन्तल प्रति हे0 तथा बेलदार प्रजातियों में 80 से 100 कुन्तल प्रति हे0 हो सकती है।
- **बीज उपज**– 5 से 6 कुन्तल प्रति हे0।

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

24 धनिया की वैज्ञानिक खेती एवं महत्व

[1]अक्षय जैन, एवं [2]नवीन कुमार शर्मा
[1]राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविधालय, ग्वालियर (म. प्र.) 474002
[2]कृषि विज्ञानं केंद्र कौशाम्बी (उत्तर प्रदेश)

धनिया मसालों वाली फसलों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके दानों में पाये जाने वाले वाष्पशील तेल के कारण यह भोज्य पदार्थों को स्वादिष्ट एवं सुगंधित बनाती है। भारत में इसकी खेती मुख्यतया राजस्थान, आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा कर्नाटक में की जाती है। भारत में इसकी खेती 622000 हेक्टेयर भूमि में की जाती है, जिससे लगभग 566000 टन उत्पादन होता है। (NHB 2017–18).

धनिया का पौष्टिक महत्व–

इसके दानों मे वाष्पशील तेल की मात्रा 0.1से 1 प्रतिशत तक पायी जाती है। वाष्पशील तेल में करीब 26 प्रतिशत हाइड्रोकार्बन व शेष आक्सीजन युक्त यौगिक होते हैं। जिनमें लीनोलिन व कोन्ड्रीयोल मुख्य है। धनियों के दानों व पत्तियों मे विटामिन ए प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। सुखे बीजों में 11.2: नमी, 14.1: एल्ब्यूमिनाड, 16.1: वसा, 21.5: कार्बोहाइड्रेट, 32.6: रेशे व 4.4: भस्म होती है। अतः वाष्पशील तेल निकालने के बाद अवशेष जानवरों को खिलाया जाता है। इन्हीं गुणों के कारण इसका अधिक महत्व होत है।

औद्योगिक महत्व–

पिसा धनिया करी पाउडर का मुख्य अंश है। इसको साबुत या पीसकर अचार, सास, मिठाईयों आदि खाद्य पदार्थों को सुगन्धित करने में काम में लेते है। दानों के वाष्पशील तेल को आसवन विधि से निकालकर सुगन्धित खाद्यय व खुशबुदार साबुन बनाने के काम में लेते है। यह तेल, चाकलेट, कैन्डी, सीलबन्द भोज्य पदार्थों, सूप व सलाद को स्वादिष्ट व आकर्षक बनाने के उपयोग में लिये जाते हैं।

धनिया का औषधीय महत्व–

मसालों के अतिरिक्त दवाओं के रुप में भी धनिये का उपयोग होता है। कई आयुर्वेदिक औषधियों के विशेषकर जो अपच, दस्त, पेचिस, जुकाम तथा मूत्र से संबन्धित रोगों में प्रयुक्त होती है, धनिये के बीज काम आते हैं। मूलतया धनिया मूत्र–वर्धक, पेट की वायुनाशक, बलवर्धक, उदरशूल नाशक व उत्तेजक है। उपरोक्त गुणों के कारण यह औषधि के रुप में प्रयुक्त हुआ है। एलोपैथिक दवाओं में भी धनिये के वाष्पशील तेल का उनकी बदबू को दबाने के लिये उपयोग होता है।

जलवायु एवं भूमि–

धनिया की फसल को उष्ण व मध्य जलवायु वाले क्षेत्रों में जहाँ तापमान अधिक न हो बर्फ का वितरण ठीक हो, सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। शुष्क व ठंडा मौसम अधिक उपज के लिये अनुकूल होती है।

धनिया की खेती के लिये बलुई या दोमट भूमि सर्वोतम होती है। जिसका पी.एच. मान 6–7.5 के मध्य हो इसकी खेती की जा सकती है।

भूमि की तैयारी–

एक–दो जुताई मिट्टी पलट हल या डिस्क हैरो तथा 3–4 जुताई कल्टीवेटर से करनी चाहिए तथा प्रत्येक जुताई पर पाटा लगाकर मिट्टी को भुरभुरा बनाकर समतल कर लेना चाहिए।

उन्नत किस्में–

1) एन. डी. कोर–2– यह प्रजाति नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.) द्वारा विकसित की गई है। यह प्रजाति पत्ती व दानों के लिये उगाया जाती है। बीज बड़े आकार के होते हैं, 145–150 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं। दाना गोल, सुडौल, बड़ा, तथा इसकी उपज 15–20 क्विंट्ल प्रति हेक्टेयर है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

2) पंत हरितमा– यह प्रजाति पत्ती व दानों के लिये उगाया जाती है। 130–135 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं दाना गोल, सुडौल, छोटा, इसकी उपज 15–20 क्विंट्ल प्रति हेक्टेयर है।

3) हिसार आनंद– मध्यम अवधि प्रजाति है तथा औसत उपज 14 क्विंट्ल प्रति हेक्टेयर है।

4) आर. सी. आर–41– तने की सूजन व उकठा रोग के प्रति प्रतिरोधी, दाना गोल, सुडौल, छोटा, उपज 12 क्विंट्ल प्रति हेक्टेयर है।

5) राजेन्द्र स्वाति– अधिक पैदावार, तना सूजन व फलमक्खी के प्रति मुक्त, 100 दिन में पककर तैया। उपज 12–14 क्विंट्ल प्रति हेक्टेयर है।

6) हिसार सुरभि– पाला के लिये सहनशील, माहू से कम प्रभावित, वाष्पशील तेल की मात्रा 0.42: है।

बुआई का समय–

धनिया की बुआई 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक की जाती है। धनिया की फसल के लिये दिन का उपयुक्त तापमान 20 डिग्री सेल्सियस से कम आते ही बुआई शुरू कर देनी चाहिए।

बीज की मात्रा–

10–15 किलोग्राम बीज के लिये तथा 15–20 किलोग्राम बीज पत्ती के लिये प्रति हेक्टेयर आवश्यकता पड़ती है।

बुआई की विधि एवं दूरी– इसकी दो विधियां प्रचलित हैं।

1) छिटकवां विधि – सुविधाजनक क्यारियां बनाकर, बीज को एक समान मात्रा में छिड़ककर मिट्टी की गहरी तह से ढक देते है।

2) पंक्ति विधि– अधिक उपज लेने के लिये पंक्तियों में बुआई करना लाभदायक रहता है। पंक्ति की दूरी 20–30 से. मी. तथा पौधे की आपस में दूरी 10–15 से.मी. तथा बीज की गहरायी 2–3 से.मी. होनी चाहिए।

बीज शोधन–

बोने से पहले बीज को पैरो से हल्का दबाकर दो भागों में कर लेना चाहिये। इसके बाद वाविस्टिन 1 ग्राम प्रति किलोग्राम या थाईरम 2 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से बीज शोधन करते हैं।

खाद व उर्वरक–

गोबर अथवा कम्पोस्ट की खाद 15–20 टन/है., 60 कि. ग्रा. नाइट्रोजन ,40 कि. ग्रा. फास्फोरस और 40 कि. ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से देने पर सबसे अच्छी उपज होती है। उक्त उर्वरकों मे नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के पूर्व आधार खुराक के रूप में तथा शेष नाइट्रोजन को दो भागों में बांटकर क्रमशरू 40–45 दिन पर पौधों की छ्टनी करने के बाद एवं दाना बनना शुरु होने के समय सिंचाई के साथ दें।

सिंचाई एवं जल निकास–

भूमि कि जलधारण शक्ति व मौसम के आधार पर अंकुरण के पश्चात 4–6 सिंचाई की आवश्यकता होती है।पौधे की बढवार, पुष्पण व दाना बनते समय भूमि में पर्याप्त नमी आवश्यक है।

खरपतवार नियंत्रण व अन्त सस्य क्रियाएं–

धनिया के पौधों की शुरु में बढवार धीमी होती है। अतः फसल में से खरपतवार शीघ्र ही निकाल देने चाहिए जिससे खरपतवार भी नष्ट हो जाये व भूमि की नमी भी सुरक्षित रहे। सिंचित फसल में दो निराई गुराई, पहली 30–35 दिन तथा दूसरी 45–60 दिन बाद करनी चाहिए।

कटाई–

हरी धनिया के लिये पौधों को बुआई की 30 दिन बाद कटायी शुरू कर देते हैं। बीज के फसल 120–130 दिन में तैयार हो जाती है। मुख्य छत्रकों में जैसे ही दाने पीले पड़ने लगे, फसल की कटाई कर देनी चाहिए। उसके बाद हल्की धूप में सुखाकर दाने अलग कर लेते हैं।

उपज एवं भंडारण–

एन. डी. कोर–2– यह प्रजाति पत्ती व दानों के लिये उगायी जाती है। इसकी उपज 15–20 क्विंट्ल प्रति हेक्टेयर है।

धनिया की बीज उत्पादन 10–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। वैज्ञानिक तरीके से व्यावसायिक स्तर पर की गयी खेती से 20 क्विंटल बीज प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

पुर्णतया सुखाई हुई धनिया के बीजों को साफ बोरियों में भर कर नमी रहित गोदामों में रखना चाहिए ।

ISBN : 978-81-904444-4-6

फसल संरक्षण–

बीमारी व रोकथाम– उकठा रोगरू यह रोग पौधों की जड़ में लगता है, जिससे पौधा सूख जाता है।

रोकथाम– बीज हमेशा रोग रहित फसल का होना चाहिए तथा बीज को एग्रोसन जी. एन. से 2 ग्राम प्रति किलोग्राम से उपचार करना चाहिए।

चूर्णिल आसिता रोग– रोग के प्रारम्भिक अवस्था में पौधों की पत्तियों व टहनियों पर सफेद चूर्ण नजर आता है। रोगी पौधे में बीज या तो बनते ही नहीं या बहुत छोटे बनते है।

रोकथाम– कैराथेन एल. सी. 500 मि. ली. दवा बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

तने की सूजन– इस बीमारी में पौधे के तने पर सूजन आ जाती है, जिससे पौधा नष्ट हो जाता है।

रोकथाम– रोगरोधी किस्मों की बुआई करनी चाहिए, जैसे आर. सी. आर.–41, पंत हरितमा आदि।

कीट एवं रोकथाम–

माहू, चौंपा धनियां की फसल में पौधों के कोमल अंगो का रस चूसते हैं, जिससे उपज में भारी कमी आ जाती है। मुख्यतः पुष्पण व बीज बनते समय माहू कीट का भारी आक्रमण होता है।

रोकथाम– 500–700 मि.ली. इण्डोसल्फान 35 ई. सी. प्रति हेक्टेयर की दर से पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।





***

ISBN : 978-81-904444-4-6

25 सूअर पालन सफलता की कहानी – किसान की जुबानी

सुरेश मलिक, आजाद सिंह पँवार एवं महेन्द्रपाल सिंह,
पूनम कश्यप, पी.सी. जाट, आशीष कुमार, प्रुष्टि, सुनील कुमार, निशा वर्मा तथा सुमित कुमार
भाकृअनुप–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ, उ.प्र. 250 110

सूअर पालन कम कीमत पर अधिक मुनाफा देने वाला लाभप्रद व्यवसाय है जिसे अपना कर सीमांत एवं लघु किसान अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं। सूअर पालन आयप्रद व्यवसाय है क्योंकि सूअर केवल मांस के लिए ही पाला जाता है। इसके पालने से यह लाभ है कि एक मादा सुअर एक बार में औसतन बारह बच्चे तक देने की क्षमता वाला एकमात्र जानवर है। सूअर का मांस प्रोटीन युक्त होता है जिसके कारण इसकी मांग अधिक होती है।

इसी दिशा में भाकृअनुप–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान द्वारा किसानों के लिए चल रही फार्मर फर्स्ट परियोजना के तहत सीमान्त और लघु किसानों को सूअरपालन करने के लिए प्रेरित किया तथा किसानों को लार्ज व्हाईट योर्कशायर प्रजाति का वितवरण किया। परियोजना के तहत वैज्ञानिक विधि से सूअर पालन तथा उसके प्रबंधन हेतु वैज्ञानिकों द्वारा प्रशिक्षण दिया गया। इसी कड़ी में इस परियोजना के अंतर्गत सूअर पालन पर सफलता गाथा प्रस्तुत है।

श्री लक्ष्मणराम पुत्र श्री फेरूमल को फार्मरफस्ट परियोजना के तहत वर्ष 2016–17 में चयनित किया गया था जिसमें 1 मादा एवं 1 नर सुअर दिये गये थे तथा संस्थान के वैज्ञानिकों के उचित तकनीकी ज्ञान एवं प्रबन्धन के द्वारा पालन पोषण किया जा रहा है। चयन करने के वर्ष श्री लक्ष्मणराम की वार्षिक आमदनी मजदूरी एवं अन्य संसाधनों द्वारा लगभग 18–20 हजार थी। इनके पासरहनेकेमकान के रूपमें एक कमरा कच्चा मिट्टी से बना तथा एक बहुत छोटा कमरा पक्की ईटों से बना हुआ है। इनका परिवार गरीबी से नीचे अपने परिवार का भरण पोषण करते है।

मजदूरी से सुअरपालन तक का सफर

श्री लक्ष्मणराम 2016 से पहले मुजफ्फरनगर में सफाई का कार्य एवं कृषि मजदूरी करते थे जिसमें उसकी घरेलु आवश्यकतायें भी बड़ी कठिनाइयों से पूरी हो पाती थी। वर्ष के कुछ महीने सफाई के कार्य से 1500–2000 रूप मासिक आमदनी एवं अन्य संसाधन के द्वारा प्राप्त आमदनी से घर का भरण पोषण ही कर पाते थे। जिसके कारण उसके घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी लेकिन जैसे ही श्भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान मोदीपुरमश के वैज्ञानिकोंने ग्रामीणों से चर्चा करने पर श्री लक्ष्मणराम का सूअरपालन हेतु चयन किया तथा मात्र 1 नर और 1 मादा लार्ज व्हाईट योर्कशायर से कार्य शुरू किया तथा आज वर्तमान में वह अच्छा सुअरपालक बन कर उभर रहा है।

वह तथा उसके पूर्वज पूर्व में भी सुअरपालन का कार्य करते थे किन्तु अव्यव स्थित प्रबन्धन एवं उन्नत प्रजाति के अभाव में मृत्युदर अधिक होने के कारण व्यवसाय का लाभ नहीं मिल तथा जिसके कारण सूअरपालन बंद कर दिया था। श्री लक्ष्मणराम के कठिन परिश्रम एवं उचित देख भाल तथा वैज्ञानिकों के निर्देशानुसार सुअरपालन करने पर यह पाया गया कि एक जोड़े से 1 वर्ष में 22 सुअर के बच्चे प्राप्त हुए। वार्षिक प्रथम ब्याँत के 7 बच्चे जिन का वजन 9 माह में लगभग 45–50 कि.ग्रा. था को विक्रय करने पर

ISBN : 978-81-904444-4-6

35000/–रू प्राप्त हुए तथा शेष सूअर श्री लक्ष्मणराम ने आगे पालन केलिए रख लिए । इस प्रकार लक्ष्मणराम के पास वर्तमानमें 5 नर एवं 5 मादा सुअर है शेष सुअरों को बेचने पर करीबन 40,000–45,000 रू की आय प्राप्त हुई।





सूअर पालक का ब्यौरा :

नाम	लक्ष्मणराम
पिता का नाम	श्री फेरू मल
आयु	35 वर्ष
शिक्षा	साक्षर (प्राइमरी)
भूमि	.02 है (बरानी)
पता	गाँव–सौंटा, जिला–मु. नगर



चित्र–1 लक्ष्मणराम के सूअरों का निरिक्षण करते वैज्ञानिकगण

***

ISBN : 978-81-904444-4-6

26 गर्भावस्था के दौरान पशु की देखभाल व प्रबंधन

[1]अनुज कुमार गौतम एवं [2]अनुराग त्रिपाठी
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, जालौन
[2]उदय प्रतापकालेज, वाराणसी



क्या गाय या भैंस गर्भवती होना चाहती है ?

लक्षण

- रंभाती हैं ।
- पूंछ उपर उठाती हैं ।
- बार–बार दूसरी गायों पर चढ़ती हैं।
- भागने का प्रयास करती हैं।
- योनि में हल्की सी सूजन आ जाती है।
- खाना कम खातीहैं और उनकी प्यास बढ़ जाती हैं।
- बेचैनी अनुभव करती हैं।
- बंधे स्थान का चक्कर काटती हैं।
- योनि से सफेद चमकीला पारदर्शी पदार्थ (तोरा) निकलने लगता है।
- बच्चेदानी का मुंह खुला रहता है अतः ऐसे समय उसके मैथुन की व्यवस्था करनी चाहिए।

विशेष– गाय तथा भैंस केवल 18 से 24 घंटे तक ही गर्मी में रहती हैं, अतः इस समय के बाद ही प्राकृतिक या कृतिम गर्भाधान कराने की व्यवस्था करानी चाहिए।

गर्भित पशु की पहचान

पशुओं में गर्भधारण के निम्न लक्षण मिलते हैं–

- गाय या भैंस का ऋतुमयी (गर्म) होना बंद हो जाता है।
- पशु शांत और सीधा स्वभाव का हो जाता है।
- थन और योनि (vulva) बढ़ने लगते हैं।
- पेट के आकार में धीरे धीरे वृद्धि होने लगती है।
- दूध गाढ़ा, कम और नमकीन स्वाद का होने लगता है।
- पशु हमेशा आराम करने का प्रयास करता है।
- पांच माह का गर्भ होने पर पशु के बैठे रहने पर गर्भाशय में बच्चे का हिलना डुलना देखा जा सकता है।
- गाभिन पशु सांडों को अपने पास नहीं आने देती है।
- वह पुनः ऋतुमयी (गर्मी) में नहीं आती है।
- यदि 3–4 महीने की गर्भवती गाय को कुछ समय तक भूखा रखा जाए और तत्पश्चात उसे ठंडा पानी पीने को दिया जाए तो पेट में बच्चे का हिलना डुलना स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है।
- यदि 4–5 महीने के गाभिन पशु के पेट के पास यदि कान लगाकर ध्यानपूर्वक आवाज सुनी जाए तो बच्चे के हृदय की धड़कन स्पष्ट सुनाई देती है। स्टैथोस्कोप नामक यंत्र के प्रयोग से तो इस धड़कन का सुनना और भी सरल हो जाता है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

- यदि गर्भ 7 महीने का हो जाय तो गाय का योनि द्वार कुछ फैला हुआ दिखाई पड़ता है।
- गर्भ के बढ़ने के साथ ही गाय की योनि के बीच स्थित कार्पस ल्यूटियम नामक भाग बढ़ने लगता है। अतः गाय की योनि में हाथ डालकर गाय के 2 महीने का गर्भ होने पर कार्पस ल्यूटियम का आकार देख कर गाय के गाभिन होने की बात निर्णयपूर्वक कही जा सकती है।

गर्भ परीक्षण

पशु गर्भवती है कि नहीं इसकी सटीक जानकारी के लिए कुछ रासायनिक परीक्षण हैं–

(1) एल्कोहल टेस्ट

इस टेस्ट में दूध + बराबर मात्रा में शुद्ध अल्कोहल (99प्रतिषत एथेनाल) मिलावे और इसे 15 मिनट से 3 घंटे तक रखें। यदि पशु गर्भवती है तो दूध जम जाता है और यदि गर्भवती नहीं है तो इस मिश्रण में कोई बदलाव नहीं आता है।

नोट– अगर पशु मैस्टाइटिस बीमारी से ग्रसित है तो भी दूध जम जाता हैं।

(2) कॉपर सल्फेट टेस्ट

इस टेस्ट में 0.5–1.5 मिली. दूध (गाभिन गाय का) +3 प्रतिशत कॉपर सल्फेट सोल्यूशन मिलावे और रखें यदि पशु गर्भवती है तो दूध जम जाता है और यदि गर्भवती नहीं है तो इस मिश्रण में कोई बदलाव नहीं आता है।

गर्भवती गाय या भैंस की देखभाल

गाभिन पशु की देखभाल अन्य पशुओं के अपेक्षा अधिक करनी पड़ती है। गाभिन होने के पश्चात एक गाय लगभग 9 महीने 9 दिन और भैंस 10 महीने 10 दिन में बच्चा देती है। अतः गाभिन होने का तारीख मालूम करना आवश्यक होता है। गाभिन होने से लेकर ब्याने आने तक पशु के प्रति जिन सावधानियों की आवश्यकता होती है वे इस प्रकार हैं–

- गाभिन पशु को शांत वातावरण में रखा जाए।
- गर्भवती पशु को अन्य पशुओं से लड़ने ना दें तथा अधिक दूर तक व तेजी से ना चलाएं।
- ब्याने से 10–15 दिन पहले से उसे अन्य पशुओं से अलग रखें।
- ब्याने की अनुमानित तिथि से 2 माह पूर्व से पशु का दूध लेना बंद कर देना चाहिए एवं उसके दाने में वृद्धि कर देनी चाहिए। यह वृद्धि दूध देते समय की आधी होनी चाहिए।
- गाभिन पशु के रहने का स्थान मुलायम पुआल आदि का तथा दुर्गंध व सीलन से रहित होना चाहिए।
- जिन पशुओं के ब्याने से पूर्व दूध उतर आता है उसे ब्याने से पहले नहीं दुहना चाहिए। इससे गाय या भैंस के ब्याने में विलंब होता है तथा ब्याते समय अधिक कष्ट होता है।
- ब्याने के बाद बछड़े की नाल को काट कर उस पर टिंकचर आयोडीन लगा दे।
- पशु को गुनगुने पानी से भीगे हुए कपड़े से साफ कर दे।
- पैदा हुए बच्चे के नथुने तथा मुँह आदि को साफ करके खीस (कोलस्ट्रम) पिलाना चाहिए।
- जेर (प्लेसेंटा) का स्वतः 2 से 4 घंटे के अंदर निकल जाता है। यदि 8 घंटे तक जेर ना निकले तो स्वतः निकलवाने का प्रयत्न करना चाहिए।
- पशु जेर ना खा ले इसका ध्यान रखना चाहिए। जेर को किसी गहरे गड्ढे में गाड़ देना चाहिए।
- पशुशाला (जहां पशु ने बच्चा दिया हो) कि सफाई फिनाइल के घोल से करें।
- जो पशु अधिक दूध देने वाले हो उनमें खीस (कोलस्ट्रम) एक बार में पूरी न निकाले बल्कि थोड़ा थोड़ा करके दिन में 3–4 बार में निकालें। एक बार में संपूर्ण खीस निकालने से मिल्क फीवर ब्याधि होने की संभावना रहती है।
- पशु को पीने का पानी गुनगुना इच्छानुसार देना चाहिए।
- जिन गाय या भैंस को पहले गर्भपात हो चुका हो उनके साथ गाभिन पशु को उठने बैठने नहीं देना चाहिए।

गर्भावस्था में पशु का आहार

गर्भावस्था में पशु के आहार का बहुत महत्व होता है।पशु का आहार पाचक एवं स्वादिष्ट होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त

- एक गाभिन गाय या भैंस को साधारणतया 30–35 किलोग्राम हरा चारा, 3–4 किलोग्राम सूखा चारा (भूसा आदि) तथा 2–3 किलोग्राम दाना एवं 50 ग्राम नमक प्रतिदिन दिया जाना चाहिए।

ISBN : 978-81-904444-4-6

- यदि पशु को मुख्य रूप से सूखे चारे पर रखना है तो उसे 5–8 किलोग्राम भूसा और 5–10 किलोग्राम हरा दिया जाना चाहिए।
- वर्षा ऋतु में लोबिया मक्का का हरा चारा अथवा लोबिया ज्वार की कुट्टी का मिश्रण उत्तम रहता है। हाल के ब्याये हुए पशु को गेहूँ का दलिया, गुड, सोठ और अजवाइन आदि को मिलाकर हल्का पकाकर खिलाना चाहिए।
- गाय या भैंस को पाचक शक्ति वर्धक आहार जैसे चोकर के साथ गुड को मिलाकर खिलाने से बच्चा होने में आसानी होता है।
- कभी–कभी ब्याने के उपरांत जेर नही गिरता तो इसके लिए गुड़ 750 ग्राम, अजवायन 60 ग्राम, सोंठ 15 ग्राम, मेथी 15 ग्राम इत्यादि को 1 लीटर पानी में अच्छी तरह मिला कर देना चाहिए।
- इसके अलावा टिक्वर अरगोट 25 ग्राम, मैगसल्फ 200 ग्राम, सोंठ 30 ग्राम इत्यादि लगभग आधा लीटर पानी में मिलाकर पिलाने से भी जेर गिरने में आसानी होता है।

नोट यदि एक बार देने पर पशु जेर ना गिराए तो दोबारा पिलाना चाहिए।

- खनिज तत्वों की पूर्ति के लिए लगभग 50 ग्राम हड्डी का चूर्ण (बोनमिल) तथा 50 ग्राम नमक प्रतिदिन देना चाहिए।
- ब्याने के बाद पशु को तत्काल कार्बोहाइड्रेट्स चारा खिलाना चाहिए।
- ब्याने के बाद 3–4 दिन तक तैलीय खलिया (आयल केक) बिल्कुल नहीं खिलाना चाहिए।
- ब्याने के बाद गर्भाशय कि सफाई के लिए पशु को औटी दी जा सकती है, न कि जौ का आटा, अरहर की दाल।



***

ISBN : 978-81-904444-4-6

27 डेयरी पशुओं में दूध की उपज पर अजोला फीड पूरक का मूल्यांकन

धर्म प्रकाश श्रीवास्तव
कृषि विज्ञान केन्द्र, पी0जी0 कालेज, गाजीपुर

अजोला जल की सतह पर मुक्त रूप से तैरने वाली एक फर्न है, यह छोटे–छोटे समूह में सघन हरित गुच्छे की तरह तैरती व फैलती है। भारतीय परिवेश में इसकी प्रजाति अजोला पिन्नाटा उपयुक्त पायी गई। यह अधिक गर्मी सहन करने वाली किस्म है, अजोला कम लागत में पशुओं के लिए पौष्टिक आहार है, इसमें शुष्क भार के आधार पर 25–35 प्रतिशत प्रोटीन 10–12 प्रतिशत खनिज मिश्रण एवं 7–8 प्रतिशत अमीनों अम्ल पाये जाते हैं, यह शीघ्र वृद्धि वाली किस्म है। बुवाई के पश्चात् 10–15 दिनों में बढ़कर तैयार हो जाता है। इसमें सभी आवश्यक अमीनों अम्ल के साथ बायोपालीमर्श तथा वीटा केरोटीन पाए जाते हैं। जैव रसायनों की भरपूर मात्रा के कारण इसे जैव पूरक आहार कहा जाता है। अजोला का रासायनिक संघटन :–

प्रोटीन–22.50 प्रतिशत, रेशा– 12.5 प्रतिशत, वसा – 3.2 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट – 50 प्रतिशत, कैल्शियम 1.16 प्रतिशत, फॉस्फोरस –1.29 प्रतिशत, मैग्नीशियम – 0.35 प्रतिशत, मैग्नीज– 174.42 प्रतिशत, जिंक – 87.59 प्रतिशत, कॉपर– 16.74 प्रतिशत।

अजोला पशुओं को संतुलित आहार देने के पश्चात् एक स्वस्थ पशु को 1.5–2.0 किग्रा0 मात्रा देनी चाहिए।

कृषि विज्ञान केन्द्र, पी0जी0 कालेज, गाजीपुर द्वारा सदर ब्लॉक के 5 किसानों का चयन कर उनके 2 दुधारू पशुओं का चयन कर अजोला के कृषक प्रक्षेत्र पर परीक्षण कराया गया।

अजोला उत्पादन विधि : अजोला उत्पादन हेतु सबसे पहले 4 मीटर लम्बा, 1.5 मीटर चौड़ा तथा 20 सेमी0 गहरा गड्ढ़ा तैयार करते हैं, इसके बाद गड्ढ़े की सतह पर प्लास्टिक शीट बिछा देते हैं, जिससे बार–बार पानी न भरना पड़े प्लास्टिक लगा होने से रिसाव नहीं होता तथा उसका तापमान भी नियंत्रित रहता है। इसके पश्चात् 10–20 किग्रा0 छनी हुई मिट्टी समान रूप से पॉलीथीन पर डाल देते हैं। इसके पश्चात् 5 किग्रा0 गोबर तथा उतनी ही मात्रा में वर्मी कम्पोस्ट 10 लीटर पानी में घोल बनाकर गड्ढ़े में डालते हैं जिससे पानी का स्तर 8 सेमी0 हो जाय। इसके पश्चात् 1–2 किग्रा0 रोगमुक्त अजोला का बीज गड्ढ़े में डालते हैं फिर 10 से 15 दिनों बाद यह वृद्धि कर पूरे गड्ढ़े में भर जाता है। इस गड्ढ़े से 2–3 किग्रा0 अजोला प्रतिदिन प्राप्त कर सकते हैं। इसमें प्रत्येक 10 दिन बाद 2 से 2.5 किग्रा0 वर्मी कम्पोस्ट 2 लीटर पानी घोलकर गड्ढ़े में डालते रहना चाहिए, जिससे अजोला का उत्पादन टिकाऊ बना रहे।

10 पशुओं का चयन के पश्चात् उसमें 5 पशुओं को केवल संतुलित आहार दिया गया, बाकी 5 पशुओं को संतुलित आहार के साथ–साथ 1.5–2.0 किग्रा0 अजोला प्रतिदिन फीड कराया गया। यह परीक्षण लगभग 3 से 4 महीने तक सभी पॉच किसानों के यहॉ कराया गया। परीक्षण के दौरान सभी किसानों के यहॉ दूध में बढोत्तरी देखी गई जो औसत रूप से 1.5–2.0 किग्रा0 बीच पाई गई तथा इन पॉच पशुओं में से 2 पशु समय से अर्थात् ब्याने के 80–90 दिनों के अन्दर पुनः गर्भ धारण कर लिए, बाकी 3 पशु जिसमें अजोला की फीडिंग की गई थी उन्होंने 4 माह से पॉच माह बाद गर्भ धारण कर लिया जबकि जिन पॉच पशुओं में अजोला नहीं दिया गया, उसमें से 2 पशुओं में 12 से 14 महीने बाद गर्भ धारण किया तथा बाकी तीन पशु रीपिट ब्रीडिंग की समस्या से ग्रसित पाये गये।

अतः अजोला में भरपूर मिनरल व विटामिन पाये जाने के कारण यह पशुओं में जैव पूरक के रूप में एक उचित खाद्य है जो पशुओं में बॉझपन की दर को घटाने के साथ–साथ दुग्ध उत्पादकता में भी बढोत्तरी करवाता है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

अजोला से प्रति इकाई लाभ/लागत ब्यौरा :

उत्पाद	मात्रा	लाभ/लागत (रूपये में)
क्यारी बनाने की मजदूरी	1 मजदूर 300 रूपये	300/रूपये
छाया करने के लिए ग्रीन नेट छप्पर आदि	20 वर्गमीटर (दर 16/मीटर)	320/रूपये
प्लास्टिक शीट (काले रंग की)	25 मीटर (दर 20/मीटर)	500/रूपये
गोबर ताजा	10–12 किग्रा0 (दर 2 रूपये/मीटर)	24/रूपये
कुल लागत	––	1244/रूपये
अजोला से लाभ	प्रतिदिन कुल उत्पादन (1 क्यारी से), 2.5 किग्रा0	125 रूपये प्रतिदिन की कमाई (45000 रूपये लाभ प्रतिवर्ष)
हरे चारे की बचत	15×3	45 रूपये बचत प्रतिदिन



***

ISBN : 978-81-904444-4-6

28 नेपियर लगाएँ और लम्बे समय तक हरा चारा पायें

सतेन्द्र कुमार ,राजीव गुप्ता, प्रशांत कुमार, राजीव कुमार अग्रवाल एवं मो. रमजान शेख
भा. कृ. अनु. प.–भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी–284003

संकर नैपियर बहुवर्षीय घास वर्ष भर हरा चारा उत्पादित करती है। इसलिये पशुओं के स्वास्थ एवं दुग्ध उत्पादन पर सकारात्मक प्रभाग होगा। भारत में दशकों से चार प्रतिशत से अधिक भू–भाग पर चारा का उत्पादन किया जाता है। एक निर्धारित सीमा से अधिक भू–भाग पर यदि चारा का उत्पादन किया जाता है तो खाद्यान्य तथा अन्य फसलों के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा शहरी एंव ओधोकीकरण से चारा फसलों के अर्न्तगत क्षेत्रों को चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। बहुवर्षीय चारों में प्रचुर उपज, वर्षभर चारा उत्पादन, चारा गुणवत्ता एवं पाचनशीलता आदि गुणों के कारण हाईब्रिड नैपियर घास का बहुत महत्व है। इसका तना शाकीय एवं वृद्धि अतिशीघ्र होती है। इस घास में बीज नहीं बनता है। यह चारा साइलेज अथवा हे के रूप में खिलाने के लिए उपयुक्त है। इसकी पंक्तियों के बीच में लोबिया, बरसीम अथवा रिजका/लूसर्न दलहनी चारा फसलों के साथ भी उगाया जा सकता है ।

जलवायुः– संकर नेपियर घास गर्मतर जलवायु की फसल है जो कुछ समय तक सूखा सहन कर लेती है। गर्मतर एवं समुद्र तटीय क्षेत्रों में इसकी उपज सर्वाधिक होती है तथा वर्षभर हरा चारा देती हैं। यह 800 मिलीमीटर से अधिक बारिश वाले क्षेत्र जहां तापमान 15 से 310 रहता है, सफलतापूर्वक उगायी जाती है। चमकदार धूप के साथ हल्की बौछारें इसके उत्पादन को बढ़ाती है।

भूमि एवं तैयारीः– संकर नेपियर घास शीघ्र बढ़वार एवं अत्यधिक उत्पादन के लिए मृदा से काफी मात्रा में पोषक तत्व अवशोषित करती है। अतः इसके लिए अच्छे जल निकास वाले एवं अच्छी उर्वरता वाली दोमट से क्ले दोमट मिट्टी सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है। यह घास हल्की अम्लीय भूमि (पीएच–5.5) में भी समुचित उत्पादन देती है। एक बार स्थापित होने पर यह 3 से 5 वर्ष तक चारा उत्पादन देती है। अतः इसे रोपित करने के पूर्व भूमि की अच्छी तैयारी के लिए एक जुताई मिटटी पलट हल से तथा दो तीन हैरोइंग की आवश्यकता है। प्रत्येक वर्ष कम से कम एक गुड़ाई फावड़े से करने पर मृत कल्लों एवं खरपतवार की संख्या नियंत्रित रहती है एवं मृदा में वायु का संचार नियमित होता रहता है।

रोपाईः– संकर नेपियर घास के बीज में अंकुरण क्षमता नहीं होती है। अतः इसकी रोपाई गन्ने की तरह दो से तीन कली वाले तने के टुकड़े जड़ित कल्ले से की जाती है। रोपाई का उपयुक्त समय फरवरी–मार्च तथा जुलाई– अगस्त होता है। एकल फसल उत्पादन के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 75 सेन्टीमीटर से एक मीटर तथा पंक्ति में पौधे से पौधे की दूरी 50 सेमी. रखी जाती है। इस प्रकार एक हेक्टर के लिए 25000 से 40000 स्लिप की आवश्यकता होती है। रोपाई के लिये कटिंग को जमीन में कुदाली की सहायता से 450 कोण पर 4 से 5 सेमी. गहरा रोपकर आसपास की मिट्टी अच्छे से दबा देते हैं।

अन्तः फसलें उगाने के लिए रोपाई कम से कम 100 × 50 सेमी. की दूरी पर करनी चाहिए जिससे पंक्तियों के बीच की जगह में खरीफ में लोबिया, ग्वार तथा रबी मौसम में बरसीम, अथवा रिजका बोयी जा सके। यंत्र आधारित संकर हाथी घास उत्पादन पद्धति में 2/4 की जोड़ीदार पंक्तियां, तीन से 7 मीटर की दूरी पर रोपी जाती है तथा बीच में अन्न, चारा अथवा किसी भी अन्य प्रकार की फसल का उत्पादन किया जा सकता है।

ISBN : 978-81-904444-4-6

सारणी–1 प्रमुख संकर नेपियर घास की प्रजातियॉं

प्रजातियॉं	क्षेत्र	वार्षिक उपज हरा चारा (टन/हे.)
आई. जी. एफ. आर. आई हाइब्रिड नेपियर नं. 3,5,6,7 एवं 10	उत्तरी एवं मध्य क्षेत्र	70–100
एन. बी. 21	सम्पूर्ण भारत	100–160
पी. बी. एन. 83	पंजाब	125–170
ए. पी. वी. एन. – 1	दक्षिणी क्षेत्र	260–295
सी. ओ.–1	दक्षिणी क्षेत्र	300–350
सी. ओ.–2	दक्षिणी क्षेत्र	350–450
सी. ओ.–3	दक्षिणी क्षेत्र	400–450
यशवन्त	महाराष्ट	190–250

पोशक तत्वो का प्रबंधनः– खाद एवं उर्वरक का उपयोग भूमि परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। इस फसल को पोषक तत्वों की आवश्यकता बहुत अधिक होती है। अतः रोपाई के पूर्व 20 से 25 टन गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट, रोपाई के 20–25 दिन पहले भूमि की तैयारी के समय अच्छी तरह मिलाने की आवश्यकता होती है। रोपाई के समय 60 किलोग्राम नत्रजन तथा 50 किलोग्राम फास्फोरस पंक्ति के किनारे पट्टी के रूप में प्रयुक्त करना चाहिए। उसके बाद प्रत्येक कटाई के समय 20 किलोग्राम तथा 10 किलोग्राम नत्रजन क्रमशः कटाई के तुरन्त बाद एवं कटाई के दस दिन पहले छिड़कनी चाहिए।

सिंचाईः– संकर नेपियर घास गर्मतर जलवायु की फसल है। इसकी वृद्धि वर्ष भर होती है। मानसून में बारिश का अंतराल अधिक होने पर सर्दियों में 18–20 दिन तथा गर्मियों में 12–16 के अंतराल पर सिंचाई कर भूमि में नमी का स्तर बनाये रखना आवश्यक होता है।

अन्तः सस्य कियाये :– उपयुक्त प्रक्रिया अपनाने पर घास का जमाव 80–90 प्रतिशत होता है। उत्तम पौध संख्या एवं उपज के लिए सूखे कल्ले के स्थान पर नये कल्ले की रोपाई 20 दिन की अवस्था पर की जानी चाहिए। बहुवर्षीय फसल में एक या दो निकाई गुडाई से भूमि में वायु का संचार एंव समुचित खरपतवार नियंत्रण हो जाता है। लगातार कटाईयों से 12 से 18 महीनों के बाद टसक (पौधों) में मृत कल्लों की संख्या बढ़ जाती है। जिससे बढ़वार एवं उपज कम हो जाती है। समय–समय पर सूखे कल्लो का हटा देना चाहिये।

सारणी–2 नेपियर उपयुक्त फसल चक्र प्रणाली

उत्तरी क्षेत्र	मध्य एवं पश्चिमी क्षेत्र	पूर्वी क्षेत्र
• नेपियर बाजरा हाईब्रिड – बरसीम • नेपियर बाजरा हाईब्रिड + वेलवेट बीन – बरसीम – सरसों • नेपियर बाजरा हाईब्रिड + रिजका	• नेपियर बाजरा हाईब्रिड + (लोबिया–बरसीम)	• नेपियर बाजरा हाईब्रिड

पुर्नरूद्धार विधिः– सभी बहुवर्षीय घासें एक बार रोपाई के पश्चात् वर्ष में 6–8 कटाईयां देते हुये 3–5 वर्षो तक हरा चारा प्रदान करती है वृद्धि के लिये कल्ला एक बार कटने के बाद नीचे कलियों से नये कल्ले को जन्म देता है। अधिक बार कटाई के कारण पौधे ;टसकद्ध में मृत कल्लों की संख्या अधिक होने से टसक का व्यास एवं परिधि बढ़ जाती है। साथ ही टसक में निकलने वाले नये कल्लों की संख्या एवं वृद्धि में अत्याधिक कमी आ जाती है। साथ ही निराई गुड़ाई की कमी होने से घास एवं खरपतवार की संख्या एवं मात्रा बढ़ जाती है। इस विधि को अपनाने से चारे की उपलब्धता बढ़ेगी। उपरोक्त समस्या के निराकरण के लिये, फसल को लगभग 2–3 वर्ष में पुर्नरूद्धार की आवश्यकता होती है। इसके लिये जलाऊ विधि एवं सतह से कटाई प्रचलित है। बर्निंग विधि में, फरवरी–मार्च अथवा जून के महीने में टसक के ऊपर सूखी घास रखकर जला देते है इससे सूखे कल्लों के साथ खरपतवार एवं हानिकारक कीड़े–मकोड़े भी नष्ट हो

ISBN : 978-81-904444-4-6



जाते है। जलाने के अधिकतम 24 घण्टे समय में फसल की सिंचाई अति आवश्यक है अन्यथा पौधे काफी संख्या में नष्ट हो सकते है।

क्लोज शेविंग विधिः– क्लोज शेविंग विधि में फरवरी–मार्च अथवा जून के महीने में टसक को जमीन के सतह के बिल्कुल नजदीक से काट देते है। उपरोक्त क्रियाओं के बाद खाली जगह में रोपाई भी आवश्यक है इन क्रियाओं से फसल के उत्पादक जीवन एवं उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।

कटाईः– संकर नेपियर घास की पहली कटाई 60–65 दिन पर कर सकते है। तत्पश्चात् कटाईयों का अंतराल 30–35 दिन रखना चाहिए। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये कल्लों को 10–15 सेमी छोड़कर कटाई करनी चाहिये।





***

ISBN : 978-81-904444-4-6

29 वर्मीवाश एक जैविक उत्पाद

[1]राघवेंद्र सिंह, [1]कुलदीप सिंह, [2]अमन कुमार पाण्डेय एवं [2]मोहिल कुमार
[1]आचार्य नरेन्द्रदेव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या
[2]भा.कृ.अनुप.–अटारी, कानपुर

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी दो तिहाई आबादी गाँवों में बसती है एवं अपना जीविकोपार्जन करती है। हमारे देश में हरित क्रान्ति सन 1966–67 में शुरू हुई जिसके फलस्वरूप उन्नत किस्मों के बीज एवं रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुँध प्रयोग कृषि में उत्पादन बढ़ाने के लिये हुआ। इन रसायनों के लगातार उपयोग से भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों का ह्रास हुआ है। रसायनों के अधिक उपयोग से अन्न की गुणवत्ता में गिरावट दर्ज की गई यही नहीं, खाद्य पदार्थों में जहरीलापन बढ़ने से मनुष्यों में विभिन्न घातक बीमारियाँ देखी जा रही हैं। विभिन्न वैज्ञानिक रिर्पोटों में यह साबित हो चुका है कि ये रसायन हमारे पर्यावरण को भी प्रदूषित करते हैं।

समस्याओं से निदान पाने के लिये रासायनिक उत्पादों का उपयोग कम करके उनके स्थान पर जैविक उत्पादों का उपयोग एक अच्छा विकल्प है। भारत में कृषि के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के स्रोत जिनका प्रयोग अन्न की गुणवत्ता बढ़ाने एवं किसानों को उनकी फसलों का अधिक दाम प्रदान करने के लिये किया जा सकता है। उदाहरण के लिये गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, वर्मीवाश इत्यादि इन सभी उत्पादों को कम लागत में किसान स्वयं उत्पादित कर सकते हैं। आज के युग में वर्मीवाश जिसे केंचुआ द्वारा स्रावित किया जाता है, जिसमें विभिन्न हार्मोन्स, पोषक तत्व एवं एंजाइम पाए जाते हैं। यह तरल पदार्थ पर्णीय छिड़काव के लिये प्रयोग होता है।

वर्मीवाश पूर्णतः जैविक उत्पाद है जिसका प्रयोग अनाज एवं दलहनी फसलों में होता है सब्जियों में पुष्पन एवं फलन की प्रक्रिया वर्मीवाश से अधिक होती है एवं इनकी गुणवत्ता भी बढ़ती है। फसलों एवं सब्जियों में विभिन्न रोगों की रोकथाम भी वर्मीवाश से की जाती है क्योंकि यह एक अच्छा रोगरोधी पदार्थ होता है। वर्मीवाश से मृदा की सेहत भी अच्छी होती है





ISBN : 978-81-904444-4-6

क्योंकि इसका कोई भी अवशेष मृदा के लिये हानिकारक नहीं होता। यह सस्ता एवं सुरक्षित होता है। अतरू कृषि में वर्मीवाश का उपयोग करना बहुत ही लाभदायक है।

वर्मीवाश एक तरल जैविक खाद है, जो ताजा वर्मीकम्पोस्ट व केंचुए के शरीर को धोकर तैयार किया जाता है। वर्मीवाश के उपयोग से न केवल उत्तम गुणवत्ता युक्त उपज प्राप्त कर सकते हैं, बल्कि इसे प्राकर्तिक जैव कीटनाशक के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। वर्मीवाश में घुलनशील नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश मुख्य पोषक तत्व होते हैं। इसके अलावा इसमें हार्मोन, एमिनो एसिड, विटामिन, एंजाइम और कई उपयोगी सूक्ष्म जीव भी पाये जाते हैं।

वर्मीवाश के गुण –

इस तरह बनाए गए केंचुआ खाद मे न सिर्फ नाइट्रोजन, पोटेशियम एवं फॉस्फोरस होता है। वरन सभी 16 प्रकार के सूक्ष्म पोषक द्रव्य भी उपस्थित होते है। इसके साथ ही इसमें उपयोगी जीवाणु होते हैं। इस खाद को जमीन में डालने से मिट्टी की उपजाऊ शक्ति एवं सजीव शक्ति बढ़ती है। 2–3 वर्षों तक केंचुआ खाद जमीन में डालने पर भूमि पूरी तरह उपजाऊ हो जाएगी एवं किसी भी तरह की रासायनिक खाद डालने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इसके साथ ही कीटों का प्रकोप कम हो जायेगा जिसमे रासायनिक कीटनाशकों की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

वर्मीवाश क्या है ?

वर्मीवाश एक तरल पदार्थ है जो केंचुआ द्वारा स्रावित हार्मोन्स, पोषक तत्वों एवं एंजाइमयुक्त होता है जिसमें रोगरोधक गुण पाए जाते है। दूसरे शब्दों में यह एक भूरे रंग का तरल जैव उर्वरक है जिसमें ऑक्सिन एवं साइटोकाइनिन हार्मोन्स उपस्थित होते हैं और विभिन्न एंजाइम जैसेप्रोटीएज, एमाइलेज, यूरीएज एवं फॉस्फेटेज भी पाए जाते हैं। माइक्रोबॉयोलॉजिकल अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि वर्मीवाश में नाइट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरिया जैसे– एजोटोबैक्टर स्पीशीज, एग्रोबैक्टीरियम स्पीशीज एवं फॉस्फोरस घोलक बैक्टीरिया पाए जाते हैं।

वर्मीवाश इकाई

वर्मीवाश इकाई को प्लास्टिक या लोहे की 200 लीटर क्षमता वाली टंकी में तैयार किया जाता है। टंकी के निचले हिस्से में एक छिद्र किया जाता है। अब एक उर्ध्वा धर टी आकार की नली जिसका आधा इंच टंकी के अंदर डूबा रहना चाहिए, स्थापित किया जाता है। उर्ध्वाकधर नली के एक हिस्से को टेप से जोड़कर दूसरी तरफ डमी नट से कस दिया जाता है और इस पूरे सेट को एक उचित चौकी के ऊपर रख दिया जाता है। टेप को खुला रखकर बाल्टी में छोटे–छोटे ईंट के टुकड़े एवं कंकड़ लगभग 25–30 सेन्टीमीटर तक भरते हैं, फिर इसके ऊपर 20–30 सेमी. मोटी बालू भरते हैं। अब इस मूल इकाई के ऊपर गोबर भरकर केचुओं को भरा जाता है, फिर मिट्टी की परत डालने के बाद धान की पुआल ऊपर चढ़ाकर छायादार स्थान में रख दिया जाता है। इसपर प्रतिदिन पानी का छिड़काव किया जाता है।

वर्मीवाश बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

वर्मीवाश तैयार करने के लिये 20 लीटर क्षमता वाली बाल्टी, ईंट की गिट्टी, मोटी बालू 1 से 1.5 किलोग्राम, मिट्टी 2 किलोग्राम, गोबर 7 किलोग्राम, केचुआ 60 से 80, पुआल, मिट्टी का घड़ा और एक बाल्टी पानी की आवश्यकता पड़ती है।

वर्मीवाश तैयार करने की विधि

वर्मीवाश तैयार करने के लिये उचित छायादार स्थान का चुनाव किया जाता है क्योंकि सूर्य प्रकाश का प्रभाव केचुओं पर विपरीत होता है, साथ ही बारिश से भी केचुओं को बचाया जाता है। वर्मीवाश तैयार करते समय हम सर्वप्रथम एक बाल्टी (20 लीटर) एवं जग लेते हैं बाल्टी के निचले हिस्से में



ISBN : 978-81-904444-4-6

एक स्टॉप कार्क लगा होना चाहिए जिससे बाल्टी के तल में एकत्रित वर्मीवाश को निकालने में आसानी रहे। अब बाल्टी में टूटे हुए ईंट एवं पत्थर के टुकड़ों की सहायता से 10–15 सेमी. की मोटी परत भरते हैं इसके ऊपर 10–15 सेमी. की दूसरी परत मोटी बालू की भरते हैं, इसके पश्चात गाय के आंशिक विघटित गोबर की 30–40 सेमी. एक परत चढ़ाते हैं। इस गोबर की परत पर 2–3 सेमी. मोटी नम मिट्टी की एक परत चढ़ा दी जाती है।

जब सभी सामग्री बाल्टी में ले लेते हैं, उसके बाद 60–80 की संख्या में केचुए बाल्टी में भरते हैं, फिर बाल्टी के ऊपरी हिस्से में 6 सेमी. मोटाई की धान की पुआल भरते हैं अब स्टॉप कार्क खुला रखके 7–8 दिनों तक प्रतिदिन पानी का हल्का छिड़काव करते हैं जिससे केचुओं के लिये उपयुक्त नमी बनी रहे। अब 10 दिनों के पश्चात तरल वर्मीवाश बाल्टी के तल में इकट्ठा होता जाता है। अब प्रत्येक सप्ताह 5–6 लीटर वर्मीवाश तैयार हो जाता है इसको हम स्टॉप कार्क की सहायता से किसी बर्तन व बोतल में निकाल लेते हैं एवं फसलों में छिड़काव करने से पूर्व पानी से द्रवित करते हैं जिससे इसकी अधिक सांद्रता से पौधों को नुकसान न होवे। इस प्रकार किसान स्वयं ही वर्मीवाश का उत्पादन एवं गुणवत्ता प्राप्त कर सकते हैं।

वर्मीवाश का एकत्रण

टैप बंद करके बर्तन के ऊपर पानी का छिड़काव करते हैं। पानी धीरे–धीरे कम्पोस्ट से प्रवाहित होते हुए सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ फिल्टर होता है। अगले दिन टैप से वर्मीवाश को एकत्रित करते हैं जिसका उपयोग पौधों में पर्णीय छिड़काव के लिये किया जाता है। वर्मीवाश को पानी के साथ 1रू1 अनुपात में मिलाया जाता है या इसे 10: गोमूत्र से द्रवित किया जाता है। यह एक प्रभावी रोगनाशक की तरह उपयोग किया जाता है। वर्मीवाश तैयार होते ही इकाई से पुराने अवशिष्ट को समय–समय पर हटा दिया जाता है। अब एकत्रित वर्मीवाश का उचित संग्रहण किया जाता है एवं उपयोग के पहले द्रवित किया जाता है।

वर्मीवाश का उपयोग

वर्तमान कृषि परिवेश में अधिक लाभ प्राप्त करने एवं फसलों की गुणवत्ता बढ़ाने के लिये धान्य फसलों जैसे – चावल एवं



मक्का आदि में वर्मीवाश का छिड़काव किया जा सकता है। वर्मीवाश का प्रयोग सब्जियों जैसे मुख्य रूप से भिण्डी, पालक, बैंगन, प्याज एवं आलू में इनकी गुणवत्ता एवं स्वाद बढ़ाने के लिये हो रहा है। वर्मीवाश के द्वारा इन फसलों में पौधों की लम्बाई, पत्तियों का आकार एवं फलों का आकार बढ़ता है एवं बाजार में वर्मीवाश से उत्पादित सब्जियों का दाम किसानों को अधिक प्राप्त होता है।

वर्मीवाश का फसल उत्पादकता पर प्रभाव

कृषि वैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन में यह पाया गया है कि वर्मीवाश के छिड़काव से पालक में 5 से 5.5 टनध्हेक्टेयर, प्याज में 6 से 6.5 टनध्हेक्टेयर एवं आलू में 7 से 7.5 टनध्हेक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है जोकि सामान्य उत्पादन से 15–20 प्रतिशत अधिक हुई। मिर्च पर किये गये अध्ययन में पाया गया कि जैसे थ्रिप्स एवं माइट्स के नियन्त्रण हेतु वर्मीवाश का छिड़काव करके उचित प्रबन्धन किया जा सकता है। यह एक अच्छा रोगरोधी एवं कीटनाशक की भाँति कार्य करता है साथ ही इसमें उपस्थित विभिन्न हार्मोन्स पौधों में वृद्धि बढ़ाकर इसका उत्पादन बढ़ाते हैं।

वर्मीवाश का अनुप्रयोग

1. एक लीटर वर्मीवाश को 7–10 लीटर पानी में मिलाकर पत्तियों पर शाम के समय छिड़काव करते हैं।
2. एक लीटर वर्मीवाश को एक लीटर गोमूत्र में मिलाकर उसमें 10 लीटर पानी मिलाया जाता है फिर इसे रातभर के लिये रखकर ऐसे 50–60 लीटर वर्मीवाश का छिड़काव एक हेक्टेयर क्षेत्र में फसलों में विभिन्न

ISBN : 978-81-904444-4-6

बीमारियों के रोकथाम हेतु करते हैं।

3. ग्रीष्मकालीन सब्जियों में शीघ्र पुष्पन एवं फलन के लिये पर्णीय छिड़काव किया जाता है जिससे उनके उत्पादन में वृद्धि होती है।

वर्मीवाश प्रयोग के समय सावधानियाँ

वर्मीवाश का छिड़काव शाम के समय करना चाहिए। वर्मीवाश एवं पानी का उचित अनुपात में घोल तैयार करना चाहिए। गोमूत्र के साथ वर्मीवाश का उपयोग रोगनाशी के रूप में उचित अनुपात में करना चाहिए। 4. छिड़काव करते समय हवा के विपरीत छिड़काव नहीं करना चाहिए। वर्षा के मौसम में यह ध्यान रखें कि बारिश होने की सम्भावना न हो।

वर्मीवाश बनाते समय सावधानियाँ

वर्मीवाश तैयार करने हेतु कभी भी ताजा गोबर का उपयोग नहीं करना चाहिए, इससे केंचुए मर जाते हैं। वर्मीवाश इकाई हमेशा छायादार स्थान पर होना चाहिए जिससे केंचुए धूप से बच सकें। केंचुओं को साँप, मेंढ़क एवं छिपकली से बचाव का उचित प्रबन्ध करना चाहिए। स्वच्छ पानी का प्रयोग 20 दिनों तक नमी बनाए रखने हेतु करना चाहिए। वर्मीवाश इकाई को उचित स्टैण्ड पर रखना चाहिए जिससे वर्मीवाश एकत्र करने में आसानी हो। केंचुओं की उचित प्रजातियों का उपयोग करना चाहिए जैसे– आइसीनिया फोटिडा।



***

ISBN : 978-81-904444-4-6



SOLAR PRESS # 9839030542

भाकृअनुप-कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान
ICAR-Agricultural Technology Application Research Institute (ATARI)
G.T. Road, Rawatpur, Kanpur – 208 002 (Uttar Pradesh) INDIA
Phone: *0512-2533560, 2550927, 2554647* ***email:*** *zpdicarkanpur@gmail.com* ***web:*** *atarik.res.in*